ECONOMIC POLICY OF THE MUGHAL EMPIRE

FROM

1658 TO 1707 A.D.

THESIS SUBMITTED FOR THE DEGREE
OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

Km. VANDANA TRIPATHI

UNDER THE SUPERVISION OF

Dr. P. L. VISHWAKARMA

Department of Med./Mod. History
University of Allahabad
ALLAHABAD

1998

आभार

मैं परमादरणीय शोध निर्देशक माननीय डा0 पन्नालाल विश्वकर्मा, रीडर, मध्यकालीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति श्रद्धावनत हूँ । जिनके कुशल निर्देशन में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका है । आपके उत्तम निर्देशन, अप्रतिम व्यक्तित्व की छत्रछाया एवं सदाशयता के परिणामस्वरूप ही मैं शोध कार्य के दुस्तर अम्वुधि का सहजता से उत्तरण कर सकी हूँ । आपने अपने व्यस्ततम क्षणों में भी लिखित सामग्री के अन्वीक्षण एवं विविध सुरूचिपूर्ण प्रक्रियाओं द्वारा अतिदुरूह कार्य को भी अतीव सरल बनाने का प्रयत्न किया है ।

मैं विशेष रूप से माननीया विभागाध्यक्षा डा0 रेखा जोशी एव माननीय प्रो0 सी0 पी0 झा के सामयिक मार्गदर्शन एवं योगदान, जिनसे प्रबन्ध की पूर्णता सम्पन्न हो सकी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ एवं उनके प्रति सदैव कृतज्ञ रहूँगी साथ ही माननीया डा0 कल्पना द्विवेद्वी जिनका मेरे शैक्षणिक एवं आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने में विशेष योगदान रहा, के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

माता-पिता द्वारा पारिवारिक दायित्वों से मुक्त करके, शोध कार्य को पूर्ण करने में प्रदत्त, अनन्य सहयोग के लिए आभार व्यक्त करना मेरी सामर्थ्य से परे हैं क्योकि इनके द्वारा प्रदत्त सहयोग को शब्दों में अभिव्यक्त करना असम्भव है ।

अन्त में मैं अपने भाई-बहनों, जिन्होंने समय-समय पर मुझे उत्साहवर्धन एवं सहयोग प्रदान किया, के प्रति सदैव आभारी रहूँगी, साथ ही जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से सहायता प्रदान किया उन सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ ।

वन्दना त्रिपाठी

(वन्दना त्रिपाठी)

अनुक्रमणिका

अध्याय 1

भूमिका

औरंगजेब के शासन के पूर्व विद्यमान आर्थिक परिस्थितियाँ

मुगल साम्राज्य की आर्थिक नीति के बारे में काफी अध्ययन हो चुका है परन्तु इस विषय से सम्बन्धित अनेक बिन्दु ऐसे है जिन पर अधिक शोध कार्य की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है । किसी साम्राज्य की शक्ति के अंकन के लिए और शक्ति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए सुदृढ़ आर्थिक आधार की आवश्यकता होती है। मुगल साम्राज्य जब आर्थिक रूप से अकबर द्वारा सुदृढ़ कर दिया गया तब वह आगामी एक शताब्दी तक सुदृढ़ बना रहा । औरंगजेब के समय आर्थिक आधार कमजोर होने लगा तो साम्राज्य भी कमजोर होने लगा । आर्थिक दृष्टि से देखा जाय तो मुगल साम्राज्य का इतिहास आर्थिक समस्याओं से जूझता हुआ इतिहास दिखायी पड़ता है परवर्ती मुगल सम्राटों की आर्थिक विपन्नता का मुगल साम्राज्य की राजनीतिक, प्रशासनिक, सामरिक, एवं सांस्कृतिक क्षीणता से समीकरण बिल्कुल स्पष्ट दिखायी पड़ता है आर्थिक इतिहास पर शोध कार्य करने वाले विद्वानों में प्रमुख नाम डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, इरफान हबीब, शीरीन मुसबी, आदि है । जिन इतिहासकारों ने राजनीतिक व प्रशासनिक पहलुओं पर कार्य किया है वे भी प्रसंगवश आर्थिक स्थिति नीतियों तथा मुद्दों को वर्णित करने का प्रयास किये है ऐसे विद्वानों में डा0 जे0 एन0 सरकार, जहीरूद्दीन फारूकी, जगदीश नारायण सरकार, आई0 एच0 कुरैशी, इत्यादि प्रमुख है। डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, ने शाहजहाँ तक का आर्थिक इतिहास अपनी कृतियों "फ्राम अकबर टू औरंगजेब", "एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया" तथा "इण्डिया ऐट दि डेथ आफ अकबर" में समाहित किया है। परमात्मा सरन कृत "प्रॉविन्सियल गवर्नमेन्ट अन्डर दी मुगल्स" का भी नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है । औरंगजेब की आर्थिक नीतियों, तत्कालीन विभिन्न वर्गो की आर्थिक दशा एवं आर्थिक प्रशासन में आने वाली अनेक चुनौतियों का अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का वर्ण्य विषय है यह विषय अत्यधिक विशद है । इस पर अधिक शोध कार्य करने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । समकालीन तथा परवर्ती एवं आधुनिक उन सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन करके मौलिक ढंग से तथ्यों का विवेचन करके निष्कर्ष, इस शोध प्रबन्ध द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

आई0 एच0 कुरैशी, ने लिखा है कि मुगलों ने आर्थिक प्रशासन की स्वस्थ्य परम्पराओं का विकास किया[1]। उनकी आय एवं व्यय के श्रोत तथा मद निर्धारित थे । तपनराय चौधरी ने दि कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वाल्यूम-1 में लिखा है कि मुगल साम्राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार साम्राज्य की आर्थिक गतिविधियाँ संचालित होती थीं[2] । बाबर और हुमायूँ के समय ऐसा नहीं हुआ किन्तु अकबर के समय से इस ओर प्रयास होने लगा था । मुगल साम्राज्य विजयों के द्वारा बना था और विजयों पर ही निर्भर था । मूलत: यह सैनिक राज्य था । मुगल अर्थव्यवस्था का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सैनिक राज्य की आवश्यकताओं से था । सैनिक राज्य की आवश्यकता के अनुसार अर्थव्यवस्था का स्वरूप निर्धारित होता था[3] । इसका प्रमाण बाबर के समय से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है जैसे आगरा तथा दिल्ली से प्राप्त राजकोष का अमीरों, सैनिकों, आदि में वितरण । इसी क्रम में जागीरदारी प्रथा का स्वरूप भी चलता रहा । बाबर ने कोई आर्थिक सुधार नहीं किये । मुगल राज्य की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो भी कदम आवश्यक थे उन्हें उठाया लेकिन कोई सुनिश्चित आर्थिक नीति का स्पष्ट निरूपण बाबर नहीं कर सका । उसके सभी कदम जैसे साम्राज्य का जागीरों में आवंटन, 1529 ई0 के आर्थिक संकट के दौरान उठाया गया वह कदम जिसके अनुसार जागीरदारों पर 30 प्रतिशत का अतिरिक्त बोझ डाला गया, संकटकालीन अल्पकालीन कदम थे।

हुमायूँ की आर्थिक नीति किसी भी तरह तर्कसंगत नही कही जा सकती है उसने राज्य की आय एवं व्यय के सम्बन्ध में कोई गम्भीर चिन्तन नहीं किया। यह कहना बहुत कठिन है कि हुमायूँ की कोई निश्चित आर्थिक नीति थी । राज्य की आवश्यकताओं की धनराशि मिलने में कठिनाई हुई । जागीरदारों ने, जिसमें उसके भाई एवं सम्बन्धी भी शामिल थे, अवज्ञाकारिता पूर्वक आचरण करके उस अर्थ व्यवस्था को पगु कर दिया जो जागीरदारों के सहयोग पर ही टिकी थी।

अकबर के समय से मुगल आर्थिक नीति स्पष्ट रूप से निर्धारित निन्दुओं पर विकसित होने लगी । एक लम्वी प्रकिया के चरणों से गुजरते हुये 1580 ई0

1- आई0एच0 कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि मुगल एम्पायर, पृष्ठ 140,

2- तपनराय चौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इमनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वाल्यूम एक, पृ0 172,

3- मजूमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृष्ठ 207

तक इसका वास्तविक स्वरूप उभरा । अकबर के आर्थिक सुधारों का महत्व मुगल साम्राज्य के इतिहास का एक बड़ा भाग स्वयं है[1] । इसका विस्तृत विवरण अबुल फजल कृत आईन-ए-अकबरी, तथा अकबरनामा में है । अनेकों-अन्य प्राथमिक एवं सहायक ग्रन्थों में अकबर की आर्थिक नीति का पर्याप्त वर्णन मिलता है ।

जहाँगीर एवं शाहजहाँ के समय की आर्थिक नीति का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि सम्राज्य की आर्थिक सुदृढ़ता इस काल में विद्यमान रही साथ ही साथ आर्थिक प्रशासन में अनेक ऐसी त्रुटियाँ एवं खामियों का प्रचलन भी होता गया। डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, ने अपनी पुस्तक "फ्राम अकबर टू औरंगजेब[2]" में इस विषय वस्तु पर अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है । सैनिक राज्य के आवश्यकता की भली-भांति पूर्ति होती रहीं । शाहजहाँ के काल में राजकीय वैभव[3] के प्रदर्शन स्थापत्यकला एवं युद्धों पर इतना अधिक खर्च हुआ फिर भी कोई आर्थिक संकट नहीं उपस्थित हुआ । शाहजहाँ ने खजाने में इतना धन संचित कर रखा था कि बल्ख अभियान[4] में चार करोड़ रूपये का अपव्यय तथा कन्दहार के विरूद्ध किये गये तीन अभियानों में करीब दस करोड़ रूपये की क्षति भी खजाने को खाली नहीं कर सकी । अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि शाहजहाँ के काल में आर्थिक स्थिति ठीक थी । प्रजा जिसमें अधिकांश भाग कृषकों का था, की आर्थिक स्थिति अत्यधिक दरिद्र की नहीं थी । कोई कृषीय विद्रोह नहीं हुआ । जहाँगीर तथा शाहजहाँ की अर्थव्यवस्था में बाहर से देखने पर विशेष खामियाँ नहीं दिखायी पड़ती है। इसका कारण यह था कि साम्राज्य आर्थिक रूप से सुदृढ़ था । वह समय-समय पर आने वाले आर्थिक संकटों को झेल गया । किन्तु इसी समय में आर्थिक संकट का बीजारोपण भी हुआ जिसका प्रस्फुटन औरंगजेब के काल में हुआ । इस प्रस्फुटन को औरंगजेब ने अपनी त्रुटियों से लहलहाती हुई फसल के रूप में बढ़ने दिया । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत केवल औरंगजेब की आर्थिक नीति को रखा गया है । जहाँगीर तथा शाहजहाँ कालीन आर्थिक नीति की पूरी तरह से गुण-दोष परीक्षा का प्रयास यहाँ नहीं किया गया है । औरंगजेब की आर्थिक नीति के सन्दर्भ में जहाँ-जहाँ आवश्यक हुआ है, शोध प्रबन्ध में उनका उल्लेख

1-मजूमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 167,

2 डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब,

3-मजूमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृष्ठ 206,

4-रायभारमल. लुल्बुत-तवारीख-ए-हिन्द-ईलियट एवं डाउसन. भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 121 ।

किया गया है । सैनिक राज्य की आवश्यकता को भली-भांति पूरी करने में औरंगजेब कालीन अर्थव्यवस्था असफल रही[1] । इस तथ्य से यह निष्कर्ष पुष्ट हो जाता है कि शाही आय एवं व्यय के श्रोत तथा मद एवं सैनिक राज्य की अनिवार्य आवश्यकता अथवा विवशता में गम्भीर सम्बन्ध था ।

शासक वर्ग यश को बढ़ाने, साहसिक प्रवृत्ति को अपनाने और निजी अहम की तुष्टि करने में विश्वास करते थे। शासक वर्ग महत्वाकांक्षा था। वह अधिक से अधिक भौतिक संसाधनों को प्राप्त करके अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करना चाहता था । इसे आर्थिक नीति से भी जोड़ा जाना स्वाभाविक है । मुगलों ने यथा सम्भव अपनी आर्थिक नीति के निर्धारण में जनहित का ध्यान रखा । उसकी पूर्ति कहाँ तक हुयी यह विवाद का विषय है । अतः इसका समीक्षात्मक परिच्चर्चा शोध प्रबन्ध में किया गया है । औरंगजेब के काल के पूर्व एवं उसके काल की अवधि, दोनों ही चरणों में, आर्थिक संसाधनों का भरपूर शोषण होता रहा। उनकी फिजूल खर्ची, उनके अमीरों की विलासितामय जीवनशैली, साम्राज्य की अनेक आर्थिक कठिनाइयों को दृष्टि से ओझल करके चलती रही । मुगल सम्राट औरंगजेब ने विलासिता के मदों में होने वाली फिजूल खर्ची को रोककर कुछ आर्थिक संसाधनों की आय के दुरूपयोग में कमी की, उसके दक्षिणी युद्धों ने आर्थिक रूप से साम्राज्य को खोखला कर दिया। उसने साम्राज्य का कोष विलासिता एवं अनावश्यक फिजूल खर्ची के लिए इस्तेमाल नहीं किया । गिरती हुयी नैतिक परिस्थितियों का जीर्णोद्धार करने का प्रयास किया। अमीरों को भी अनुशासित एवं नैतिक तथा धर्मनिष्ठ बनानें का प्रयास किया किन्तु जागीरी संकट बढ़ती गयी[2] अन्ततः गम्भीर आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी। वास्तव में अकवर के पश्चात ही आर्थिक नीति में खामियाँ प्रकट होने लगी थी। ज्यों-ज्यों साम्राज्य बढ़ता गया, आर्थिक समस्याएं भी बढ़ती गयी। प्रशासनिक दृष्टि से विविधताओं से भरे सूबों में एकता ला सकना कठिन कार्य था। आर्थिक प्रशासन की जटिलता का एक कारण यह भी था फिर भी जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में आर्थिक गतिविधियाँ राजकीय ध्यान आकृष्ट करती रही। मूलतः अकबर कालीन आर्थिक व्यवस्था इन दोनों शासनकालों मे चलती रही जितना उत्साह अकबर में था उतना उत्साह जहाँगीर या शाहजहाँ को नहीं था । इसलिए आर्थिक विकास के साथ-साथ पराभव के चिन्ह भी प्रकट होने लगे । मोरलैण्ड[3] का कथन है कि

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 2,

2- सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 23,

3- डब्लू0एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृष्ठ 304-305

शाहजहाँ के शासनकाल के अन्त में मुगल आर्थिक प्रणाली पतन की ओर अग्रसर थी । कृषकों एवं शिल्पियों की गरीबी भूखमरी एक ओर थी तो दूसरी ओर थी राज्य की फिजूल खर्ची, दरबार की शान शौकत, सम्राट एव अमीरों की विलासितामय जिन्दगी और युद्धों पर खर्च होने वाली अपार धनराशि । जनता की कय शक्ति बहुत कम थी । जार्गीरदारों की मनमानी बढ़ती ही जा रही थी । भूराजस्व की दर शाहजहाँ के शासनकाल में बढ़कर कहीं-कहीं उपज का 50 प्रतिशत हो गयी। अतिरिक्त उत्पादन राज्य द्वारा अवशोषित कर लिया जाता था । उत्पादन बढ़ाने के लिए कोई सार्थक प्रलोभन या प्रोत्साहन कृषक वर्ग को नहीं दिया गया । प्रशासन ने उत्पादक वर्ग को यथेष्ट संरक्षण नहीं प्रदान किया । राजकीय संरक्षण के अभाव एवं जागीरदारों के दबाव को झेलते हुए कृषक या अन्य उत्पादक वर्ग इतना सम्पन्न नही हो सकता था कि पूरे राज्य की आर्थिक समृद्धि विकसित होती रहे। शोध प्रबन्ध में इस विन्दु को समीक्षित किया गया है ।

औरंगजेब के पूर्व मुगल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति -

मुगलकालीन समाज में विभिन्न आर्थिक स्थिति वाले कई वर्गो की पहचान उभरती है । सम्राट का स्थान सर्वोपरि था । उसके बाद अधीनस्थ राजा, महाराजा, तथा सम्राट के उच्च मनसबदार थे । तत्पश्चात् छोटे मंसबदार थे । राजकर्मचारी के अन्तर्गत अनेक लोग आते थे। हकीम अध्यापक, वैद्य[1] आदि जिनकी आय अत्यधिक नहीं थी उन्हें मध्य वर्ग मे रखा जाता है । मुगलकाल में मध्य वर्ग कमजोर था । वैचारिक एक शैक्षिक विकास की पर्याप्त व्यवस्था न होना इसका एक प्रमुख कारण था । मध्य वर्ग का अस्तित्व आर्थिक आधार पर था । वैसा मध्य वर्ग नहीं था जैसा फ्रांस में अठारवीं शताब्दी में था । मध्य वर्ग का एक प्रभावशाली वर्ग व्यापारी वर्ग था । इसमें भी छोटे-बड़े थे । नगरों में जो बड़े दुकानदार थे उनकी आय अच्छी थी किन्तु थोक व्यापारी जो विदेशी व्यापार से जुड़े हुए थे वो अधिक सम्पन्न थे । जो व्यापारी साम्राज्य के अन्दर बसे थे वह अधिकांशत: अपना धन प्रच्छन्न रूप से रखते थे जिससे उनके धन को अपहृत न किया जा सके । शिल्पियों या कारीगरों का वर्ग, कृषक वर्ग, आदि राज्य की आबादी का मुख्य भाग थे । मुख्य इसलिए कि राज्य की आबादी का अधिकतम हिस्सा इसी वर्ग में आता है । प्रशासक वर्ग या उच्च वर्ग के अन्तर्गत पाँच प्रतिशत लोग भी यदि मान लिया जाय तो शेष 95 प्रतिशत जनता आर्थिक दृष्टि से गरीब थी । कारीगरों की व्यवसायिक पहचान अनेकों की संख्या प्रकट

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 152, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 376,

करती है । इनमें स्वर्णकार भी थे । जो सोने-चांदी के गहने सूक्ष्म एवं उच्च कोटि के बनाते थे। जो कारीगर हाथी दाँत को सौन्दर्यात्मक ढंग से काटकर तराश कर बनाता था, उसे उत्कृष्ट श्रेणी का कारीगर माना जाता था। पच्चीकारी करने वाले एवं मकान बनाने वाले को भी अच्छी आय प्राप्त होती थी। जुलाहे, लोहार, रंगरेज, कुम्हार, बढ़ई, ये लोग जिस प्रकार की वस्तुओं को अपनी दक्षता के अनुसार निर्मित करते थे उनको उसी के अनुसार कम या अधिक आय प्राप्त होती थी । सबसे दयनीय स्थिति साधरण मजदूरों की थी जो दैनिक अथवा मासिक वेतन पर आश्रित होकर अपने जीवन का किसी प्रकार निर्वहन करते थे। सर्वाधिक संख्या में किसान थे जिसको राजकीय एवं प्राकृतिक विपदाओं का आये दिन सामना करना पड़ता था ।

मुगलकालीन बॉट एवं माप, वेतन आदि के बारे में जानकारी उपलब्ध होती है । इसके लिए आईन-ए-अकबरी एक महत्वपूर्ण श्रोत है । रूपया तथा मोहर का उल्लेख मिलता है शेरशाह द्वारा चलाया गया चांदी का सिक्का रूपया था इसमें अकबर द्वारा सुधार किया गया । सोने का सिक्का मोहर था । दस रूपये की एक मोहर एवं एक रूपये 40 दाम का होता था[1] । गोल मोहर इलाही और चौकोर मोहर को लालजलाली कहा जाता था । इस प्रकार गोल एवं चौकोर दोनों प्रकार की मुहरें प्रचलित थी । 100 तोले से अधिक और 100 मोहर के बराबर मूल्य का एक सिक्का शाहंशाह था। दाम का $\frac{1}{25}$ वाँ मूल्य का सिक्का जीतल कहलाता था।

रत्ती, माशा, तोला सेर और मन का वर्णन तौल के सन्दर्भ में मिलता है। आज की तौल 27 सेर का उस समय मन था । जबकि मन को 40 सेर के बराबर उस समय भी माना जाता था ।

मुगलकालीन उच्च मंसवदारों[2] की आय पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उनकी आय बहुत अधिक थी । साधारण सैनिक जो वेतन पाता था वह मनसबदार से पाता था जो कि वहुत कम होता था । 28,00 रूपये से लेकर 30,000 रूपये तक मासिक वेतन पॉच हजारी मनसबदारों का था । अमीरों की जीवन शैली वहुत अपव्ययात्मक थी। अमीरों का विलासितापरक होना, ऐश्वर्य,

---

1- अवधविहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृष्ठ 570,

2- सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 7-9, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 367,

वैभव एवं शान-शौकत में अत्यधिक लिप्त रहना मुगल आर्थिक जीवन का बड़ा आकर्षक पहलू है क्योंकि यह उस युग की उस संस्कृति का आभास कराता है जो उच्च वर्ग में पली एवं बढ़ी । मनसबदारों का नैतिक आदर्श निकृष्ट था । मरणोपरान्त राज्य द्वारा सम्पत्ति अधिग्रहण के डर से ये धन को अधिक से अधिक खर्च कर देते थें और अपने पास कुछ भी बचाकर नहीं रखते थे । वे रूपये खर्च करने के लिए अपव्यय के सभी रास्तों का अनुसरण करते थे । वे इस प्रकार का जीवन बिताते थे कि उनसे यह आशा नहीं थी कि वे पूँजी का सदुपयोग करें या संग्रह करके उद्योग व्यापार वाणिज्य आदि में लगाये । कुछ अमीर इसके अपवाद थे लेकिन सामान्य स्थिति यह थी कि विलासिता को पूर्ण करने के लिए नर्तकियों, दासियों संगीतकारों आदि को रखने में वे बहुत पैसा खर्च करते थे ।

जन-जीवन -

निम्न श्रेणी के कर्मचारी अपने परिवार का पालन-पोषण बहुत कठिनाई से करते थे । सैनिकों को उस समय असह्य कष्ट होता था जब उन्हें पूर्ण वेतन प्राप्त नहीं होता था । जो लोग सरकारी दफ्तरों में थे राजमहल या भूमि कर के विभाग से उनका सम्बन्ध था वे लोग ऊपरी आय प्राप्त करते थे ।

मनसबदारों के वेतन की तुलनात्मक सारणी[1]

क0 सं0	मनसब	अकबर के समय मासिक वेतन	शाहजहाँ के समय मासिक वेतन	औरंगजेब के काल में	टिप्पणी
1	10	100रू	रू --	रू --	1- कालम 4.5 में
2	20	135	84[1]	84[1]	मासिक वेतन
3	50	250	--	--	निकटतम रूपये तक
4	80	410	290[2]	290[2]	दिया गया है।
5	100	700	410	410	अकबरकालीन दहबाशी
6	300	1400	833	833	(10) से भी कम।
7	400	2000	1040	1040	2- अकबरकालीन
8	500	2500	1666	1666	नं0 3 के प्राय:
9	800	5000	2625[3]	2600[3]	बराबर ।

1-अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 572 ।

क0 सं0	मनसब	अकबर के समय मासिक वेतन	शाहजहाँ के समय मासिक वेतन	औरंगजेब के काल में	टिप्पणी
10	1000	8200	4111	4111	3- अकबरकालीन नं0 8 के प्राय: बराबर ।
11	2000	12000	8333[4]	8333[4]	
12	3000	17000	12500	1200	
13	4000	22000	16666	16666	4- अकबरकालीन हजारी के बराबर।
14	5000	30000	20833	20833	
15	7000	46666	29111[5]	29111[5]	5- अकबर कालीन पंचहजारी से भी कम।

इस सारिणी से स्पष्ट है कि अकबर की तुलना में औरंगजेब के काल में वेतन कम थे । उदाहरण के लिए, अकबर के काल में एक पंच हजारी का वेतन 30 हजार रूपया था तो औरंगजेब के काल में पंचहजारी का वेतन 20,833 था ।

अध्यापको की कई श्रेणियाँ थी । प्रथम वर्ग के अन्तर्गत मौलवी और पण्डित की गणना की जाती थी । ये लोग मस्जिद मन्दिर में पूजन कार्य आदि सम्पन्न करते थे[1] तत्पश्चात समय मिलने पर यहाँ रहने वाले बच्चों को पढ़ाते थे और धर्मग्रन्थों का अध्ययन कराते थे परन्तु इन लोगों के पास इतना धन नहीं था कि पण्डित या मौलवी को देते । अध्यापक वर्ग के अन्तर्गत हिन्दू पण्डित को भी स्थान दिया जा सकता है । ये हिन्दू पण्डित प्रयाग, पुरी, नवद्वीप, हरिद्वार, श्रीनगर, में निवास करते थे और वेदशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, व्याकरण आदि में लोगों को वहाँ की पाठशालाओं में शिक्षित करते थे । उन विद्वानों का समाज में सम्मानीय स्थान था जो विद्या में पूर्णत: पारंगत थे । दूसरे-दूसरे स्थानों से भी विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने हेतु आते थे । इस वर्ग के लोगों को किसी प्रकार की कमी नहीं थी ये अपने जीवन निर्वहन हेतु पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त कर लेते थे । जो मदरसों और मकतबों से सम्बद्ध होते थे । इनको राज्य द्वारा सहयोग प्राप्त था । प्रारम्भ में इनके अन्तर्गत कुछ व्यक्ति को 500 बीघा जमीन प्राप्त होती थी किन्तु बाद में इनकी जमीन प्राप्ति की संख्या में कमी कर दी गयी । इस कोटि के लोगों में तेज और मन्द दोनों ही प्रकार के व्यक्ति होते थे । अन्य धर्म के लोगों पर अत्याचार करने के उनके लक्ष्य से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि संकीर्णता उनमें पूर्णत: गुण के रूप में

1-अवध बिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 573,

विद्यमान थी। अपने धर्म के लोगों में जो लोग कट्टर थे वे इनका सम्मान करते थे । ब्राह्मण विद्वानों की तुलना में विशाल हृदय व चरित्र संयम के अभाव के साथ धन प्राप्त करने की लोलुपता की भावना से प्रेरित थे ।

दो प्रकार के वैद्य थे - राजवैद्य एवं प्रजा वैद्य । वे साधारण जनता की सेवा करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे ।इनको अधिक आय नहीं प्राप्त होती थी किन्तु जो चिकित्सक, राजा, सामन्त, अमीरों की सेवा करते थे उनको अधिक आय प्राप्त होती थी। भारतीय चिकित्सकों की तुलना में कई क्षेत्रों में विदेशी चिकित्सक श्रेष्ठ थे अतः उन्हें सम्माननीय स्थान प्राप्त था । राजदरबार के प्रसिद्ध हकीमों में हकीम अलिमुद्दीन, हकीम सूद्रा, हकीम हस्सू, हकीम उमाम भीमनाथ, चन्द्रसेन आदि थे । जहाँगीर एवं शाहजहाँ द्वारा हकीम अलिमुद्दीन, हस्सू, दाउद को 5000 का मनसब प्राप्त था[1] ।

उद्योग-धन्धों से सम्बद्ध लोग अपना पालन-पोषण, घर में बनाए गए अपने सामानों को बेचकर जो आय प्राप्त होती थी उससे करते थे । उनकी आय बहुत कम होती थी उनका रहन सहन अत्यन्त साधारण होता था । इनकी आय का स्पष्ट आकलन नहीं किया जा सका है । ऐसा अनुमान है कि अकबर से पूर्व कारीगर करों से युक्त थे परन्तु अकबर ने आर्थिक अवस्था को ध्यान में रखते हुये कारीगरों को करो से मुक्त कर दिया । इससे स्पष्ट होता है कि इनकी आय मात्र जीवन निर्वाह के लिए ही पर्याप्त थी और करों को देने में ये असमर्थ थे । अकबर के समय व अकबर के मृत्यु के पश्चात जो स्थानीय कर्मचारी थे वो अवसर मिलने पर बन्द किये हुए करों को लेने की कोशिश में सदैव तत्पर रहते थें । जो पूँजीवाले लोग थे वे अपना सामान नगरों के व्यापारियों को बेचते थे न कि खुले बाजार में बेंचते थें । कारीगर[2] की आर्थिक स्थिति को देखते हुए वे उनसे अपना अधिक से अधिक लाभ उठाने के प्रयास में रहते थे । जो कारीगर सरकारी कारखानों में काम करते थे उन्हें अधिक आय होती थी क्योंकि उन्हें नियमवद्ध वेतन प्राप्त होता था। जब ग्रामीण क्षेत्र के कारीगर अपना सामान खरीददार को सीधे बेंच देते थे तो उनको लाभ होता था परन्तु खरीददार के अभाव में कभी ऐसा भी होता था कि वे अपना सामान बहुत कम दाम में बेंच देते थे । दुर्भिक्ष

1- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 574,

2- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368,

व अकाल के समय हजारों की संख्या में कारीगर मर जाते थे क्योंकि उस समय महंगाई इतनी अधिक हो जाती थी कि वे उसका सामना करने में सक्षम नहीं होते थे । ऐसी स्थिति का सामना नगर व ग्राम दोनो ही जगह के कारीगरों को करना पड़ता था ।

राज, संगतराश, माली आदि ऐसे कारीगर थे जो मजदूरी करके ही रोटी पाते थे । स्वर्णकार, लोहार, बढ़ई, आदि अपनी जीविका मजदूरी के आधार पर चलाते थे[1] । आईन-ए-अकबरी में कुछ लोगों की मजदूरियाँ[2] इस प्रकार है-

साधारण मजदूर	-	2 दाम प्रतिदिन
कुशल मजदूर	-	3-4 दाम प्रतिदिन
बढ़ई	-	3-7 दाम प्रतिदिन
राज	-	5-7 दाम प्रतिदिन

नौकर[3] तीन रूपये प्रति मास पर रखें जाते थे । मजदूरी काफी कम थी परन्तु उनका भरण-पोषण इसी मजदूरी के द्वारा ही होता था क्योंकि उस समय उन वस्तुओं के दाम बहुत कम थे जो आवश्यकता की वस्तुएं होती थी ।

अकबर के समय के वस्तुओं के दाम

संख्या	जिन्स	परिमाण	मूल्य	आजकल के सिक्के और तोल में
1.	गेहूँ	1 मन	12 दाम	प्रति रूपया 2।
2.	काबुली चना	,,	16 ,,	,, ,, 1।।ऽ7।।
3.	जौ	,,	8 ,,	,, ,, 3।ऽ5
4.	सुखदास चावल	,,	100 ,,	,, ,, ।ऽ1
5.	साठी चावल	,,	20 ,,	,, ,, 1।ऽ4
6.	मूँग	,,	18 ,,	,, ,, 1।।ऽ
7.	ज्वार	,,	10 ,,	,, ,, 2।।ऽ8

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 152,

2-अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृष्ठ 578,

3-अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 579,

8.	प्याज	,,	6 ,,	,,	,,	4।।ऽ
9.	लहसुन	,,	40 ,,	,,	,,	।।ऽ7
10.	अदरक	1 सेर	2।। ,,	,,	,,	।ऽ1
11.	चौराई साग	,,	$\frac{1}{4}$,,	,,	,,	2।।ऽ8
12.	अफगान भेड़	1	$1\frac{1}{4}$ - 2रू0	-	-	-
13.	बकरी अच्छी	1	1रू0	-	-	-
14.	गोश्त बकरी	1 मन	54 दाम	प्रति	रूपया	।।ऽ
15.	घी	,,	105 ,,	,,	,,	।ऽ।
16.	तेल	,,	80 ,,	,,	,,	।ऽ3।।
17.	दूध	,,	25 ,,	,,	,,	1ऽ3
18.	दही	,,	18 ,,	,,	,,	1।।ऽ
19.	मिश्री	1 सेर	5।। ,,	,,	,,	ऽ5

विलास एवं श्रृंगार की सामग्री उचित मात्रा में बड़े नगरों के बाजारों में उपलब्ध थे । इस प्रकार के व्यापारी अपने धन को भूमि के अन्दर प्रच्छन्न रूप में रखते थें । ये बहुत धनी होते थे किन्तु सादा जीवन व्यतीत करते थे । श्रृंगार के सामानों पर अपनी इच्छानुसार मूल्य निर्धारित करके लेते थे । इनको कई प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ता था । स्थानीय कर सम्राट द्वारा समाप्त कर दिये गये किन्तु मार्ग में डाकुओं का भय था अतः राहदारी व पानदारी कर व्यापारियों को देना पड़ता था जिससे व्यापारियों एवं राहगीरों की रक्षा की जा सके इसके लिए स्थानीय कर्मचारियों को ये जिम्मेदारी सौंपी गयी[1] ये कर्मचारी सैनिकों की नियुक्ति करते थे और उनके खर्च के लिए राह-कर[2] मांगने का अधिकार इन्हें था । ये लोग मूल्य का $\frac{1}{10}$ भाग कर के रूप में लेते थे । वस्तुओं का मूल्य इनकी इच्छा पर निर्भर था ये व्यापारियों का सामान लेकर उन्हें अल्पतम दाम देते थे। इन व्यापारियों को प्रथम असुविधा इन रक्षकों से ही थी । जो मार्ग जंगल से लगे हुए थे उस पर चोर डाकुओं से हमेशा दहशत बनी रहती थी इनसे सुरक्षित रहने के लिए व्यापारी अपने साथ पहरेदार लेकर चलते थे । राजकर्मचारी व मनसबदार व्यापारियों से उधार सामान लेते थे जिसे वसूलने में व्यापारियों को कठिनाई होती थी । अतः इन व्यापारियों को आय अधिक होने के बावजूद घाटे का सामना करना पड़ता था। किन्तु इनके पास प्रच्छन्न रूप से धन विद्यमान थे ।

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 366,

2-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 137, खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब भाग-2, पृ0 29, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 152,

प्रमुख उद्योग -

विदेशी व्यापारियों द्वारा मुख्य जल एवं थल मार्गो के निकट नगरों का उल्लेख मिलता है । हर सरकार के अन्तर्गत एक मुख्य नगर था । प्राय: एक सरकार के अन्तर्गत कई नगर होते थे । छोटे कस्बे में परगने का कार्यालय था। इस समय समृद्ध नगरों की अधिकता थी ये उन्नतिशील होते थे इनके द्वारा उद्योग व्यवसाय को भी हर प्रकार से सहायता प्राप्त थी । उद्योग व्यवसाय कई भागों में बटा हुआ था जिससे इनकी जानकारी प्राप्त करने में सुविधा हो ।

गुड़ को साफ करके चीनी व मिश्री बनाने का कार्य बंगाल[1], गुजरात, और पंजाब में सम्पन्न होता था । मिश्री का भाव चीनी से और चीनी का भाव गुड़ से अधिक था । मिश्री का दाम अधिक था अकबर के समय पॉच रूपये सेर मिश्री थी अत: धनी लोग ही मिश्री का प्रयोग करते थे साधारण लोग दवा के रूप में मिश्री का प्रयोग करते थे । अफीम बिहार और मालवा में बनती थी[2]। इसका प्रयोग साधारणत: मादक पदार्थो के रूप में और दवा बनाने के लिए किया जाता था । यह विदेशों को निर्यात होती थी । बयाना में नील का उत्पादन बड़ी मात्रा में होता था अन्य कई जगहों पर नील की खेती होती थी ।

अल्प आय के कुम्हार, बढ़ई, जुलाहा, आदि कुटीर उद्योग के स्वामी थे। मिट्टी के सुन्दर वस्तुओं के निर्माण हेतु चुनार, काशी, दिल्ली, प्रसिद्ध था । मिट्टी के खिलौनों की मांग अधिक नहीं थी फिर भी उनका निर्माण सर्वोत्कृष्ट था । बढ़ई, बारीकी के साथ-साथ साधारण काम भी करते थे । बढ़ई मकान में उपयोग हेतु सामग्री, खेती हेतु सामग्री, नाव, चारपायी, संदूक, तख्त, आदि भी निर्मित करते थे। राजदरबार एवं अमीरों हेतु सामान सर्वोत्कृष्ट कारीगरों द्वारा ही निर्मित होता था । इनके द्वारा सुन्दर नक्काशी वाली चारपायी, नौकायें, एवं मन्जूषाएँ निर्मित होती थी। 1000 मन से 6000 मन सामान तक का जहाज तथा नॉव बनाया जाता था जिसका उपयोग तटीय व्यापार हेतु किया जा सके । 30,000 हजार मन का भारवहन हेतु विशालकाय जलपोत हाजियों के उपयोग के लिए निर्मित किये गये[3]।

1- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 98,

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 102,

3- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 105

युद्ध के लिए सामग्री तैयार करने वाले लोहार अत्यधिक महत्वपूर्ण थे । यह कटार, बरछा, तीर, भाला, बन्दूक, तलवार[1] आदि तैयार करते थे किन्तु तोप और बन्दूकें उतनी अच्छी नहीं बन पाती थी जितनी की तलवार व कटार । सम्राट ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि वे अपने कारखाने में उत्कृष्ट युद्ध सामग्री को निर्मित करवाये या उन्हें विदेशों में भेजकर उत्कृष्ट साामग्री तैयार करने हेतु सीखने का अवसर देकर उन्हें प्रोत्साहित करें । बड़े-बड़े नगरों में सर्वोत्कृष्ट कारीगर के अलावा लोहारों की आवश्यकता हर जगह पड़ती थी ।

पीतल, कांसा, तांबा, के बर्तन बनाने के कई केन्द्र थे । तांबे के अच्छे कारीगर दिल्ली के पास रहते थे । काशी में पीतल के वर्तन वनते थे तथा कांसे के बर्तन के लिए बंगाल प्रसिद्ध था । हिन्दू प्रायः धातु के बर्तन का प्रयोग करते थे किन्तु हिन्दुओं में छोटी जाति के लोग व मुसलमान मिट्टी के बर्तन का प्रयोग करते थे । चीनी मिट्टी के कलात्मक बर्तन जो बाहर के देशों से मंगाया जाता था। उसका प्रयोग उच्च वर्ग के लोगों में किया जाता था । रत्नों से युक्त वस्तुओं का प्रयोग मन्दिरों, मठों, धनीवर्गो एवं दरबार में किया जाता था । रत्न जटित वस्तुओं के निर्माण करने वाले कारीगरों की आय अधिक होती थी । ये कारीगर अपने देश में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को ही निर्मित करते थे । हाथी दांत, मोती, मूँगा, आदि द्वारा विलासिता हेतु वस्तुओं का निर्माण किया जाता था ।

मादक वस्तुओं के प्रयोग की अधिकता थी । कुछ व्यक्ति ताड़ी व शराव बनाने में लगे थे । सामान्यतः महुआ व शीरे द्वारा शराब बनती थी जो बहुत अच्छी नहीं मानी जाती थी । ईरान व यूरोप से बनी अंगूर की शराब आती थी । ताड़ी का प्रचलन बड़ी मात्रा में था । चमड़े के व्यवसाय में विशेष प्रगति नहीं हुयी थी । उच्च वर्ग में जूते का प्रयोग किया जाता था । चमड़े द्वारा निर्मित "मशक" 'मोट[2]' का प्रयोग कूएं से सिंचाई के लिए किया जाता था । साधारण डोरियाँ व ऊँट की काठी का निर्माण चमड़े द्वारा किया जाता था । यह व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्रों में चर्मकारों द्वारा पुश्तैनी रूप से किया जाता था ।

इस युग में उन्नतिशील व्यवसायों में सर्वाधिक उन्नतमुख व्यवसाय कपड़े

1- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0 9,

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 576

का था । सूत, ऊन व रेशम का प्रयोग कपड़ा बनाने के लिए किया जाता था। बंगाल व कश्मीर में रेशम का सूत होता था और कुछ सूतों का आयात विदेशों से किया जाता था । कपड़े साधारण व धनी दोनों वर्ग के आवश्यकतानुसार बनाये जाते थे । सम्राट का कारखाना लाहौर, आगरा, ढाका. अहमदावाद में स्थित था जहाँ उसकी आवश्यकता के अनुरूप कपड़ों को निर्मित किया जाता था ।

अधिकांशतः कच्चा माल बंगाल में तैयार होता था जिसमें से कुछ गुजरात व मध्यदेश जाता था और कुछ वहाँ के स्थानीय प्रयोग में आता था । गुजरात उच्चकोटि के रेशम के कपड़े के लिए प्रसिद्ध था[1] । मुगल कारखानों में कार्यरत कारीगरों द्वारा अच्छे-अच्छे कपड़े तैयार किये जाते थे जो विदेशी सामानों से प्रतिस्पर्धा कर सकते थे । बंगाल में सन-जातीय पौधा जो जंगल में होता था उससे वना कपड़ा रेशम के सदृश्य था । कश्मीर में चटकीले रंगों व सुन्दर बूटे के कपड़े निर्मित होते थे । बाह्य देशों के कपड़ो की भी मांग अपने देश में बहुत थी । उच्च वर्गो के प्रयोग हेतु रेशमी कपड़ों में साने-चांदी की कढ़ाई से सुसज्जित किया जाता था । सुन्दर कसीदाकारी के लिए भारतीय कारीगर प्रसिद्ध थे ।

ऊनी कपड़ों का प्रमुख केन्द्र पंजाब, कश्मीर, तथा पहाड़ी क्षेत्र था । कश्मीर व लाहौर सुन्दर शालों के लिए प्रसिद्ध था[1] । एक रूपये में चार मोटे कम्बल मिलते थे । अबुल फजल के अनुसार सम्राट द्वारा एक हजार कारखाने लाहौर में स्थापित किये गये थे । इस व्यवसाय में उन्नति न होने के कारण यह था कि कारीगरों को उत्कृष्ट कच्चामाल उपलब्ध नहीं था । यहाँ के कारीगर बहुत ही कुशल होते थे जो बहुत ही सहजता से विदेशी कलाकृतियों जैसा सामान तैयार कर लेते थे । गलीचों के लिए आगरा प्रसिद्ध था । फारस की कालीनों की अपेक्षा ये बहुत अच्छे नहीं होते थे । विदेशों से हमेशा कीमती सामान का आयात होता रहा ।

अन्य व्यवसायों की अपेक्षा सूती कपड़ों के व्यवसाय का स्थान अलग था। सूती कपड़ा अपने उन्नतिशील अवस्था में था । सूती कपड़ों[2] के व्यवसाय के प्रमुख केन्द्र उत्तरप्रदेश में मऊ, काशी, आगरा, सिन्ध, पंजाव, में लाहौर, मुल्तान. गुजरात में अहमदाबाद, बड़ौदा, पाटन, सूरत, गोलकुण्डा थे। विश्वविख्यात बारीक मलमल का

1- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग 2, पृ0 93

2-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370

केंन्द्र बंगाल था[1]। भारत के मोटे कपड़े व छीटों[2] का प्रयोग विदेशों में अभिक होता था । भारत के कपड़े का चीन, जापान, ईरान, अरव, अफ्रीका, आदि में निर्यात होता था । भारत के कपड़ें के लिए विदेशी व्यापारी लोलुप रहते थे । भारत का कपड़ा यूरोप तक पहुँचाने का श्रेय यूरोप की व्यापारी कम्पनियों को था । जब भारत के कपड़े के विरूद्ध इंगलैण्ड में कान्ति हुयी तो वहाँ के व्यवसायिक कान्ति के परिणाम स्वरूप अच्छे कपड़ों को निर्मित करने लगे जिससे भारत में अराजकता विद्यमान हो गयी और भारतीय सूती कपड़ के व्यापार को अंग्रेज कम्पनी के प्रतिनिधियों द्वारा नियमित ढंग से समाप्त किया गया । यह स्थिति 18 वीं शताब्दी में प्रकट हुयी।

तटीय व्यापार एवं अंग्रेज -

समुद्र तट के व्यापारियों की स्थिति अधिक सुरक्षित थी इसलिए वो बहुत आराम से रहते थे । कुछ व्यापारी अत्यधिक समृद्धिशाली थे । वीरजी वोहरा सूरत का व्यापारी[3] था वह विश्व के सर्वाधिक धनी व्यापारियों में माना जाता था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समकक्ष व्यापार अब्दुलगफूर नामक व्यापारी का था[4] । समुद्र तट पर भारतीय व्यापारियों के अलावा पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी, ईरानी, और अरब व्यापारी भी रहते थे । कुछ व्यापारी चीन और जापान से भी आते थे । भारतीयों के हाथ में सम्पूर्ण भारत का तटीय जहाजी व्यापार था । सर्वाधिक प्रतिस्पर्धा समुद्र पार व्यापार करने में थी । सिन्ध, गुजरात, और खम्भात के भरतीय व्यापारी ईरान, अरब, मिश्र, तुर्की, आदि देशों तक तब तक जाते थे जब तक समुद्र तट से होकर जाने से व्यापार में बाधा उत्पन्न नही होती थीं। कन्दहार होकर व्यापार स्थलमार्ग द्वारा होता था । पुर्तगालियों के आने के बाद जो सामान योरप जाताथा।वह पुर्तगालियों के जहाजों द्वारा ले जाया जाता था। कुछ समय बाद डचों ने पुर्तगालियों की शक्ति कम कर दी और पूर्व के द्वीप पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया परन्तु 1763 ई0 में अंग्रेजों ने इन लोगों को हराकर अपना अधिकार स्थापित कर लिया । भारतीय शासकों ने समुद्रपार व्यापार व सामुद्रिक शक्ति पर यथोचित ध्यान आकृष्ट नहीं किया । जव अपने देश की सरकार

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 439,

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0 92,

3- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 493,

4- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 371,

द्वारा सैनिक सहायता व्यक्तिगत व्यापारियों को प्राप्त होती, तभी उनके लिए इस प्रकार का कार्य करना सम्भव था और यही संभव न होने पर विदेशी व्यापारियों ने भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया ।

अंग्रेजों ने सन् 1612 ई0 में अपनी पहली कोठी सूरत में स्थापित की थी। वे व्यापार की अपनी वस्तुएं थल मार्ग से आगरा तथा दिल्ली भेजते थे बदले में वहाँ की वस्तुएं मंगवाते थे[1] । जहाँ तक अंग्रेजों का मुगलों के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करने का प्रश्न है इसकी शुरूआत अकबर के शासनकाल में हुई। 1579 ई0 में फादर टॉमस स्टीवेन्स नामक एक जेसुएट गोवा आया! उसने अपने देशवासियों के हृदय में भारत के प्रति रूचि उत्पन्न की । 1579 ई0 से इंगलैण्ड तथा भारत के बीच सम्बन्ध बढ़ाने के प्रयास अनवरत होते रहे । 1581 ई0 में कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने साम्राज्ञी एलिजाबेथ से अधिकार पत्र प्राप्त कर भारत में एक कम्पनी की स्थापना कर दी। 1583 ई0 में लन्दन के एक व्यापारी जॉन न्यूवरी को भारत भेजा गया । भारत वर्ष के साथ इंगलैण्ड का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का यह पहला प्रयत्न था । जॉन न्यूवरी के साथ तीन और व्यक्ति विलियम लोड्स, जैम्स स्टोरी, तथा रॉल्फ पिट्स भी भारत आये । पिट्स ने फतेहपुर सीकरी तथा आगरे का भ्रमण किया और उसने इन नगरों का रोचक वर्णन किया । अकबर के शासनकाल में जॉन मिडनॉल भारत आया । वह अपने साथ साम्राज्ञी का एक पत्र अकबर के नाम से लेकर आया था । पत्र में उन्ही शर्तो पर भारत में व्यापार करने की अंग्रेजों के लिए अनुमति मांगी गयी थी जो पुर्तगालियों को मिली हुयी थी । उसके बाद सर टॉमस रो को अपना दूत बनाकर सम्राट जेम्स प्रथम ने मुगल दरबार में भेजा किन्तु 1608 ई0 के पूर्व तक भारत वर्ष के साथ अंग्रेजों के व्यापारिक सम्बन्धों की वास्तविक स्थापना न हो पायी । 1612 ई0 में सूरत में अंग्रेजों की कोठी स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेजों का व्यापार बढ़ने लगा । 1633 ई0 में अंग्रेजों ने अपनी एक कोठी बालासोर में तथा दूसरी हरीहरपुर में खोली 1640 ई0 में मद्रास के सेंट जार्ज किले का निर्माण प्रारम्भ किया गया । यह स्थान मुगल साम्राज्य की सीमा से बाहर था । 1651 ई0 में अंग्रेजों ने बंगाल में हुगली में अपना व्यापार केन्द्र स्थापित किया । तत्कालीन सूबेदार शाहशुजा ने 1652 ई0 में अंग्रेजों को एक निशान प्रदान किया । इसके द्वारा अंग्रेजों को बंगाल में व्यापार करने के लिए तीन हजार रूपये वार्षिक[2] कर देना था अन्य किसी प्रकार की चुंगी या कर उनसे नहीं

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेव, पृष्ठ 363,

2-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 364,

लिया जाना था। उत्तराधिकार के युद्ध के समय बंगाल में अंग्रेजों का व्यापार बहुत अच्छी तरह चल रहा था । औरंगजेब के गद्‌दी पर बैठने के बाद अंग्रेजों के व्यापार का वृत्तान्त एवं उसका मुगल साम्राज्य पर प्रभाव प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय 7 में वर्णित किया गया है ।

जदुनाथ सरकार के अनुसार- "10 अप्रैल 1665 को औरगंजेब ने आदेश दिया कि भविष्य में बाहर से लाये जाने वाले माल पर चुंगी दो निश्चित दरों के अनुसार वसूल की जायेगी, मुसलमानों से $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत और हिन्दुओं से 5 प्रतिशत, हिन्दुओं के समान यूरोपीयों पर भी प्रत्येक व्यक्ति की गणना के अनुसार जजिया कर लगाकर उसे वसूल करने में मुगल शासकों ने कठिनाई का अनुभव किया एवं जजिया के बदलें में आने वाले उनके माल पर वसूल की जाने वाली चुंगी की दर को बढाकर $3\frac{1}{2}$ कर देने का प्रस्ताव मार्च 1680 में किया गया था[1]।"

बंगाल में अंग्रेजों ने दो बात का दावा किया था । प्रथमतः शुजा द्वारा सन् 1652 में निश्चित कुल मिलाकर केवल 3,000 हजार देकर लाये हुए सारे माल असली कीमत पर से चुंगी देने से छुटकारा पाना । द्वितीय औरंगजेब के सन् 1680 ई0 के फरमान के अनुसार सूरत के बन्दरगाह में एक बार चुंगी चुका देने के बाद भारत के अन्य किसी भी भाग में बिना कोई कर या चुंगी दिये बेरोक-टोक व्यापार करना । उनकी ये दोनों ही मांगे बिल्कुल सारहीन तथा निराधार थी, किसी भी प्रकार उनका समर्थन नहीं किया जा सकता था । अंग्रेजों ने जिन कुप्रथाओं और वसूलियों का उल्लेख किया उनका अन्त कर देने के लिए औरंगजेब ने कई वर्ष पहले ही आदेश दिये थे और शाही आज्ञाओं का उल्लंघन करके ही अब तक वे जारी रखे गये थे ।

<u>आयात-निर्यात</u> -

ये विदेशी जो सामान यहाँ लाते थे उसकी यहाँ आवश्यकता रहती थी अतः उनका विरोध नहीं किया जाता था । विदेशों से ताँबा, सीसा, चाँदी सोना आता था। भारत में सोना, चाँदी की कमी के कारण इसकी मांग विदेशों से बहुत रहती थी । फ्रांस से ऊनी कपड़े आते थे । इटली, ईरान, तूरान, से रेशम के कपड़े आते थे। ईरान से कालीन और चीन से कच्चा रेशम[2] आता था । अच्छे घोड़े विदेश

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 366,

2- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370,

से ही आते थे उनकी नस्ल को अच्छा करने के लिए ध्यान दिया जाता था। भारतीय सेना में ईराकी अरबी अथवा ईरानी घोड़े बहुत अधिक नहीं रहते थे । अधिकतर तुर्की और ताजिक घोड़ों द्वारा काम चला लिया जाता था । जल और स्थल दोनों मार्गो द्वारा घोड़ों का व्यापार होता था । जो खच्चर मंगाए जाते थे उनका दाम 1,000 रूपया तक था । इनके अलावा मेवा, फल, कस्तूरी, शराब, दास-दासियाँ, श्रृंगार की वस्तुएं, लड़ाई का सामान आदि कलापूर्ण सामग्रीयाँ भी आती थी । यहाँ से सर्वाधिक मात्रा में विदेशों को सूती कपड़ों का निर्यात होता था । रेशमी कपड़ा गुजरात से बाहर जाता था । मोती, सुन्दर, आभूषण, काली मिर्च आदि विदेशों में भेजा जाता था । बंगाल से कच्चा रेशम खरीदकर डच व्यापारी विदेशों में भेजते थे । विदेशों में नील, अफीम, मिश्री, चीनी की मांग बहुत थी[1] । औरंगजेब के समय राज्य को 30 लाख रूपये की चुंगी इसलिए प्राप्त होती थी कि देश की जनसंख्या के आधार पर विदेशी व्यापार का परिणाम अत्यधिक अल्प था।

इसकी अपेक्षा 110 गुनी आय किसानों द्वारा प्राप्त होती थी । किसानों का जीवन साधारण व सन्तोषजनक था । किसानों के पास पर्याप्त भोजन-कपड़े का अभाव था । वे आर्थिक संकट में जीवन व्यतीत करते थे । सामान्य भोजन से ही वे तुष्ट रहते थे। किसानों के प्रमुख रूप से कई शत्रु थे ।

राजकर्मचारी उनके शत्रुओं में से एक थे । तराई का जंगल दक्षिण तक विस्तृत था । खेती होने वाले स्थान घने जंगलों से आच्छादित रहते थे । जिसमें शूकर, हिरन, हाथी, नीलगाय इत्यादि अत्यधिक संख्या में रहते थे जिससे फसल को बहुत नुकसान पहुँचता था । ''आखेटवन'' एवं अनेक जंगल सम्राट के थे जिससे जानवरों को मारने की अनुमति नहीं थी । प्रकृति हमेशा उनके पक्ष में नहीं थी । प्राकृतिक अनिश्चितता के साथ अकाल व दुर्भिक्ष के भाजन भी किसान होते थे। यातायात के साधनों के अभाववश जनता को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़ते थे।

अकाल -

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, युद्धों, विद्रोहों, आदि कारणों से प्रायः अकाल पड़ जाते थे । एक भीषण अकाल 1555-1556 ई0 में अकबर के काल में पड़ा। अनेक लोगों के मृत्यु के कारण दिल्ली वीरान हो गयी । बदायूँनी का कहना

1-मजुमदार रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहस भाग-2, पृ0 286,

है कि सम्पूर्ण क्षेत्र वीरान हो गया था । भूखे लोगों को तड़पते देखना अपने आप में एक सजा थी। भूख से तड़पते हुए मनुष्य असह्य पीड़ा का अनुभव करते थे। गुजरात में 1573-74 में अकाल पड़ा[1] इससे जो महामारी फैली उससे धनी-निर्धन सभी को असह्य कष्ट हुआ ।

1595-1598 ई0 में अनावृष्टि से सभी जगह फसल खराब हो गयी। अनेकों शव सड़को पर पड़े रहते थे जिन्हें कोई उठाने वाला नहीं था । अकाल के साथ ही हैजा भी फैल गया जिसके कारण हजारों व्यक्ति मर गये ।

इनफ्लूएन्जा और प्लेग की बीमारी जहाँगीर के समय फैली । ये दोनों बीमारियां गुजरात में पूर्णतः व्याप्त रही । 1616-1624 में उत्तर भारत में जो प्लेग फैला[2] उससे लाखों व्यक्ति मर गये । आगरा के विषय में कहा गया कि यहाँ रोज 100 आदमी मर रहे थे । सम्राट द्वारा जनता की सहायता का प्रयत्न किया गया परन्तु चिकित्सक उपचार करने में असफल रहा ।कई वर्ष तक प्लेग का यह आतंक व्याप्त रहा जिससे लोगों को अपने प्राणों की रक्षा करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा ।

1630-31 में शाहजहाँ के काल में अकाल पड़ा[3] जिससे गोलकुण्डा, अहमदनगर, मालवा और गुजरात प्रभावित रहा । अब्दुल हमीद लाहौरी का कहना है कि लोग रोटी को पाने के लिए तरस रहे थे परन्तु रोटी देने वाला कोई नहीं था । लोगों को असह्य कष्ट था । वे खाने के लिए तरस रहे थे और कुछ भी खाने को तैयार थे । सर्वप्रथम उन लोगों ने कुत्तों को और बाद में अन्य जानवर को मारना शुरू कर दिया । यहाँ तक की लोग अपने बच्चों का मांस खाने को तैयार थें । इसी प्रकार का अकाल 1641 ई0 में कश्मीर और 1646 में पंजाब में पड़ा । तीन मई 1668 ई0 को थट्टा से सूचना आयी की भूकम्प से समूचा कस्बा नष्ट हो गया और 30 हजार मकान गिर गये[4]।

1-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 283, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368,

2-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ0 194,

3-बी0पी0 सक्सेना, हिस्ट्री आफ शाहजहाँ आफ देहली, पृ0 292,

4-मुहम्मद साकी मुस्तैद खाँ, मआसिर-ए-आलमगीरी-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 129,

1659 ई0 1670-71, 1682, 1702, 1704, में औरंगजेब के काल में अकाल पड़ा[1]। परन्तु पहले की अपेक्षा इतना भयंकर अकाल इस समय नहीं था। जदुनाथ सरकार के अनुसार, मध्यकाल में गुजरात में अकाल प्रायः पड़ते रहते थे और औरंगजेब के शासनकाल में यह परिस्थिति किसी भी प्रकार नहीं सुधरी थी। सन् 1681, 1684, 1690, 1695-96 और 1698 में गुजरात में अकाल का विवरण मिलता है । 1696 ई0 में तो ऐसा भयंकर अकाल पड़ा था कि 'पाटल से लेकर जोधपुर तक कहीं भी पानी की बूंद या घास का एक तिनका देखने को नहीं मिल सकता था'। इन दैवी विपत्तियों के साथ ही महामारी भी कई वर्षो तक कई नगरों में निरन्तर बनी रही जिससे वे नगर वीरान हो गये । जब मुगल राजपूत युद्ध चल रहा था तब महाराणा राजसिंह के पुत्र भीमसिंह ने 1680 ई0 में गुजरात पर भी हमला किया और बड़नगर, विशालनगर, तथा अन्य कई समृद्ध नगरों को लूटा । प्रान्त की शान्ति को तब भंग करने वाली यही एक महत्वपूर्ण घटना थी[2] ।

जनता को अकाल से राहत देने के लिए सभी मुगल सम्राटों ने प्रयत्न किया। दूसरे राज्य से वहाँ अतिशीघ्रता से अन्न पहुँचाया गया । कर माफ कर दिये गये और राज्य की ओर से मुफ्त में अन्न बाँटा गया । सम्राट औरंगजेब ने 1659 ई0 में पानदारी व राहदारी नामक कर हटा दिया और व्यापारियों को अविलम्ब अन्न पहुँचाने के लिए प्रेरित किया[3] । जनता की सहायता हेतु सड़कों नहरों और राजकीय इमारतों का निर्माण किया गया परन्तु सहायता जब तक पहुँचती अकाल के कारण हजारों व्यक्ति भूख से तड़प कर मर चुके थे इस प्रकार यह राज्य का दोष था[4]। कर की अधिकता के कारण कृषक अकाल के समय इसका सामना करने में सक्षम नहीं थे । यही स्थिति कारीगर और मजदूर वर्गो की थी। सरकार द्वारा आपात स्थिति का सामना करने के लिए पहले से किसी प्रकार की तैयारी नहीं थी ।

1-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 511,
डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकवर टू औरंगजेव, पृ0 165-166,

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 394, मुहम्मद अमीन कजवीनी, बादशाहनामा-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड पृ0 19,

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 366,

4- मीरात, का विचार है कि सम्राट ने गुजरात में अनाज पर से चुंगी समाप्त कर दिया और बनियों के द्वारा अनाज भरकर छिपाने की मनाही कर दी, मीराते अहमदी पृ0 329, जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेव एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 511 ।

शाहजहाँ के शासनकाल में देश की समृद्धि -

सम्राट के पास लोगों की रक्षा करने के लिए बहुत साधन थे । वह अत्याचारियों को दण्ड देता था । वह जानता था कि उसकी प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है । भूराजस्व के अधिकारियों को भी वह इसकी आवश्यकता बताया करता था और प्रत्येक जिले में ईमानदार और बुद्धिमान अधिकारी नियुक्त करता था । वह भूमि के वार्षिक आकड़ों की जाँच कराता था और देखता था कि साम्राज्य के साधन और आमदनी के स्रोत क्या है। वह प्रजावत्सल सम्राट था[1] । आवश्यकता पड़ने पर वह कठोर कदम भी उठाता था। खालसा के और जागीरों के सरकारी अधिकारियों को सख्ती के साथ हुक्म दिया जाता था कि कृषि की उन्नति पर और भूमि कर के संग्रह पर ध्यान दिया जाँय। इन सब उपायों से देश की समृद्धि खूब बढ़ी । जिस परगने की आमदनी अकबर के समय में तीन लाख रूपये थी, वह अब दस लाख रूपये हो गयी[2] परन्तु कुछ परगनों की आमदनी इतनी नहीं बढ़ी । जिन लोगों ने अपने खेतों को बहुत अच्छी तरह जोता तथा बोया और इस प्रकार भूमिकर में वृद्धि की, उन पर सम्राट ने ध्यान दिया और जिन्होने ऐसा नहीं किया उनकी उपेक्षा की गयी ।

इस शासनकाल मे साम्राज्य का खर्च बहुत बढ़ गया । भवन निर्माण और दूसरे कामों पर तथा सेना पर बड़ा खर्च हुआ । बल्ख, बदख्शाँ[3] और कन्धार पर सेना भेजी गयी जिस पर चौदह करोड़ रूपया खर्च हुआ और भवन निर्माण पर ढाई करोड़ रूपये लगे[4]। खर्च में इस एक ही उदाहरण से अनुमान लगाया जा सकता है कि अन्य कार्यो पर क्या खर्च हुआ होगा । युद्ध के समय बड़ा खर्च होता था । निश्चित वेतन के अतिरिक्त और भी खर्च करना पड़ता था । पिछले बादशाहों के समय इसका एक चौथाई भी नही खर्च होता था । फिर भी सम्राट ने थोड़े से समय में ही इतना धन संग्रह कर लिया जितना इसके पूर्वज वर्षो में भी नहीं कर पाते।

1- बी0 पी0 सक्सेना, हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ देहली, पृ0 271,

2- रायभारमल, लुब्बत-तवारीख-ए-हिन्द-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खंड, पृ0121

3- मुहम्मद मासूम, फुतुहात-ए-आलमगीरी, ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खंड, पृ0 140,

4- रायभारमल, लुब्बुत-तवारीख-ए-हिन्द-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खंड, पृ0 121.

शाहजहाँकालीन अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित रूप से समीक्षित की जा सकती है :-

शाहजहाँ के शासन के अवसान के समय मुगल आर्थिक प्रणाली पतन की ओर अग्रसर थी । मोरलैण्ड[1] के अनुसार- जुलाहे स्वयं वस्त्र विहिन रह कर दूसरों को वस्त्र उपलब्ध कराने के लिये कठिन परिश्रम करते थे । कृषक स्वयं भूखे रह कर नगरों और कस्बों का पेट भरने के लिए कठिन परिश्रम करते थे । भारत को यदि एक इकाई माने तो भारतीय व्यापार के बारे में यह कहा जा सकता है कि भारत वहुमूल्य पत्थरों के बदले दूसरे देशों को रोटी दे रहा था । जनता प्राय: भूखमरी की कगार पर रहती थी । जब तक भोजन का अभाव बड़े पैमाने पर नहीं होता था जनता सामान्य ढंग से जीवन यापन करती रहती थी । अकाल पड़ जाने पर जनता का जीवन दूभर हो जाता था और वह अनेक मुसीबतों में पड़ जाती थी। कुछ लोग दास व्यापारियों के हाथ में पड़ जाते थे और यदि कोई सहारा नहीं मिलता था तो आत्महत्या, भूख से मृत्यु या मनुष्य मांस भक्षण की स्थिति आ जाती थी। मुगल आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक तत्वों का अभाव था । अभाव से छुटकारा पाने के लिए जो तरीके कारगर हो सकते थे उनको प्रोत्साहित करने की कोई सशक्त नीति नहीं अपनाई गयी । उत्पादन की वृद्धि और जीवन स्तर के उन्नयन से अभाव की स्थिति पर नियंत्रण पाया जा सकता था । इनका अभाव था । प्रशासन की स्थिति ऐसी थी कि उत्पादन बढ़ाने के लिए राज्य चाहे जो आदेश देता कृषक इसके लिए तैयार नहीं होते थे क्योंकि वे जानते थे कि अधिक उत्पादन का अर्थ है अधिक कर अदायगी । जीवन स्तर के उन्नयन के प्रदर्शन का अर्थ होता है आर्थिक शोषण रूपी संकट को नियंत्रण देना[2] । जहीरूद्दीन फारूकी का विचार है कि हिन्दू का साधारण तौर पर जीवन यापन प्राचीन परम्पराओं एवं आदतों के अनुसार होता है। वे मितव्ययी होते है। कस्बे में रहने वाले मुसलमान अधिक खर्च करने वाले होते थे । रहन सहन का निर्धारण करते समय इसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए[3]।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्थिक प्रशासन की मुसीबते बढ़ जाती है । युद्धों के कारण आर्थिक विनाश, जागीरदारी का संकट, राजनीतिक विघटनकारी तत्वों की सक्रियता के कारण आर्थिक प्रशासन की जड़े हिल गयी । जो मुगल

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 304,
   बी0 पी0 सक्सेना, हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ देहली, पृ0 298,
2- डब्लू0एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 305,
3- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 505,

साम्राज्य के पतन का कारण बनी । जनता की क्रय शक्ति कमजोर थी । ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर थी । प्रशासनिक उत्पीड़न अधिक था । कृषकों की संख्या अधिक थी । शिल्पी भी बहुत थे । अधिकतम जनता की मेहनत की कमाई का प्रतिफल चन्द संख्या के लोगों के द्वारा उपभोग किया जा रहा था । उपभोक्ता वर्ग में धनीमानी अमीर वर्ग व्यापारी वर्ग एवं अन्य प्रशासनिक अधिकारी तथा जमींदार वर्ग के लोग एवं सम्राट तथा उसके परिवार के लोग शामिल थे । इसमें कुछ मध्यम वर्गीय लोगों को भी शामिल किया जा सकता है जैसे कवि, साहित्यकार,कलाकार, सम्राट, के अनुदान या दान से समृद्ध हुये लोग इत्यादि । इन सब की सम्मिलित संख्या कुल आबादी का एक न्यूनतम प्रतिशत थी । जो अनुमानतः 10 प्रतिशत से अधिक नहीं रही होगी । शेष जनता जिसमें कृषक, शिल्पी, बुनकर, लघु व्यवसायी, आदि थे, ये उत्पादक वर्ग था, श्रमिक वर्ग में गिने जा सकते है किन्तु स्वयं अपने उत्पादन का लाभ नहीं उठा पाते थे । इन्हीं का शोषण करके धनीमानी 10 प्रतिशत उपभोक्ता वर्ग अपनी समृद्धि एवं विलासिता का जीवन व्यतीत करता था । मोरलैण्ड[1] का यह कथन सारगर्भित है । ''उत्पादक वर्ग का जीवन जीने योग्य नहीं रह गया था''।

सरकार द्वारा कुछ गलतियाँ भी प्रमुख रूप से हुई उन्होने अत्यधिक राजकर लगा दिया जो छोटे वर्ग के लोग थे उन्हें कम वेतन दिया, निर्धन लोगों के धन को विलासिता जैसे अनावश्यक चीजों पर खर्च करके देश के आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया । यातायात के साधनों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया । साम्राज्य को विस्तृत करने की इच्छा से उसने आन्तरिक स्थिति को मजबूत आर्थिक संगठन द्वारा पुष्ट करने की ओर पूर्णतः ध्यान आकृष्ट नहीं किया । अनेक व्यवसायों के उन्नति एवं स्थापना की ओर ध्यान न देते हुये अपना जहाजी बेड़ा बनाने का भी प्रयत्न नहीं किया साथ ही विदेशी व्यापार की उपेक्षा की[2] । विदेशी व्यापारियों द्वारा भारत में निजी छापे खाने खोले गये किन्तु मराठा, राजपूत, और तैमूरी, सम्राटों ने छापाखाना व कागज के कारखाने स्थापति करने का प्रयत्न नहीं किया । देश में विद्या का यथोचित प्रसार नहीं हुआ । कुछ आलोचक यह आरोप लगाते हैं कि सरकार ने प्रजा के लिये न ही भोजन व वस्त्र की व्यवस्था की और न ही उसके लिए किसी प्रकार का वौद्धिक साधन की व्यवस्था की । साधारण जनता के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक

1-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 303,

2-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 287,

जीवन स्तर की ओर सरकार का ध्यान नहीं जाता था बल्कि उसकी स्थिति शोषण व उपेक्षा के बाद भी वैसी ही बनी रही जैसी थी । जनता की दुर्दशा की व्यथा दरबार के ऐश्वर्य व वैभव में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है किन्तु इसे सुधारने का किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं हुआ ।

अध्याय 2

औरंगजेब का साम्राज्य
उसके साधन, शासन व्यवस्था, भूराजस्व व्यवस्था

औरंगजेब का शासन काल 1658 ई0[1] से 1707 ई0 तक चला । यह एक लम्बा शासनकाल था । यह काल भारतीय इतिहास के ऐसे दौर का निरूपण करता है जब भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर उथल-पुथल का अंकुरण हो रहा था। 1526 ई0 से स्थापित मुगल साम्राज्य अब उस स्थिति में पहुँच गया था जहाँ से उसका आगे विकास होना सम्भव नहीं था । अब केवल पतन ही उसकी नियति थी । इतिहास में अनेक बड़े-बड़े साम्राज्यों की यही दशा हुयी थी । यह प्रकृति का नियम है कि जिसका उत्थान होता है उसका अवसान भी होता है प्राकृतिक रूप से मुगल साम्राज्य अपना जीवन व्यतीत कर चुका था । अब उसके अवसान की बेला थी । यह औरंगजेब का दुर्भाग्य था कि उसका क्रम अवसान की बेला मे आया । उसके अन्दर असीमित महत्वाकांक्षा, साहस एवं प्रशासकीय क्षमता थी साथ ही साथ सैनिक क्षमता का भी वह धनी था[2] । इनके आधार पर उसने मुगल साम्राज्य की गिरती हुई दशा को नहीं पहचाना प्रत्युत उसे और सुदृढ़ एवं विस्तृत करने के प्रयास में लग गया । वह युग की नब्ज को पहचानने में गलती कर बैठा । उसके सिंहासनारोहण के पहले जो उत्तराधिकार का युद्ध हुआ उससे आगामी युग की समस्याओं को उसे समझ लेना चाहिए था लेकिन उसने युद्ध मे छल-छद्म कूटनीति आदि के सहारे जो सफलता प्राप्त की थी उस कारण उसके मष्तिष्क मे यही विचार बैठ गया हो कि छल-छद्म कूटनीति दमन निरंकुशता इत्यादि से ही शासन को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है तो कोई आश्चर्य नहीं है, युद्ध में विजय प्राप्त करना एक बात है और शासन चलाना दूसरी बात है औरंगजेब के कट्टर स्वभाव से प्रारंभ से ही यह सन्देश जो कि गलत था, जनता में चला गया कि वह महान मुगलों की परंपरा से कुछ हटकर शासन करने वाला सम्राट

1-खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 163 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 415, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 207

है यही गलत सन्देश उन समस्याओं को आधिक जटिल करता गया[1] ।

अपनी ओर से औरंगजेब ने प्रशासन की नीति में कोई 'आमूलचूल' परिवर्तन नहीं किया फिर भी उसके समय ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था, ऐसा कोई विभाग नहीं था जहाँ उत्पात या कठिनाईयाँ न पैदा हुई हो । मुगल साम्राज्य की आर्थिक कठिनाइयों को इस दृष्टिकोण से जोड़कर देखना अधिक न्याय संगत होगा, वनस्पति इसके कि औरंगजेब ने जानबूझकर कोई तुगलकी नीति अपनायी हो और इस कारण साम्राज्य आर्थिक संकट में फंस गया हो । राजनीतिक रूप से देखें तो उसमें मुगल साम्राज्यवाद की उसी मंजिल को प्राप्त करने की कोशिश की थी जिसमें उसके पूर्ववर्ती सम्राट सफल नहीं हुए थें । दक्षिणी नीति अकबर ने प्रारम्भ की थी औरंगजेब ने उसी को पूरा करने का प्रयास किया । धार्मिक दृष्टि से उसने अपने समय की उस जिम्मेदारी को निभाने का प्रयास किया जो एक मुसलमान होने के नाते उसे मुसलमानों के प्रति करनी चाहिए थी । मुसलमानों में अकबर के ही समय से जो असन्तोष व्याप्त था उसको दूर करने का उसने जो प्रयास किया उससे अन्य धर्मो तथा सम्प्रदायों में गलत सन्देश गया । यहाँ भी हम पाते है कि औरंगजेब अपने समय को टटोलने में असमर्थ सिद्ध हुआ । प्रशासनिक नीति का पहलू भी इसीतरह का था । उसके समय साम्राज्य का विस्तार[2] इतना अधिक हो गया था कि प्रशासनिक कठिनाइयाँ आनी स्वाभाविक थी । प्रादेशिक शक्तियों का उत्कर्ष प्रारम्भ हो चुका था उनको सैनिक बल से दबाये रखने की उसकी मजबूरी बन गयी थी अत: प्रशासनिक कठिनाईयाँ लगातार बढ़ती ही गयी यदि उसके पास स्वामिभक्त मनसबदारों की एक लम्बी कतार होती तो वह व्यक्तिगत रूप से सभी विभागों के प्रति समुचित ध्यान दे पाता, इसके अभाव में वह ऐसे शासन का सूत्रधार बन गया जो केवल एक व्यक्ति की योग्यता पर आधारित था । वह व्यक्ति वह स्वयं था । एक व्यक्ति इतने बड़े साम्राज्य की विशाल समस्याओं को नहीं सुलझा सकता था । डा0 जे0 एन0 सरकार[3] ने लिखा है कि औरंगजेब यदि किसी जिले का कलेक्टर होता तो अधिक सफल होता उसका दुर्भाग्य था कि वह एक विशाल साम्राज्य का सम्राट था । डाक्टर जदुनाथ सरकार का ये वक्तव्य

1-शाहजहाँनामा में इनायत खाँ ने लिखा है, कि बादशाह धर्म प्रेमी था और कुरान के नियमों का पालक था । देखिए, ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड पृ0 70, मीरात-ए-आलम, बख्तावर खाँ (ईलियट एवं डाउसन) पृष्ठ 111-115

2-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग 2, पृ0 207 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 435 ।

इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि "औरंगजेब का किसी पर विश्वास नहीं था। वह सारा निर्णय स्वयं लेता था । सत्ता पूरी तरह उसी के हाथों में केन्द्रित थीं। आर्थिक प्रशासन अनेक पदाधिकारियों के माध्यम से चलता था सम्राट तो केवल उसका सर्वेसर्वा था। इसमें 'आमिल' से लेकर जागीरदार एवं 'वजीर' तक अनेक पदाधिकारियों का एक विशाल श्रृंखलाबद्ध क्रम था[1]।" इन सभी की ईमानदारी-पूर्वक कार्य करने पर ही आर्थिक प्रशासन सुचारू रूप से चल सकता था। साधारण तर्क यह बताता है कि औरंगजेब ने प्रशासकीय वर्ग की ओर से उनकी अन्तःभूत प्रेरणा एवं निष्ठा से उत्पन्न स्वामिभक्ति का दर्शन कभी नहीं किया। इसीलिए साम्राज्य की आर्थिक नीति की समीक्षा करते समय उन बिन्दुओं की तलाश करना आवश्यक है जिनके कारण आर्थिक रूप से औरंगजेब विफल हुआ । उसकी वरीयता सैनिक प्रशासन की ओर थी[2] । साम्राज्यवादी नीति ने उसे ऐसी नीति अपनाने के लिए विवश कर दिया था । सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने आर्थिक संसाधनों का अधिकतम दोहन किया, अन्य मदों में खर्च होने वाले धन को भी उसने सैनिक मद में मोड़ दिया[3] । इसलिए उसके समय की आर्थिक नीति त्रुटिपूर्ण दिखायी पड़ती है । त्रुटि यह थी कि आय एवं व्यय में सन्तुलन नहीं रहा। साम्राज्य के संसाधन बहुत समृद्ध थे । इसके बावजूद असन्तुलन उत्पन्न हुआ अतः कहीं न कहीं अवश्य नीतिगत दोष था । प्रस्तुत अध्याय में मुगल साम्राज्य के संसाधनों का उल्लेख किया गया है । भूराजस्व से, अन्य संसाधनों की तुलना में, अधिक धन प्राप्त होता था । भूराजस्व व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में समाहित है साथ ही आय के अन्य स्रोतों तथा व्यय के मदों का उल्लेख भी इसमें किया गया है । कृषकों की दशा तथा जागीरदारी प्रथा का संकट क्रमशः अध्याय 3 व 6 में प्रस्तुत किया गया है । अतः उनकी यहाँ पर यदि कहीं चर्चा है तो वह नितान्त प्रासंगिक अनिवार्यता के कारण है । जिस दृष्टि से इस अध्याय का प्रस्तुतीकरण किया गया है । उसकी रूपरेखा ऊपर बताने का प्रयास है ।

आर्थिक नीति का प्रसंग वास्तव में साम्राज्यवादी नीति से जोड़कर देखना चाहिए । आर्थिक संसाधन साम्राज्यवादी नीति की आवश्यकताओं को पूरा करें या आर्थिक नीति के अनुसार साम्राज्यवाद की सीमा को तय किया जाँय । इस प्रश्न का औरंगजेब के संदर्भ में अभिप्राय प्रथम बिन्दु की ओर इंगित करता है ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 - 440 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 - 424 ।

3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग 2, पृ0 277 ।

औरंगजेब को आर्थिक विफलता के लिए दोषी माना जाता है लेकिन वास्तव में यह साम्राज्यवाद की विफलता थी । अनवरत युद्धों का होना औरंगजेब के लिए आवश्यक थे क्योंकि युद्ध उसके लिए साधन थे न कि साध्य । साध्य था मुगल साम्राज्य की अखण्डता की सुदृढ़ रूप से रक्षा एवं उसका पूरे भारत में विस्तार[1]। इस हेतु युद्ध अनिवार्य थे । शाही खर्च का बढ़ना अनिवार्य था । कृषि एवं व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना अनिवार्य था । इतना बड़ा मूल्य चुकाने के लिए यदि औरंगजेब तत्पर न होता तो वह भी सम्राज्य की पुस्तैनी सीमा के अन्दर रहकर शान्तिपूर्वक शासन कर सकता था और सम्भवत: तब इतिहास में इसके बारे में धारणा कुछ भिन्न होती यह उसकी अतिशय महत्वाकांक्षा ही थी जो उसे उस मार्ग पर ले गयी । तत्कालीन परिस्थितियों में प्रादेशिक स्वतन्त्रता की भावना देशी ताकतों के उत्कर्ष का परिदृश्य शासक वर्ग की अनैतिकता विलासिता एवं फिजूल खर्ची आदि का सामना अकेले औरंगजेब ने किया अत: शाहजहाँ के शासनकाल की चकाचौंध के आगे जनता की जो विपन्नता छिपी हुयी थी वह अचानक प्रकट हो गयी । डा0 जे0 एन0 सरकार का निम्नलिखित विवेचन महत्वपूर्ण है "सारे विदेशी दर्शकों को यही दिखायी दिया कि जब औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, तब मुगल साम्राज्य का वैभव तथा उसकी शक्ति चरम सीमा पर पहुँच चुके थे । सुदूर के विदेशी राजदरबारो में भी "हिन्दी की दौलत एक सुज्ञात लोक-प्रसिद्ध बात हो गयी थी । महान् मुगलों के शाही दरबार की शोभा और प्रताप को देखकर "फ्रांस की राजधानी के ऐश्वर्य से सुपरिचित आँखें भी चकाचौंध हो गयी । "ऐसे समय औरंगजेब का-सा सुशिक्षित शासक और पक्का सेनानायक ऐसे सुसमृद्ध साम्राज्य का शासक बना, उसका निजी जीवन बहुत ही सादा, निष्कलंक तथा धार्मिकतापूर्ण था, पुन: तब वह बहुत ही स्वस्थ था और उसकी बुद्धि भी पूर्णतया परिपक्व हो गयी थी । अतएव लोगों को यह आशा होने लगी कि औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य न जाने कितने गौरव और सत्ता को प्राप्त कर सकेगा तथापि औरंगजेब के लम्बे परिश्रमपूर्ण जीवन का परिणाम हुआ-पूर्ण विश्रृंखलन तथा अत्यधिक दुर्दशा। इतिहासकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस अद्भुत घटना के ठीक-ठाक कारण ढूढ़ निकालें[2]।

डा0 सरकार का यह अभिमत महत्वपूर्ण है कि भारत में मुगलों द्वारा स्थापित शान्ति और सुव्यवस्था ही उनके साम्राज्य के आगे भी बने रहने का एकमात्र

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 222 ।
2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 397 ।

कारण हो सकती थी परन्तु औरंगजेब की मृत्यु के समय वह शान्ति एवं सुव्यवस्था नाम मात्र को भी भारत में नहीं रह गयी थी[1] । औरंगजेब शान्ति और सुव्यवस्था प्रदान करने मे पूर्णतया असफल रहा । इसका कारण क्या था ? जो कार्य उसने अपने हाथ में लिया, जिसे अनावश्यक कदापि नहीं कहा जा सकता है, उसके लिए शान्ति और व्यवस्था की कीमत चुकानी ही थी । यही औरंगजेब का दुर्भाग्य था। उसने इतनी बड़ी कीमत चुकाने का फैसला कर डाला । कृषि प्रधान देश के लिए शान्ति एवं सुव्यवस्था आवश्यक होती है और किसान की सुरक्षा तथा कृषि को प्रोत्साहन आवश्यक होता है। कृषि ही तत्कालीन राष्ट्रीय समृद्धि का प्रमुख आधार थीं । जे0 एन0 सरकार के शब्दों में 'उद्योग धन्धेवालों' को भी अपना माल बेचने के लिए किसानों' या धरती की आमदनी से धन प्राप्त करने वालों पर ही निर्भर रहना पड़ता है । किसानों की स्थिति यह थी कि यदि उनके पास बेचने को अधिक अन्न न हो तो वे कोई भी दूसरी वस्तुएं मोल नहीं ले सकते है । भारत में किसानों की दुर्दशा के फलस्वरूप किसानों के साथ ही अन्य वर्गो की भी दुर्गति हो जाती है। फ्रांस की कहावत 'किसान दरिद्र तो राज्य भी दरिद्र'[2] भारत के लिए अत्यधिक उपयुक्त है । सार्वजनिक शान्ति और सम्पत्ति की सुरक्षा किसानों के लिए जितनी आवश्यक है, उससे भी कहीं अधिक उद्योग-धन्धेवालों तथा व्यापारियों को जरूरी होती है। उन्हें अपना माल दूर-दूर के क्षेत्र तथा देश में ले जाना पड़ता है। आवश्यकता पड़ने पर उधार खाते भी खोलने पड़ते है । जब किसान की पैदावार घटने लगती है या उत्पादन में से कुछ बचा रखने के लिए किसान असमर्थ रहने लगता है तब राष्ट्रीय मूलधन में बृद्धि रूक जाती है। इससे देश की आर्थिक स्थिति को गहरा आघात लगता है । सार्वजनिक अशान्ति, अव्यवस्था तथ असुरक्षा की परिस्थिति उत्पन्न हो जाने से औरंगजेब के शासनकाल में आर्थिक संकट देखने को मिलता है[3]। औरंगजेब के लगातार युद्धों के आर्थिक दुष्परिणाम साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुए । मुगल शासन का दिवाला निकल गया । शासन में शिथिलता आ गई और साम्राज्य पतनशील हो गया ।

साम्राज्य, साधन, शासन व्यवस्था

तत्कालीन मुगल साम्राज्य की लम्बाई थट्टा

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 398, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 241,

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 398-399 ।

3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 287 ।

सूबे के लाहौरी बन्दरगाह से बंगाल के बिन्दासल थाने तक 994 शाही कोस और 1740 आम कोस थी। एक शाही कोस 5000 गज का और एक गज बयालीस अंगुल का होता था। दो शाही कोस $3\frac{1}{2}$ आम कोस के बराबर था । दिल्ली से लाहौरी की दूरी 437 शाही कोस और 764 आम कोस था। उसी नगर से थाना बिन्दासल 557 शाही कोस और 975 आम कोस दूर था। लाहौर से ठट्टा 25 शाही कोस, ठट्टा से भक्कड़ 31 कोस, भक्कड़ से मुल्तान 99 कोस से कुछ अधिक और मुल्तान से लाहौर 75 कोस था। लाहौर से शाहजहाँबाद 170 कोस, शाहजहाँनाबाद से आगरा 44 कोस और इलाहाबाद से पटना 96 कोस था । पटना से मुंगेर 37 कोस, मुंगेर से अकबरनगर या राजमहल 48 कोस, अकबरनगर से जहाँगीरनगर या ढाका 108 कोस, ढाका से सिलहट 87 कोस, सिलहट से[1] बिन्दासल 30 कोस था । मीरात-ए-आलम के अनुसार यदि एक मंजिल 12 कोस की मान ली जाय तो सारी लम्बाई 145 मंजिल है, जो चार मास और सत्ताईस दिन में पार की जा सकती है सारे साम्राज्य की चौड़ाई तिब्बत की सीमा और कश्मीर के सूबे से शोलापुर तक जो वर्तमान सम्राट के समय मे आदिलखाँ से जीता गया था, 672 शाही कोस या 1176 आम कोस है। साम्राज्य की राजधानी शाहजहाँनाबाद से तिब्बत की सीमा तक 330 शाही कोस या 577 आम कोस का अन्तर है। राजधानी से शोलापुर 342 शाही कोस या 598 लोक कोस है। यह अन्तर नापकर निश्चित किया गया था। तिब्बत की सीमा से छोटा तिब्बत 60 शाही कोस और छोटे तिब्बत से कश्मीर 64 कोस और कश्मीर से लाहौर 101 कोस, लाहौर से शाहजहाँनाबाद 105 कोस, शाहजहाँनाबाद से आगरा 44 कोस और आगरा से बुरहानपुर 178 कोस है। एक मंजिल 12 कोस की मानी जाय तो सारी चौड़ाई 98 मंजिल है जिसको पार करने में 3 मास और 10 दिन लगते है[2]।

औरंगजेब के शासन काल मे मुगल साम्राज्य का विस्तार पहले की तुलना में अधिक हो गया था। उस समय यह उन्नीस सूबों में और 4440 परगनों मे विभक्त था। 'मीरात-ए-आलम के अनुसार' इन सबकी आय 9 अरब 24 करोड़ 17 लाख 16082 दाम है । इसमें से खालसा की आमदनी 1,72,79,81,251 दाम है और जागीरदारों तथा अन्य लोगों की आमदनी 7,51,77,34,731, दाम है[3] ।

1-बख्तावर खाँ, मीरात-ए-आलम-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 115 ।

2-बख्तावरखाँ, मीरात-ए-आलम-ईलिएट एवं डाउसन, सप्तम खण्ड, पृ0-116 ।

3-बख्तावर खाँ, मीरात-ए-आलम ईलिएट एवं डाउसन भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 116

सूबों का विवरण

सूबा	महाल	आय	
शाहजहाँनबाद	285	1,16,83,98,269	दाम
आगरा	230	1,05,17,09,283	दाम
लाहौर	330	90,70,16,125	दाम
अजमेर	235	63,68,94,882	दाम
अहमदाबाद	200	44,00,83,096	दाम
इलाहाबाद	268	43,66,88,072	दाम
अवध	149	32,00,72,193	दाम
बिहार	252	72,17,97,019	दाम
बंगाल	1219	52,37,39,110	दाम
उड़ीसा	244	19,71,00,000	दाम
कश्मीर	51	21,30,74,826	दाम
दक्षिण-औरंगाबाद, जफराबाद बरार और खानदेश	552	2,96,70,00,000	दाम
मालवा	257	42,54,76,670	दाम
मुल्तान	98	24,53,18,575	दाम
काबुल	40	15,76,25,380	दाम
ठट्टा	-	57,49,86,900	दाम

सन् 1707 ई0[1] में जिस समय औरंगजेब की मृत्यु हुई उस समय उसका साम्राज्य 21 प्रान्तों में बंटा हुआ था। जिसमें 14 सूबे उत्तरी भारत तथा 6 सूबे दक्षिणी भारत में थें । एक सूबा काबुल का था[2]।

1- उत्तरी भारत के सूबे -

आगरा, अजमेर, इलाहाबाद, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, दिल्ली, गुजरात, कश्मीर, लाहौर, मालवा, मुल्तान, अवध, और थत्ता (सिन्ध) ।

1- मुहम्मद साकी मुसतैद खॉ, मआसिर-ए-आलमगीरी-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड पृ0 136 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 432, बख्तावरखॉ, मीरात-ए-आलम-ईलिएट एवं डाउसन भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 136 ।

2- <u>दक्षिणी सूबे</u> -

खानदेश, बरार, औरंगावाद, बीदर, बीजापुर, हैदराबाद । डब्लू एच0 मोरलैण्ड ने अकबर, शाहजहाँ, तथा औरंगजेब के समय में भूराजस्व की जमा के वारे में एक तुलनात्मक सारणी दी है जिसमें औरंगजेब के शासनकाल को 1668 तक की जानकारी दी गयी है यह आकड़े महत्वपूर्ण है[1]।

प्रान्त	C 1594		शाहजहाँ				औरंगजेब
	मूल	संमायोजन	एक्सेसन	C 1647	लेट (Late)	लेट (Late)	1668 के पूर्व
	A	B	C	D	E	F	G
बिहार	2219	2270	3127	4000	3943	3969	[7218]
इलाहाबाद	2083	2100	3070	4000	4243	4496	4567
अवध	2017	2034	2322	3000	2795	3152	3201
आगरा	5462	5447	8225	9000	8612	10719	10517
मालवा	2407	2351	2800	4000	4083	3899	4255
गुजरात	4368	4327	5064	5300	5365	5070	4401
अजमेर	2884	2834	4205	6000	6029	6512	6369
दिल्ली	6016	5956	6561	10000	12229	11935	11684
लाहौर	5595	5591	8250	9000	8930	8547	9070
मुल्तान	1514	1495	[4000]	2800	2198	2162	2453
योग	34565	34405	[47624]	57100	58427	60461	[63535]

उत्तरी और कश्मीर तथा हिन्दूकुश के दक्षिण का पूरा अफगानिस्तान औरंगजेब के साम्राज्य में सम्मिलित था । मुगल साम्राज्य की सीमा दक्षिण-पश्चिम में गजनी से कोई 36 मील दक्षिण में ईरान राज्य से मिलती थी। पश्चिमी तट पर मुगल साम्राज्य की सीमा गोवा के प्रदेश के उत्तरी सीमा पर होती हुई कनारा प्रदेश में 'वम्बई प्रान्त के कर्नाटक के' बेलगांव जिले और तुंगभद्रा नदी तक पहुँच जाती थी । उत्तर पूर्व के सिरे पर गोहाटी मे दक्षिण में बहने वाली मोनाम नदी मुगल साम्राज्य तथा स्वाधीन आसाम राज्य के बीच की सीमा को निश्चित करती थी[2]।

अकवर के समय अफगानिस्तान को छोड़कर मुगल साम्राज्य की आमदनी 13 करोड़ 21 लाख की थी । औरंगजेब के समय वह बढ़कर 33 करोड़ 25

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फाम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 323 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजब, पृ0- 433।

लाख हो गयी । इस आय में मालगुजारी की ही गणना की गयी है । जकात जजिया, आदि करों से प्राप्त होने वाली आमदनी इसके अलावा थी । मुसलमानों से उनकी वार्षिक आमदनी का 40 सवॉ हिस्सा जकात के रूप मे वसूल होता था। उसकी (जकात) सम्पूर्ण आय केवल धर्मिक दान-पुण्य आदि में ही व्यय की जाती थी । औरंगजेब के शासनकाल में विभिन्न करों से गुजरात प्रान्त में होने वाली सरकारी आमदनी के आकड़ों से तुलनात्मक अनुपात का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है मालगुजारी 113 लाख रूपये, जजिया 5 लाख रूपये, केवल सूरत के बन्दरगाह पर बाहर से आने वाले सामान पर लिये गये महसूल से 12 लाख रूपये। 1690 ई0 के लगभग सम्पूर्ण साम्राज्य की मालगुजारी, आदि के इन ऑकड़ों से कुछ अनुमान लग सकता है कि प्रान्त की कितनी भूमि 'खालसा शरीफ' में थी और कितनी मनसबदारों को जागीर में दी हुई थीं । जागीरों को निर्धारित मालगुजारी, 27.64 करोड़, और खालसा भाग की निर्धारित मालगुजारी 5.81 करोड़ रूपये थी[1]।

मुगल साम्राज्य का शासन मनसबदारों पर आधारित था। मनसबदारों की कई श्रेणियॉ होती थी । इनमें से 'उमरा-ए-आजम' तीन हजारी से अधिक के मनसब वाले थें।औरंगजेब के समय मनसबदारों की सूची अधिक बढ़ गयी थी । उससे बहुत अधिक आर्थिक भार पड़ा होगा[2]।

औरंगजेब के समय 14,449 मनसबदारों में से 7,000 के लगभग जागीरदार थे और 7,450 नकदी, जिन्हें मनसब का वेतन नकद सिक्कों में मिलता था। औरंगजेब के समय ज्यों-ज्यों नये युद्ध छिड़ते गये त्यों-त्यों मुगल सैनिकों की संख्या बढ़ती गयी । दक्षिणी प्रदेशों के शामिल हो जाने के बाद सेना के व्यय का भार उठाना कठिन हो गया[3] । सैनिको को समय पर वेतन देना मुश्किल हो गया । मुगल साम्राज्य में यह प्रथा थी कि यदि कोई व्यक्ति शाही सेवा करते हुए मर जाता है तो उसकी सारी सम्पत्ति सम्राट जब्त कर लेगा । इसके अनुसार अमीरों की अपनी कोई वंश परंपरागत सम्पत्ति थी ही नहीं । इस प्रकार सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त करने का परिणाम बहुत हानिकारक हुआ । अनेको मनसबदार अपने समय में प्रतिष्ठा

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 433-34,

2- मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 222 ।

3- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 191-192 ।

अर्जित किए लेकिन उनमें से कुछ ही मनसबदार ऐसे भाग्यशाली थें जिनके पुत्र भी उन्नति कर सके । पुश्तैनी अमीर वर्ग की स्थिति मुगल साम्राज्य में कमजोर रही अमीर वर्ग के वंश परम्परागत न होने[1] की हालत में प्रत्येक पीढ़ी को अपनी पदवी और घराने की सम्पत्ति के लिए एक मात्र सम्राट की कृपा पर ही निर्भर रहना पड़ता था । अतः वे साहसपूर्वक सम्राट के अत्याचारो का विरोध नहीं कर सकते थें । इस प्रथा के कारण मुगल अमीर स्वार्थी हो गये । वे उत्तराधिकार के लिए होने वाले युद्धों या अन्य अवसरो पर विजयी पक्ष के साथ जा मिलने मे तत्परता दिखाते थें । वे जानते थे कि उनके अधिकार की भूमि तथा उनकी निजी सम्पत्ति पर उनका हक कानून द्वारा किसी प्रकार सुनिश्चित तथा सुरक्षित नही है। मध्यकालीन भारत में न तो कोई स्वाधीन अमीर या राजा ही थें और न प्रभावशाली सशक्त व्यापारी वर्ग ही कि वे तत्कालीन शासन व्यवस्था में सबसे ऊपर सर्वशक्तिमान सम्राट, सबसे नीचे अनगिनित दरिद्री किसानों एवं मजदूरो के बीच में अत्यावश्यक रूकावटों का काम दे सकते । ऐसी परिस्थिति में इन साम्राज्यों की शासन व्यवस्था अस्थायी तथा दोषपूर्ण ही रही[2] ।

सम्राटों के बारंबार निषेध करने पर भी बहुत से स्थानीय अधिकारी और सूबेदार तक कई अवैध महसूल, जिन्हें "अबवाब" कहते थे, वसूल कर लेते थें[2]। कई विभिन्न नामों से ये महसूल सब तरह के कारीगरों, व्यापारियों, मजदूरों, और साधारण लोगों से वसूल किये जाते थें । कुछ सूबेदारो के अत्याचार का एक दूसरा तरीका यह था कि उनके सूबे में होकर जाते हुए माल को वे बलात छीन लेते थें या तो व्यापारियों को उनके उस माल का मूल्य चुकाया ही नहीं जाता था और यदि उसके बदले मे वे उन्हें कुछ देते भी तो वह बहुत ही कम होता था तब उस छीने हुए माल में से अपनी पसन्द की वस्तुएं वे अपने काम में लेते थें या उन्हें खुले बाजार में पूरी कीमत पर बेचकर स्वयं लाभ कमाते थे । सूबेदारो के ऐसे अत्याचारो को एक सशक्त जागरूक कड़ा सम्राट ही बन्द कर सकता था। औरंगजेब को भी इस दिशा में विफलता ही मिली ।

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 191-192 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 437, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 250 ।

3- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 156 ।

शासन व्यवस्था-

मुगल राज्य मूलतः सैनिक राज्य था । वह बादशाह की निरंकुश सत्ता पर निर्भर था। उस समय के मन्त्रीगण किसी भी प्रकार आधुनिक ढंग का मन्त्रीमण्डल नहीं बना सकते थे । मूल सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक मुसलमान बादशाह धर्म और राज्य दोनों का ही समान रूप से एकमात्र मुखिया होता है, अपनी प्रजा के लिए तो वह उस समय का खलीफा ही है[1]।

मुगल शासन मे मुख्य महकमें इस प्रकार थे[2] -

1- साम्राज्य का कोष और माली विभाग, जिनका प्रबन्ध, ''दीवान'' के हाथ में रहता था ।
2- खान-ए-सर्मा शाही दरबार और महलों से सम्बन्धित विभागों की देखभाल करता था ।
3- ''बख्शी'' वेतन चुकाने और हिसाब, दफ्तर का विभाग संभालता था ।
4- काजी धार्मिक कानून का भार उठाता था ।
5- सद्र धार्मिक वृत्तियों और दान पुण्य का विभाग देखता था ।
6- मुहतसिब को सार्वजनिक आचारो को कुरान के अनुसार नियन्त्रित करने का अधिकार था ।
7- मीर आतिश तोपखाना का प्रधान था ।
8- दरोगा-ए-डाकचौकी खबरों और डाक विभाग की देख-रेख करता था ।

दीवान के पास माली मामलों सम्बन्धी सारी लिखा-पढ़ी सूबों से तथा युद्ध-क्षेत्र पर गयी हुई सेनाओं से आने वाले सारे सरकारी कागज पत्र पहुचते थे। वही मालागुजारी वसूल करने और जमाबन्दी निश्चित करने से सम्बन्धित सारे प्रश्नो को तय करता था । सूबों के दीवानों की नियुक्ति तथा उन पर नियंत्रण सम्राट इसी के माध्यम से करता था । किसी भी प्रकार के रूपया चुकाने से सम्बन्धित आदेशों पर उनका हस्ताक्षर आवश्यक था। सम्राट के आदेशों की सूचना देने के लिए वह स्वयं ''हस्ब-उल-हुक्म'' (सम्राट के आदेश से लिखे गये पत्र) लिखता था, और महत्वपूर्ण व्यक्तियों या विदेशी राज्यों के बादशाहों के नाम लिखे जाने वाले शाही

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 49

2- चोपड़ापुरीदास , भारत का सामाजिक सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग 2, पृ0 8 9, मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 270, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 49-50

पत्रों के मसौदे भी बनाता था ।

मीर बख्शी सभी मनसबदारों के वेतन का हिसाब रखता था । बख्शी के विभाग को ही चढ़ाई पर गयी सेना को वेतन चुकाने का भी काम करना पड़ता था । औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य विस्तार होने के अन्तिम दिनों में एक मुख्य बख्शी होता था जो पहला बख्शी कहलाता था । इसके नीचे तीन सहायक वख्शी होते थे । "सिपहसालार" का खिताब एक विशेष आदर-सूचक पदवी ही थीं । सम्राट समस्त मुगल सेना का प्रधान सेनापति था[1] ।

खान-ए-समाँ, शाही राजभवन-विभाग का प्रमुख अधिकारी होता था। वही सम्राट के निजी नौकरों की देख-रेख, सम्राट के दैनिक व्यय, भोजन, भण्डार आदि का सारा प्रबन्ध करता था। वह हमेशा सम्राट के यात्रा पर जाते समय उनके साथ जाता था । इसी विभाग से शाही कारखानों अथवा उद्योगधन्धों का प्रबन्ध एवं उनके वेतन का व्यय चुकाने का भी काम होता था[2] ।

सम्पूर्ण साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश सिद्धान्ततः बादशाह ही था । वह स्वयं प्रत्येक बुधवार को मुकदमों की सुनवायी करता था । प्रधान न्यायाधीश के रूप में काजी मुसलमानों के सारे के सारे फौजदारी मामलों तथा बहुत से दीवानी मुकदमों की सुनवाई करता था । मुफ्ती काजी की सहायता हेतु नियुक्त किये जाते थे । प्रधान काजी "काजी-उल-कजात" कहलाता था[3] । वही प्रत्येक सूबे के नगरों या गावों के स्थानीय काजियों को नियुक्त एवं पदच्युत करता था। "सद्र-उस-सदूर" मुख्य सद्र कहलाता था। इसके विभाग का काम सम्राट और शाहजादों द्वारा धार्मिक लोगों, विद्वानो तथा फकीरों के निर्वाह का प्रबन्ध करने के लिए धर्मार्थ दी हुई भूमि का प्रवन्ध तथा आवश्यक देख-रेख था । सम्राट की ओर से खैरात भी वही बाँटता था और साम्राज्य का धर्मादा विभाग उसी के जिम्मे रहता था । वही सूबे के सद्रों की नियुक्ति एवं देख-रेख भी करता था ।

1- एल0पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 345-346, मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 270 ।

2- चोपड़ा पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, इतिहास भाग 2, पृ0 14, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 347 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 442, चोपड़ापुरीदास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक, इतिहास भाग 2, पृ0 1, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 76 ।

मुहतसिब का कार्य[1] यह देखना था कि मुसलमानों का जीवन कुरान के नियमों के अनुसार ठीक चल रहा है अथवा नहीं । समस्त प्रकार की नशीली वस्तुओं के सेवन से रोकना एवं खुले आम जुआ न खेलने देना आदि मुहतसिब का कर्तव्य था। नये निर्मित मन्दिरों को तुड़वाने का काम भी इसे ही सौंपा गया ।

सूबों का प्रान्तीय शासन मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय व्यवस्था का ही छोटा नमूना था। ''नाजिम[2]'' प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी था किन्तु इसे प्रायः ''सूबेदार'' ही कहा जाता था । दीवान, बख्शी, काजी, सद्र, शाही माल का संरक्षक व मुहतसिब आदि सूबेदार के नीचे होते थे। सूबे के मुख्य नगर मे प्रान्तीय शासन व्यवस्था केन्द्रित रहती थी । सूबे के अन्य महत्वूपर्ण स्थानों या परगनों में फौजदार रहते थे जो विद्रोहियों और अपराध्रियों को दण्ड देते थे और मालगुजरी वसूल न होने की हालत में माली अधिकारियों की भी सहायता करते थे । गांव के लोग अपनी स्वयं-शासित पंचायतो द्वारा अपना काम आप ही निपटा लेते थे ।

कोतवाल[3] बड़ शहरों में रहते थे । जिनका कार्य शान्ति, सुव्यवस्था, शहर की सफाई बाजार मे माप तोल और भावों पर नियन्त्रण एवं कुरान के आदेशों के अनुसार सदाचारिता बनाये रखना था ।

केन्द्रीय अधिकारियों द्वारा गुप्तचर एवं सूचना देने वाले नियुक्त किये जाते थें जिससे जानकारी प्राप्त हो सके कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में क्या हो रहा है। इसमें चार प्रकार के प्रतिनिधि होते थे- वाक्यानवीस, सवानह-निगार, खुफिया, और हरकारा। उन्हें सूचनाएँ निश्चित एवं नियमित रूप से भेजनी पड़ती थी।एक-एक ''अखबार-नवीज'' प्रत्येक राजकीय अधिकारी के साथ रहता था जो प्रतिदिन

1- चोपड़ापुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, इतिहास भाग 2, पृ0 10, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 631 ।

2- चोपड़ापुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, पृ0 17, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 96 ।

3- चोपड़ापुरीदास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग 2, पृ0 19, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 105, मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 275, एस0 आर0 शर्मा, भारत मे मुगलसाम्राज्य, पृ0 191

की घटनाओं का संक्षेप मे विवरण लिखता था । दरोगा-ए-डाकचौकी के माध्यम से साम्राज्य के समस्त भगों की सूचनाएं सम्राट तक पहुंचती[1] थी ।

साम्राज्य की आय सदा घटती-बढ़ती रहती थी । इसके प्रमुखत: तीन कारण थे । साम्राज्य की सीमा और क्षेत्रफल मे परिवर्तन, करों के परिमाण में अन्तर, तथा करों की संख्या में परिवर्तन । अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के दरबारी इतिहास उनके काल की घटनाओं का विस्तृत वर्णन देते है किन्तु उन्होने न तो विभिन्न करों से होने वाली आय को अलग-अलग बताया है न ही वे विभिन्न वर्षो की अपेक्षित तथा वास्तविक आय के आँकड़े दिये है फिर भी उन्होंने जो सूचना दी है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अकबर की वार्षिक आय $13\frac{1}{4}$ करोड़, शाहजहाँ की $22\frac{1}{2}$ करोड़ तथा औरंगजेब की $38\frac{1}{2}$ करोड़[2] थी । इन आकड़ों से कम से कम इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि तैमूरी सम्राट तत्कालीन जगत के समृद्धतम शासक थे । यह आय अनेक साधनों से होती थी । भूमिकर उनमें मुख्य था । उससे उनकी प्राय: दो तिहाई आय होती थी । आय के विभिन्न साधन निम्नलिखित थे-

<u>खिराज</u> -

खिराज नामक भूमिकर[3] प्रारंभ में केवल गैर मुसलमानों से लिया जाता था किन्तु बाद में यह मुसलमानों से भी लिया जाने लगा[4] । मुससलमान कृषकों से उस्र नामक भू-कर लिया जाना चाहिए किन्तु सम्भवत: भारतवर्ष में ''उस्र'' नामक कर का प्रचलन नहीं था अथवा बहुत कम था । इस विषय में विद्वानों में मतभेद भी है ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 443-444, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति पृ0 97, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 348-349।

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ0 487, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 143 ।

3-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 141,

4- ह्यूग्स, टी0 पी0, डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ0 269-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली पृ0 128-29 ।

जकात :-

मुसलमानों से जकात नामक कर लिया जाता था । इसका उद्देश्य धनी मुसलमानों की आय से निर्धन मुसलमानों को सहायता पहुँचाना था । जकात नामक कर मकान, कपड़ा, बर्तन, सवारी, अथवा कृषि हेतु पशुओं आदि पर नही लगता था बल्कि सैद्धान्तिक रूप से यह प्रत्यक्ष वस्तुओं पर लगाया जाता था जैसे- सोना, चांदी, पशु, (जो दूध देती थी या चारागाह के लिए होती थी) और व्यापारिक वस्तुएं। जब यह सम्पत्ति करदाता के पास एक वर्ष तक रही हो और उनका मूल निश्चित सीमा (निसाब) से अधिक हो तभी यह कर वसूल किया जाता था । जकात कर की वसूली दर ढाई प्रतिशत (सम्पत्ति का चालीसवाँ भाग) किया जाता था । भारत में यह कर आयात शुल्क (सीमा शुल्क) के रूप में वसूल किया जाता था[1]।

जकात से प्राप्त हुआ धन इस्लामी विधिवेत्ताओं द्वारा नियम निर्धारित किया गया कि इसे किसे प्रदान किया जाये । यह तय हुआ कि सात प्रकार के लोगों को प्रदान किया जाय जैसे फकीर, ऐसे मुसलमान जिनके पास किसी प्रकार की सम्पत्ति न हो, उन कर्मचारियों को जो जकात एकत्रित करते थें, कर्जदार, धर्मयुद्ध, (जिहाद) में भाग लेने वाले तथा यात्री[2]।

जकात केवल आयात या सीमाशुल्क के रूप में मुगल सम्राटों द्वारा वसूल किया जाता था परन्तु सभी मुगल सम्राटों द्वारा नहीं वसूल किया जाता था । अकबर ने अपने शासनकाल के सातवें वर्ष में जिन करों को बन्द किया उसमें जकात भी सम्मिलित था । इससे स्पष्ट होता है कि अकबर ने अपने शासनकाल में जकात को समाप्त कर दिया था । उसने दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं जैसे ऊनी-सूती कपड़े, लकड़ी, ताँबे के बर्तन, चमड़े का सामान, बेंत तथा बांस की बनी हुई वस्तुओं एवं पशुओं पर लगाया जाने वाला कर बन्द कर दिया[3]।

1- ह्यूग्स टी0 पी0, डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ0 699-700, अथनाइड्स एन0 पी0 मुहम्मडन थ्योरीज आफ साइन्स, पृ0 207, 297, 318, रामप्रसाद त्रिपाठी, सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 345 ।

2-ह्यूग्स, डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ0-697-700, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 129

3-ओरयन्टल मिसेलनि, 1798 ई0 पृ0 26, कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 146

जहाँगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि आयात-निर्यात सम्बन्धी जकात (जकात-ए-मीरबहरी तमगा-ए-राह) उसने अपने पूरे साम्राज्य यहाँ तक कि कन्धार तथा काबुल की सीमा प्रदेश में भी समाप्त कर दिया जहाँ आय का यह मुख्य साधन था[1]। यह कर सम्राट द्वारा निषेध करने पर भी किसी न किसी रूप में वसूल किया जाता रहा यही कारण था कि सम्राट औरंगजेब ने अपने शासनकाल के आठवें वर्ष में मुसलमानों से लिया जाने वाला जकात नामक कर समाप्त कर दिया। सम्राट को अधिकारियों द्वारा यह सूचित किया गया कि जकात कर का दुरूपयोग[2] करते हुये मुसलमान के नाम पर अन्य लोग माल आयात कर रहे है जिसके कारण राजकोष को अत्यधिक हानि हो रही है । तत्पश्चात यह आज्ञा दी गयी कि कुरान में जो न्यूनतम छूट की अनुमति है उसे छोड़कर उससे अधिक माल पर जकात लगाया जाये । अत्यधिक हानि होने के कारण औरंगजेब ने शासनकाल के पच्चीसवें वर्ष में मुसलमानों से पुन: जकात वसूल करने की आज्ञा दी[3] ।

खम्स -

इस्लामी कानून के अनुसार युद्ध में लूट का $\frac{1}{5}$ भाग राज्य को तथा $\frac{4}{5}$ भाग सैनिकों को प्राप्त होता था । इस कर को खम्स कहा जाता था । अलाउद्दीन खिलजी ने अपने शासनकाल में खम्स का $\frac{4}{5}$ भाग राज्य को तथा $\frac{1}{5}$ भाग सैनिकों को प्रदान करने का नियम लागू किया लेंकिन वह अपवाद था ।

इस्लामी कानून तथा दिल्ली सल्तनतकाल में लागू व्यवस्था को मुगल सम्राटों ने त्याग दिया। मुगल सैनिक वेतन प्राप्त करते थे यही कारण था कि युद्ध में प्राप्त धन में इनको हिस्सा नहीं दिया जाता था। इस प्रकार इस्लामी कानून के विरूद्ध मुगल शासनकाल में युद्ध में प्राप्त सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्य को प्राप्त होती थी[4]।

1- जहाँगीर, तुजुके जहाँगीरी रोजर्स, भाग-1, पृ0 7 -हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल-शासन प्रणाली, पृष्ठ 129 ।

2- खाफी खाँ, मुन्तखव-उल-लुबाव,-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 209।

3- कुरैशी, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल एम्पायर, पृ0 147, जहीरूद्दीन, फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 164-70, 479 ।

4-कुरैशी, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल एम्पायर, पृ0 148, मुगलशासन प्रणाली, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ0 130, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662 ।

जजिया-

जजिया के बारे में कुरान शरीफ में कहा गया है कि "जो लोग खुदा में विश्वास नहीं करते है, खुदा एवं पैगम्बर, द्वारा वर्णित बातों को नहीं मानते सत्य धर्म (इस्लाम) स्वीकार नहीं करते और जो धर्मग्रन्थ रखते है, उनसे अन्तिम दिन तक जब तक कि वे अधीन होकर खुद जजिया न दें, लड़ो[1] । जजिया देने वाले को जिम्मी कहा जाता है[2] । जजिया किससे और कितना वसूल करना चाहिए इसका निर्धारण भी किया गया है । बच्चे (चौदह वर्ष से कम आयु के) वृद्ध स्त्रियाँ, अन्धे, अपंग, भिखारी, और साधू सन्यासी इससे मुक्त थे । यह कर सम्पत्ति के आधार पर लोगों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर पृथक-पृथक लिया जाता था। यह कर प्रतिवर्ष निर्धन लोगों से बारह दिरहम, मध्यवर्गीय लोगों से चौबीस दिरहम, और धनी लोगों से अड़तालिस दिरहम, लिया जाता था । एक दिरहम 550 ग्रेन चाँदी के मूल्य का माना जाता था । जजिया निर्धारण के लिए लोगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया । प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले वे लोग थे जिनकी सम्पत्ति दस हजार "दिरहम" से अधिक थी। द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत दो सौ दिरहम से दस हजार दिरहम की सम्पत्ति वाले लोग तथा तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत दो सौ दिरहम से कम सम्पत्ति वाले आते थे । तीनो श्रेणियों के लोगों को कमशः 48, 24, तथ 12 दिरहम कर देना पड़ता था[3] जो मुगल काल में $13\frac{1}{3}$, $6\frac{2}{3}$, $3\frac{1}{3}$ रूपये के बराबर था । 16वीं शताब्दी के अन्त में $3\frac{1}{3}$ रूपये में जो न्यूनतम था जजिया था[4], एक मन गेहूँ का आटा प्राप्त हो सकता था। इससे जजिया के भार का अनुमान लगता है[5] । जजिया सल्तनत काल के प्रारम्भ में ब्राह्मणो से नहीं वसूल किया जाता था क्योंकि ब्राह्मणों को साधु-सन्यासी के श्रेणी में माना जाता था किन्तु फिरोज तुगलक ने ब्राहमणों पर भी जजिया लगाया ।

1- जजिया के लिए हियूग्स : डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ0-248, परमात्माशरण, स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 113-44, अथनाइडस एन0 पी0 मुहम्मडन थ्योरीज आफ फाइनेन्स,पृ0 397-99, त्रिपाठी, सम ऐसपेक्टस आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 341-42

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 141 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 152 ।

4- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 662 ।

5- जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग 3, पृ0 270, कुरैशी-दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 143-45, जहीरूद्दीन फारूकी, औरगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 152 । कुरैशी के अनुसार, '12 दिरहम उस समय 3 रूपये 2 आने के बराबर था', इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, पृ0 120, फुटनोट 5, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 131 ।

दिल्ली सल्तनतकाल से चला आ रहा जजिया नामक कर बाबर तथा हुमायूँ के काल में भी लिया जाता रहा । 1564 ई0 में सर्वप्रथम अकबर ने यह कर समाप्त कर दिया । जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में जजिया समाप्त रहा किन्तु कुछ रूढ़िवादी विचारधारा के लोगों ने जजिया को पुनः लागू कराने का प्रयत्न किया। 1679 ई0 में औरंगजेब ने जजिया पुनः लागू किया[1]।

मनूची के अनुसार औरंगजेब द्वारा जजिया लगाने के दो कारण थे। पहला कारण सैनिक अभियानो के कारण औरंगजेब का राजकोष खाली हो जाना एवं दूसरा कारण कर के भरोसे हिन्दुओं को मुसलमान बनाना था । मीरात-ए-अहमदी के अनुसार औरंगजेब का लक्ष्य इस्लाम धर्म फैलाना था । मनूची के अनुसार बहुत से हिन्दू जो जजिया नहीं दे पाते थें कर वूसूल करने वालो के अपमान के भय से मुसलमान हो जाते थे । डा0 जदुनाथ सरकार इसी आधार पर यह विचार व्यक्त करते है कि जजिया लगाने में औरंगजेब का अभिप्राय इस्लाम धर्म का प्रसारण था। मिर्जाराजा जयसिंह की मृत्यु के पश्चात इस कर का लगाया जाना डा0 सरकार के मत की पुष्टि करता है। डा0 जहीरूद्दीन फारूकी का मत है कि औरंगजेब ने बहुत से कर समाप्त कर दिये थे इससे जो वित्तीय हानि हुई उसे पूरा करने के लिए उसने जजिया लगाया। इस तरह यह कर एक आर्थिक कर था, धार्मिक नहीं, डा0 कुरैशी के अनुसार यह कर आर्थिक लाभ के लिए नहीं था वरन् औरंगजेब जजिया को एक राजनीतिक मानदण्ड एक सिद्धान्त तथा अपने साम्राज्य को इस्लामी राज्य प्रदान करने का एक प्रतीक समझता था[2] । जदुनाथ सरकार के अनुसार जजिया कर से बहुत बड़ी रकम वसूल होती थी केवल गुजरात प्रान्त में ही जजिया कर से कोई पांच लाख रूपयें प्रतिवर्ष आते थे । हिन्दुओं के लिए जजिया कर का अर्थ यही होता था कि प्रत्येक हिन्दू नागरिक को राज्य को दिये जाने वाले करों के अपने भाग में एक तिहाई हिस्सा और भी यों देना पड़ता था। इस कर के भार से बचने का एकमात्र उपाय इस्लाम धर्म अंगीकार कर मुसलमान बनना ही था । समकालीन इतिहासकार मनुची ने लिखा है- ऐसे अनेको हिन्दू जो यह कर नहीं दे सकते थे, इस कर को वसूल करने वालों द्वारा किये जाने वाले अपमानों से छूटकारा पाने के लिए मुसलमान हो गये और यह सब देखकर औरंगजेब आनन्दित होता है[3] ।

1- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 211, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 177 ।

2- जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब भाग 2, पृ0 103, मुगलशासन प्रणाली, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ0 132

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 153

औरंगजेब के जजिया लगाने के पीछे आर्थिक, धार्मिक, तथा राजनीतिक शक्तियों का प्रभाव था[1]। वह इस्लाम के नियमों का पालन करना चाहता था । इससे उसे कट्टर रूढ़िवादी मुसलमानों से राजनीतिक कार्यो में सहायता प्राप्त होती थीं तथा उसे स्वयं मानसिक शान्ति या सन्तोष मिलता था । इस प्रकार इस्लामी सिद्धान्त के आधार पर जजिया लागू करके वह राजनीति लाभ प्राप्त करना चाहता था । जजिया से कुछ आर्थिक लाभ अवश्य हुआ । औरंगजेब ने छोटे-छोटे 80 कर या चुंगियाँ समाप्त कर दिये थे उससे राजस्व का काफी घाटा हुआ था । उसकी आंशिक क्षतिपूर्ति जजिया से की गयी[2] । औरंगजेब को मिर्जाराजा जयसिंह के जीवनकाल में जजिया लगाने का साहस नहीं हुआ । मिर्जाराजा जयसिंह के मृत्यु के पश्चात तुरन्त 1679 ई0 में औरंगजेब ने जजिया लगाया ।

पेशकश तथा नजर -

सम्पूर्ण एशिया में मध्ययुग में प्रचलित था कि किसी बड़े अधिकारी के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए । इसी परंपरा के आधार पर लोग जब सम्राट से भेंट करने जाते या शाही दरबार में उपस्थित होते थे तो अपने पद तथा स्थान के अनुरूप सम्राट को भेंट दिया करते थे। इसे पेशकश[3] कहा जाता था ।

सम्राट को उमरा तथा अन्य लोगों से विशेष अवसरों पर पेशकश के अतिरिक्त नजर भी प्राप्त होती थी । पेशकश एवं नजर में स्पष्ट अन्तर करना कठिन है । औरंगजेब ने 1700 ई0 में आज्ञा दी कि नकद पेशकश को नजर कहा जाये । अगले वर्ष उसने पुनः आज्ञा दी की राजकुमारों से प्राप्त उपहार को "नियाज" और अमीरों से प्राप्त उपहार को "निसार" कहा जाये । पेशकश, नजर से अधिक मूल्यवान होता है । पेशकश के अन्तर्गत हीरे, जवाहरात तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएं आती है । नजर साधारणतः बधाई तथा खुशी के अवसरों पर नगद रूप में दी जाती थी[4]। अनेक विशेष अवसरो पर सम्राट को पेशकश एवं नजर दिया जाता था जैसे सम्राट का सिंहासनारोहण, सम्राट तथा उसके पौत्रों के जन्मदिन, नववर्ष, सम्राट के राज्यारोहण का वार्षिकी, ईद तथा अन्य उत्सवों पर[5]। औरंगजेब

1- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइमस, पृ0 140-163

2- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 151

3- चोपड़ा, पुरीदास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 37 ।

4- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 133

5- एम0 अतहर अली, दि मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब, पृ0 143-44 ।

ने 1677 ई0 में राज्याभिषेक तिथि पर उत्सव मनाने, सरदारों से भेंट लेने तथा अन्य किसी भी प्रकार के वैभव का प्रदर्शन करने की पूरी मनाही कर दी[1] । ये औरंगजेब के शासनकाल का 21 वॉं वर्ष था । मनसबदारों की पदोन्नति अर्थात मनसब में वृद्धि पर भी सम्राट को नजर प्राप्त होती थी। युद्ध के बाद सन्धियों की अधीनता स्वीकार करने वाले शासक भी उपहार देते थे[2]। सम्राट से मिलने के लिये आने वाले विदेशी आगन्तुक उपहार में कुछ वस्तुएं तथा धन सम्राट को देते थे । सम्राट स्वयं भी इसके बदले कुछ उपहार देते थे लेकिन वह सम्राट की इच्छा पर निर्भर करता था । यूरोपीय व्यापारी एवं ईसाई मिशनरी सम्राट को विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे शिकारी चिड़िया, पुस्तके, बहुमूल्य पत्थर, कलात्मक तथा अद्‌भुत वस्तुएं उपहार के रूप में देते थे । इन उपहारों से सम्राट को मिलने वाली बहुमूल्य वस्तुएं तथा हीरे जवाहरात आदि से अच्छी आय हो जाती थी । औरंगजेव को अपने शासन की सोलहवीं वार्षिकी पर 50 लाख रूपये के मूल्य की नजर प्राप्त हुई थी[3]। प्रमुख अमीर कभी-कभी सम्राट को भोजन पर आमन्त्रित करते थे। इस अवसर पर भी सम्राट उपहार प्राप्त करता था । मुगल सम्राटों के दरबार में बल्ख, बदख्शॉं, ईरान, तुर्की, आदि देशों से राजदूत आते थें जो विभिन्न प्रकार की वस्तुएं सम्राट के लिए लाते थे ।

औरंगजेब विभिन्न सूबों से बहुत धन प्राप्त करता था । उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने साम्राज्य में व्यापार करने की अनुमति देने के लिए दो लाख रूपये का उपहार अपने लिए तथा एक लाख रूपये का उपहार अपने अधिकारियों के लिए मांगा था[4]।

अकबर द्वारा पेशकश हेतु एक पृथक खजाना स्थापित किया गया जो उसके उत्तराधिकारियों के काल तक रहा । अधीनस्थ सामन्तों से सम्राट को उपहार प्राप्त होते थे । इसका उल्लेख अकबर के समय भी मिलता है कि "अकबर अधीन सामन्तों से पेशकश के रूप में भारी धनराशि लिया करता था" । उमरावर्ग

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब पृ0 98, जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 480 ।

2- शाहजहॉंनामा, इनायत खॉं, -ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 81-82

3- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली. पृ0 133

4- एच0 एच0 दास, मोरिस एम्बेसी टू औरंगजेब, पृ0 221-22 ।

के ऊपर आर्थिक बोझ के रूप में यह परम्परा चलती रही । बर्नियर लिखता है कि उमरा वर्ग द्वारा सम्राट को इतने उपहार देने पड़ते थे कि इससे उनका सर्वनाश हो गया[1]। डा0 हरिशंकर श्रीवास्तव के अनुसार यह उपहार एक प्रकार का घूस ही था जिससे व्यापारी, विदेशी, दूत तथा अन्य साधारण सम्राट को प्रसन्न रखते थे[2]।

सम्पत्ति जब्ती -

शाही आय के स्रोतों में से एक यह भी था[3]। अमीरों की मृत्योपरान्त उसकी सम्पत्ति राज्य के अधिकार में आ जाती थी । जिनका कोई, वारिस नहीं होता था । जिनके वारिस होते थे उनके बारे मे नियम भिन्न था । इस सम्पत्ति को अस्थायी रूप से राज्य के द्वारा जब्त कर लिया जाता था । अमीर के द्वारा राज्य से लिए गये ऋण अथवा धनराशि के बकाये के बदले में उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी । जॉच के बाद ऋण समायोजन के बाद शेष सम्पत्ति संबंधित वारिस को दिए जाने की परिकल्पना पर यह नियम आधारित था लेकिन उसका व्यवहारिक पक्ष भिन्न था । आमतौर पर ऋण या बकाया से कम सम्पत्ति छोड़कर अमीर मरता था इसलिए वारिस के लिए कुछ नही बचता था । जॉच मे समय भी बहुत लगता था एवं भ्रष्टाचार की पूर्ण सम्भावना बनी रहती थी । औरंगजेब ने इस दिशा मे ध्यान दिया था ।

राज्य मे ''बैतुलमाल'' नाम का एक स्थायी विभाग था जिसमें उत्तराधिकारी छोड़े बिना, मरे हुए व्यक्तियों की सम्पत्ति जब्त की जाती थी । राज्य के अमीरो एवं अधिकारियों की सम्पत्ति भी उनकी मृत्यु के पश्चात जब्त कर ली जाती थी और इसी में रखी जाती थी[4]।

विदेशी मन्त्रियों के अनुसार मुगलकाल में उमरा द्वारा एकत्रित सम्पत्ति सम्राट की समझी जाती थी । मृत्यु के पश्चात् उनकी सम्पत्ति राज्य द्वारा जब्त कर

1- मॉसरात, कमेंटैरियस, पृ0 207 ।
2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 133-134 ।
3- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 480
5- हेदायेतुल कवायद तथा मीराते अहमदी, जिल्द-2, पृ0 185, के अनुसार अन्तिम प्रकार की सम्पत्तियों को अमवाल कहते हैं और इस प्रकार इस विभाग को बैतुलमाल का अमवाल कहा जाता है । जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 132 ।

ली जाती थी। इस सिद्धान्त को सम्पत्ति जब्ती कहा जाता था । आईन-ए-अकबरी में इसका उल्लेख नहीं है किन्तु समकालीन विदेशी यात्रियों ने इसका उल्लेख किया है । अकबर के काल में मॉसरात लिखता है कि उसको बड़े-बड़े अमीरो द्वारा एकत्रित धन से काफी आय[1] होती है जो कि कानून और प्रथा दोनों के ही अनुसार स्वामी की मृत्यु हो जाने पर सम्राट का हो जाता है । बर्नियर, हाकिन्स तथा अन्य यात्रियों ने भी यही मत व्यक्त किया है । बर्नियर लिखता है कि "इसका परिणाम यह होता है कि उमरा की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र या कम से कम पौत्र की दशा एक भिखारी की हो जाती है । सम्राट साधारणतया मृत उमराओं के परिवार की पेंशन निश्चित कर देता था[2]। बर्नियर आगे लिखता है कि "उनकी सभी सम्पत्ति का सम्राट ही उत्तराधिकारी होता है अतः कोई भी परिवार अधिक समय तक अपनी प्रतिष्ठा नहीं बनाये रह सकता है । अमीर की मृत्यु के पश्चात शीघ्र उनकी प्रतिष्ठा का अन्त हो जाता है । उनके पुत्रों अथवा कम से कम उनके पौत्रों की दशा साधारणतया भिखमंगों की सी हो जाती है और वे अश्वरोहियों की सेवा में एक साधारण सवार के रूप में भरती होने तक के लिए विवश हो जाते है फिर भी सम्राट आमतौर से विधवाओं को और कभी-कभी परिवार के लोगों को थोड़ी सी पेंशन दे देता है और यदि अमीर दीर्घायु है तो वह राजकीय अनुग्रह द्वारा अपने बच्चों की तरक्की कर सकता है[3]।

औरंगजेब के पत्रों में हमें निम्नलिखित कुछ ऐसे अंश मिलते हैं जो उस समय की वास्तविक परिस्थिति से अपरिचित पाठकों को आश्चर्यचकित कर सकते है । अफगानिस्तान का गवर्नर अमीर खॉं, (जो बीस वर्ष तक गवर्नर पद पर रहा) मर गया है । मुझे भी मृत्यु निश्चित है । लाहौर के दीवान को मृतक की सम्पत्ति को अत्यन्त परिश्रम तथा यत्न से कुर्क करने के लिए लिखो जिससे छोटी-बड़ी कोई भी वस्तु यहाँ तक कि घास का एक तिनका भी छूटने न पाये। बाह्य श्रोतों से सूचना प्राप्त कर लो और किसी भी स्थान पर प्राप्त प्रत्येक वस्तु को अपने अधिकार में कर लो क्योंकि ईश्वर के दासों (सम्राटों) का यह उचित अधिकार है[4]।

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 134 ।

2- बर्नियर, ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर, पृ0 211-12, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 134 ।

3- बर्नियर, ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर, पृ0 211-12, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 132।

4- रूक्काते आलमगीरी, पत्र 11, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 132

औरंगजेव ने जुलाई 1666 ई0 को एक फरमान जारी किया जिससे इस प्रथा का स्पष्टीकरण हो जाता है । इनके अनुसार मृत उमराओं की सम्पत्ति तत्काल सरकार द्वारा अभिकृत कर ली जाती थी यदि उसका कोई वारिस न हो तो वह बैतुलमाल में जमा कर दी जाती थी । यदि राज्य का कुछ ऋण बकाया होता तो उसे काटकर बाकी धन बैतुलमाल में जमा कर लिया जाता था । यदि उसका कोई उत्तराधिकारी होता तो बाकी धन उसे वापस कर दिया जाता था । मीरात-ए-आलम से ज्ञात होता है कि जिन मृत पुरूषों से सरकार को कुछ भी नहीं लेना था उनकी सम्पत्ति का हरण बन्द कर दिया । सम्राट के पूर्वजों के अधिकारी सम्पत्ति का हरण बड़ी कठोरता से किया करते थे। मृतको के दुःखी वंशजों पर इससे बड़ा अत्याचार होता था औरंगजेब ने ये अत्याचार बन्द कर दिया[1]। यदि राज्य का कोई बकाया नहीं होता तो पूरी सम्पत्ति वापस कर दी जाती थी। औरंगजेब की आज्ञा का कहाँ तक पालन होता था यह कहना कठिन है, पर सम्पत्ति जब्ती का नियम प्रचलित रहा। मनूची लिखता है कि औरंगजेब के इस नियम का कभी पालन नही होता था और सम्राट मृत अमीर की पूर्ण सम्पत्ति अधिकृत कर लेता था[2]।

डा0 जदुनाथ सरकार के अनुसार राज्य के उमराओं पर सरकार का अग्रिम और ऋण के रूप में इतना बकाया रहता था कि हिसाब-किताब में देर हो जाती थी । यह हस्तांतरण अल्पकालीन ही होता था । कुछ उमरा अपार धनराशि छोड़कर मरते थे। शाहजहाँ के काल में अलीमर्दान खाँ 1657 ई0 में एक करोड़ रूपये की सम्पत्ति छोड़कर मरा था । डा0 अतहर अली ने ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जहाँ औरंगजेब ने मृत अमीर की सम्पत्ति को जब्त कर लिया । उनका विचार सही है कि इस प्रथा का अन्त नहीं हुआ तथा अमीर का ऋण काटकर बाकी धन की वापसी सम्राट की इच्छा पर निर्भर था[3]।

1- बख्तावर खाँ, मीरात-ए-आलम-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खाण्ड पृ0 114, तपनरायचौधरी, इरफान हवीव, द कैम्ब्रिज इकनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 183

2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 134,

3- इस प्रश्न की विवेचना के लिए देखिए, सरकार जदुनाथ, ''मुगल एडमिनिस्ट्रेशन'' अध्याय 9, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकवर दी ग्रेट, भाग-2, पृ0 152-53, फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 480, बर्नियर, ट्रैवेल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 211-12, मनूची, भाग-2, पृ0 417, अतहरअली, मुगल नोविलिटी, पृ0 63-68, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0-134-35 ।

शुल्क तथा जुर्माना -

शुल्क तथा जुर्मानो से भी मुगल सम्राटों के राज्य में अत्यधिक आय होती थी । अपराधियों जैसे तस्करों, समुद्री डाकुओं, डकैतों, जाली सिक्का बनाने वालों, एवं दरबार में अनुचित व्यवहार करने वालों पर जुर्माना किया जाता था ।

अकबर द्वारा अपने शासनकाल में विवाहों को पंजीकृत करने की प्रथा चलायी गयी । इस पंजीयन हेतु शुल्क लिया जाता था । वर-वधू की स्थिति के अनुसार यह शुल्क एक दाम से दस मुहर तक लगता था । अदालत से सम्वन्धित जो कागजात होते थे उस पर अलग से शुल्क लिया जाता था । गन्ने की पेरायी के लिए, फेरी लगाने के लिए, मछुआरों, वेश्याओं, सूती वस्त्रों में चमक लाने हेतु, नाविकों, इत्यादि पेशा करने वालों को राज्य को शुल्क देना पड़ता था[1]। ये शुल्क औरंगजेब के काल में भी लिए जाते थे ।

गड़ा धन -

जिस व्यक्ति को जमीन के अन्दर गड़े हुए सिक्के या अन्य कोई बहुमूल्य वस्तु प्राप्त होती थी तो उसे राज्य को कर देना पड़ता था । हिन्दू एवं मुसलमानों दोनों को मुस्लिम विजय के पूर्व के शासकों के सिक्को पर 20 प्रतिशत कर देना पड़ता था किन्तु जो सिक्के भारत में मुस्लिम विजय के पश्चात चलाये गये थे यदि वो प्राप्त होते थे तो किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था । यह इस सिद्धान्त पर आधारित था कि यदि ये सिक्के मुस्लिम विजय के पूर्व छिपाये नही गये होते तो सैनिकों को प्राप्त हो गये होते और उस पर 20 प्रतिशत कर खम्स के रूप में वसूल हो गया होता[2]। जो खजाना राजसी भूमि से प्राप्त होता था वह सरकार द्वारा अधिकृत कर लिया जाता था ।

सिक्कों का निर्माण - (टकसाल)

राज्य का शाही टकसाल[3] पर एकाधिकार था । राजसी खजाना विनिमय बैंक की ही तरह था । इस विनिमय द्वारा उसे काफी

1-आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर दी ग्रेट भाग-2, पृ0 154, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 136

2- कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 143-46, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 136

3- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव. भारत का इतिहास. पृ0 662 ।

आमदनी होती थी । इस सम्बन्ध में मॉसेरॉत का कथन है कि "वह अपने साम्राज्य में सिवाय शाही खजानों के अधीक्षकों और कोषाध्यक्षों के किसी भी बैंक, साहूकार को पनपने नहीं देता । इस बड़े लेन-देन में सम्राट को बड़ा लाभ होता है, क्योंकि केवल इन्हीं शाही खजानो में सोने के सिक्कों को चाँदी, ताँबे के सिक्कों से या उन्हें सोने के सिक्के में बदला जा सकता है[1] ।

राज्य को टकसाल से बट्टा प्राप्त होता था । लोग सोना, चाँदी दे करके राज टकसाल से सिक्के प्राप्त करते थे। पुराने सिक्कों के घिस जाने पर उनका मूल्य कम हो जाता था । इसके बदलने में राज्य को लाभ होता था । मनूची लिखता है कि केवल सूरत की टकसाल में नये सिक्के बनाने से राज्य को नौ लाख वार्षिक आय होती थी[2] किन्तु जदुनाथ सरकार का कथन है कि "टकसाल" से भी राज्य को कुछ आय होती थी क्योंकि सिक्कों में कुछ मिलावट रहती थी परन्तु बहुधा सिक्के ढालने का कार्य सुनारों को ठेके पर दे दिया जाता था इसलिए इस मद से भी अधिक आय न होती रही होगी[3]।

खान -

राज्य का सोने-चांदी, एवं अन्य धातुओं की खानों पर एकाधिकार था । साने-चांदी हीरों की खानों का विवरण आईन-ए-अकवरी में दिया हुआ है । पत्थर की खदानों से भी आय होती थी । ग्वालियर की लोहे तथा गेरू की खदानों से अच्छी आय थीं । व्यापारियों से कर लेकर इसके खोदने तथा खनिज निकालने का अधिकार दिया जाता था । तीन स्थानों से नमक साम्भर झील, पंजाब की नमक की पहाड़ियों और समुद्री जल से प्राप्त किया जाता था । इस पर कर लिया जाता था एवं राज्य का नियंत्रण भी था[4]।

1-आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर द ग्रेट भाग2. पृ0-155, मासरेट कमेंटैरियस, पृ0 207,

2-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 136, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 286 ।

3- अवधविहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन प्रणाली, पृ0 488 ।

4- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 491 ।

पंजाब के पहाड़ों और राजपूताना की साँभर झील पर सम्राट का एकाधिकार था। वहाँ के नमक से जो आय होती थी उस पर केवल केन्द्रीय सरकार का अधिकार रहता था । राज्य ने कुछ अन्य वस्तुओं पर भी एकाधिकार स्थापित कर लिया था और उनकी बिकी से भी राज्य को आय होती थी । नील भी इन वस्तुओं में से एक थी । कुछ खानों पर राज्य का सीधा अधिकार था । अन्य खानों पर आय का $\underline{5}$ कर लगाया जाता था[1]। मोती तथा अन्य बहुमूल्य रत्न समुद्र से निकलते थे। इनकी मांग अमीरों के घरों एवं दरबार में अत्यधिक थी । समुद्र से प्राप्त धन पर सम्राट का एकाधिकार था । राज्य द्वारा लगाये गये बगीचों तथा सार्वजनिक हित के लिए बनायी गयी नहरों, कूएं, जंगलों की लकड़ी, नदियों, एवं समुद्री इलाकों से मछली आदि से भी राज्य कर वसूल करता था[2]।

राज्य के भीतर सड़कों तथा नदियों के उपयोग के लिए चुंगी देनी पड़ती थी । माल की बिक्री पर बिक्री कर लगता था । नगरों में भी बाजार में चुंगी ली जाती थी । इन सभी साधनों से प्राप्त होने वाली आय नगण्य नहीं थी परन्तु वह विशेष परिमाण में नहीं होती थी ।

<u>कारखाना</u> -

मध्यकाल में वस्तुओं के निर्माण के संगठनो के अतिरिक्त राजसी प्रतिष्ठानों हेतु कारखाना शब्द का प्रयोग होता था । अस्तबल खाना (घोड़ों के लिए) फील खाना (हाथी के लिए) गो खाना (गायों के लिए) फर्शखाना (कारपेट) रथखाना, पालकी खाना, जीनखाना, नक्कारखाना, बाबर्ची खाना, आब्रदारखाना, तोपखाना, ईमास्त्रवाला इत्यादि भी कारखाने कहे जाते थे इसके अतिरिक्त कारखाने में केन्द्रीय शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सम्राट के शाही परिवार हेतु वस्तुएं निर्मित होती थी । कुछ ऐसे कारखाने केन्द्र तथा प्रमुख नगरों में फैले हुए थे जिनमें भिन्न-भिन्न गाड़ियाँ, अस्त्र-शस्त्र, हल्की पालकियाँ, शाल, पगड़ियों, सोने-चांदी के बर्तन, दवाएं इत्यादि का निर्माण होता[3] था।

केन्द्रीय खजाना खजीनाह-ए-उमरा जो कि सामान्य खजाना था । यह साम्राज्य कई भागों में स्थित था एक फारसी इतिहास जिसका उल्लेख जहीरूद्दीन

1- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 488,

2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 137,

3- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 135,

फारूकी ने किया है उसमें निम्नलिखित 12 खजानों[1] का उल्लेख करते है ।

1- अन्दरून-ए-महल-हरम के अन्दर का खजाना ।
2- बकायाँ-बकायाँ की वसूली से प्राप्त धन का खजाना ।
3- जेब-ए-खास-सम्राट के जेब खर्च को पूरा करने वाला खजाना ।
4- खजिनाह-ए-रिकाब-सम्राट की यात्रा के समय उसके साथ चलने वाला खजाना।
5- जेब-ए-फैज-दान पुण्य के लिए खजाना ।
6- खजिनाह-ए-नजर व-पेशकश-पेशकश, उपहार भेंट इत्यादि के लिए ।
7- खजिनाह-ए-सरफे खास-व्यक्तिगत या घरेलू खर्चो के लिए सम्राट का खजाना
8- बैतुलमाल-लावारिस मरने वाले व्यक्तियों की सम्पत्ति से बना खजाना ।
9- बहुमूल्य हीरे जवाहरात का खजाना ।
10- सोने के बर्तनों का खजाना ।
11- जड़ाऊ आभूषणों का खजाना ।

प्रान्तों में केवल 4 खजाने होते थे ।

1- खजिनाह-ए-अमरा ।
2- खजिनाह-ए-बागया ।
3- खजिनाह-ए-सदका ।
4- खजिनाह-ए-जिजयाह ।

साधारण बोलचाल में केवल 12 खजाने तथा 36 कारखाने थे । शाकिर खाँ की संक्षिप्त जीवनी मे भी हमें इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है । जवाबिते आलमगीरी (फोलिया 132 ब) में 69 कारखानें का उल्लेख है किन्तु उसकी बुरी लिखावट के कारण कुछ नामों को स्पष्ट रूप से पढ़ा नहीं जा सकता है । आईन-ए-अकबरी में 26 कारखानों का अलग वर्णन है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इसमें 10 दूसरे कारखानों का भी उल्लेख है इस प्रकार इसके अनुसार कारखानों की कुल संख्या 36 है[2]।

1- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0- 489,
2- जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 149, अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी, जिल्द-1, पृ0 12

अकबरके शासन काल में लगभग सोलहवीं शताब्दी के अन्त में प्रासादीय उद्योगशालाओं का विस्तृत विस्तार हो चुका था । उसका प्रशंसक अबुल फजल लिखता है कि "इलाही संवत" के उन्तालीसवें वर्ष में (1595 ई0 में) शाही महल में सौ से अधिक कार्यालय और कारखाने थे जिनमें से प्रत्येक एक शहर अथवा एक छोटे से साम्राज्य की भाँति प्रतीत होता था । बर्नियर ने उन्हें साठ वर्ष बाद देखा था और उसने उनका आँखों देखा विवरण दिया है[1] । दस्तूरूल अम्ल नामक सरकारी पुस्तिकाओं तथा 17 वीं शताब्दी के अन्त और उसके बाद लिखे गये दूसरे ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी हमें कारखानों की सूची मिलती है किन्तु राज्य के आर्थिक कार्यकलाप की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें दो प्रकार की वस्तुओं को अलग-अलग समझने की आवश्यकता है जिन्हें हमारे मान्य ईरानी इतिहासवेत्ताओं ने "कारखानो" के नाम से पुकारा है और उसी सूची में उन्हें भी सम्मिलित कर लिया है अर्थात 1- जानवरो, खाद्य एवं पेय पदार्थो तथा शासन द्वारा प्राप्त राजप्रासाद में रखी हुई तैयार अथवा प्रयोग करने के योग्य वस्तुओं के गोदाम । 2- वास्तविक कारखाने, जहाँ पर राज्य के वेतन प्राप्त नौकर कच्चे माल से प्रयोग करने के योग्य वस्तुएं तैयार करते थे ।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांसीसी डाक्टर बर्नियर ने मुगल राजधानी की यात्रा करते हुए इन कारखानों को काम करते देखा था । वह लिखता है कि किले के भीतर बहुत-से स्थानों पर बड़े-बड़े कमरे है[2] जिन्हें कारखाना अथवा कारीगरों की उद्योगशाला कहते है । एक बड़े कमरे में कसीदा काढ़ने वाले अपने कार्य में लगे हुए थें और उनके कार्य की एक अध्यक्ष निगरानी कर रहा था । दूसरे कमरे में सुनारों को, तीसरे कमरे में रंगरेजों को, चौथें कमरे में बढ़इयों, दर्जियों तथा मोचियों को और छठे कमरे में सिल्क, जरी तथा बारीक मलमल बनाने वालों को देखा । इन पर सुन्दरतापूर्वक कसीदाकारी होती थी ।

कारीगर प्रतिदिन सवेरे अपने-अपने कारखानों में कार्य करने आते है । यहाँ वे दिनभर अपने कार्य में लगे रहते है और सन्ध्या समय अपने घरों को वापस जाते है । कसीदा करने वाले का लड़का कसीदा करने वाला और सोनार का

1- बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 259, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 146,

2- जे0 एन0 सरकार, मुगल शासन पद्धति, पृ0 151,

लड़का सोनार होता है तथा शहर के हकीम अपने लड़के को हकीमी सिखाते है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही व्यापार तथा व्यवसाय करने वालों के अतिरिक्त किसी अन्य के साथ विवाह नहीं करता है । हिन्दू और मुसलमान दोनों इस प्रथा का बड़ी सख्ती के साथ पालन करते है[1]। सूबों में लाहौर, आगरा, फतेहपुर, अहमदाबाद, बुरहानपुर तथा काश्मीर में राज्य के कारखाने थे । विभिन्न सूबों के गर्वनर अत्यन्त छोटे पैमाने के अतिरिक्त अपना निजी कारखाना नहीं चला सकते थे क्योंकि उनका प्रायः स्थानान्तरण होता रहता था किन्तु वे स्थानीय उपज को प्रोत्साहन देते थे क्योंकि यह सब होते हुए भी उन्हें सम्राट को प्रसन्न करने के लिए अपनी कार्य कुशलता का प्रमाण देना पड़ता था । बादशाह और शाहजादे इन सूबों मे से प्रत्येक में अपने अधिकारी नियुक्त करते है जो उस स्थान पर बना हुआ अच्छे से अच्छा सामान अपने पास तैयार रखते हैं । इस माध्यम से वे स्थानीय कारीगरों द्वारा उस प्रकार के किये जाने वाले कार्यो पर निरन्तर दृष्टि रखते है[2]।

गोलकुण्डा राज्य में बहुत दिनों तक मुसलीपट्टम छपाई के काम में दक्ष अनेक कारीगरो का केन्द्र था । दकन के तत्कालीन वाइसराय औरंगजेब के बहुत से पत्र उपलब्ध है जिनमें उसने इन कारीगरों में से कुछ को दिल्ली और आगरा के राज्य कारखानों में कार्य करने को भेज देने की शाहंशाह से सिफारिश की थी। मीराते अहमदी (सप्लीमेन्ट, पृ0-179) में गुजरात के राज्य-आय के एक श्रोत के रूप मे उल्लिखित कथरायेपर्चा के महाल से यह बिल्कुल भिन्न था ।इसका तात्पर्य कपड़े की चुंगी से था और यह अर्थ स्पष्ट रूप से इसकी ''महाले-सदपंज'' अथवा पॉच प्रतिशत के भाग से निकलता है क्योंकि औरंगजेब के शासनकाल में बेचे हुए माल पर हिन्दुओं से पॉच प्रतिशत, ईसाईयों से साढ़े तीन प्रतिशत तथा मुस्लिम व्यापारियों से अढ़ाई प्रतिशत[3] की दर से चुंगी ली जाती थी ।

आगे चलकर इनसे (मुस्लिम व्यापारियों से) कुछ भी चुंगी नहीं ली जाती थी। राज्य के अपने अधिकार में 100 से अधिक कारखाने थे । इनमें से अधिकांश

1- बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 259, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0- 151,

2- निकोलो मनूची, स्टोरिया टू मोगोर, जिल्द-2, पृ0 431, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 152,

3- खाफी खॉ, मुन्तखब-उल-लुबाब,-ईलिएट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0-209,

राजधानी में केन्द्रीत थे किन्तु अनेक अन्यान्य स्थानों पर भी थे । इन कारखानों में इत्र, सुन्दर वस्त्र, श्रृंगार सामान, युद्ध सामग्री, उपहार के योग्य वस्तुएं, सुन्दर फर्नीचर, आदि तैयार होते थे । प्रधानतः उनके सामान की खपत राजमहल तथा राजदरबार में ही होती थी परन्तु यदि कोई अतिरिक्त सामान बचता तो वह खरीददारों को बेच दिया जाता था इससे राज्य को स्वल्प आय होती थी ।

व्यापार -

सरकार व्यापार से कई प्रकार के कर वसूल करती थी । राज्य की आय का एक महत्वपूर्ण श्रोत चुंगी था । सीमा पर चुंगी विदेशों से आने वाली या भेजी जाने वाली वस्तुओं पर लगती थी । नेपाल, भूटान, सिक्किम, तथा हिमालय के निकटवर्ती प्रदेशों से आने वाले माल पर गोरखपुर के निकट चुंगी वसूल[1] की जाती थी । बन्दरगाहों पर चुंगी समुद्र मार्ग से आने वाले सामानों पर वसूल की जाती थी । समकालीन विदेशी यात्री लिखते है कि सीमा शुल्क अधिकारी बड़े सख्त थे। जो व्यक्ति या सामान आता था उन सबकी तलाशी ली जाती थी । थेवैनो लिखता है कि कभी-कभी व्यापारियों को अपना माल छुड़ाने में एक महीना लग जाता था[2]। सामान्यतः वस्तु के मूल्य का ढाई प्रतिशत चुंगी की दर थी । साढ़े तीन प्रतिशत इसे बढ़ाकर कर दिया जाता था । औरंगजेब के काल में हिन्दू व्यापारियों से वस्तु के मूल्य का पाँच प्रतिशत, मुसलमान व्यापारियों से ढाई प्रतिशत[3] तथा थेवैनों के अनुसार इसाईयों से चार प्रतिशत कर लिया जाता[4] था । सीमा शुल्क के रूप में इन बन्दरगाहों से अच्छा धन मिल जाता था । मनूची के अनुसार केवल सूरत बन्दरगाह से तीस लाख की वार्षिक आय हो जाती थी[5]।

साधारणतया नावों से या स्थलमार्ग से देश के आन्तरिक भागों में सामान जाया करता था । जिस भू-भाग से माल गुजरता तो उस क्षेत्र का वह

1-आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662, थेवैनो, दि इण्डियन ट्रेवल्स ऑफ थेवेनों एण्ड कारेरी, पृ0 3,

2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 137,

3- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 209,

4- थेवैनो, दि इण्डियन ट्रेवल्स आफ थेवैनो एण्ड कारेरी, पृ0 4, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 139

5- मनूची, स्टोरिया दू मोगोर, भाग-2, पृ0 392, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणली, पृ0 137

अधिकारी या जमींदार जिसको वह भूमि वेतन के एवज मे दी गयी होती थी, माल की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता था । उसकी सुरक्षा के लिए अपने क्षेत्र में वह माल के साथ अपना क्षेत्र पार करने के लिए अनुरक्षक भेजता था । इसके खर्चे के लिए जो कर लिया जाता था वह "राहदारी" कहलाता था । साधारणतया यह शुल्क अधिक नहीं होता था किन्तु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पहुँचने पर कभी-कभी वस्तु के मूल्य से भी अधिक कर देना पड़ता था । अकबर द्वारा इस कर को बन्द करने का आदेश दिया गया किन्तु भौगोलिक दूरी के कारण यह कर स्थानीय अधिकारियों द्वारा वसूल होता रहा । इसी कारण औरंगजेब को भी उसे बन्द करने का आदेश देना पड़ा[1]। नौघाट (फेरी) से नदी पार करने पर "उतराई" नामक कर लगता था । उससे काफी रकम वसूल हो जाती थी । इसे भी औरंगजेब द्वारा बन्द किया गया । नगरो में प्रवेश करते समय चुंगी देनी पड़ती थी । भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर अलग-अलग कर लगाया जाता था । बाजार के माल की बिक्री पर अलग कर देना पड़ता था[2] ।

1667 ई0 में औरंगजेब ने मुसलमानो को आयात-निर्यात कर से मुक्त कर दिया । परन्तु जब यह शिकायत की गयी कि मुसलमान लोग हिन्दुओं से रिश्वत लेकर उनका सामान अपना कह कर बिना चुंगी दिये निकलवा देतें हैं, तब सम्राट ने मुसलमानों से फिर आयात-निर्यात कर लेना आरम्भ कर दिया । हिन्दुओं से 5 प्रतिशत लिया जाता था मुसलमान केवल $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत ही देते थे।

<u>अबवाब</u> -

जो कर सरकार से स्वीकृत नहीं थे ऐसे बहुत से कर प्राचीनकाल से चले आ रहे थे फिर भी राज्य के कर्मचारी उन्हें दूरवर्ती प्रदेशों में वसूल करते थे। तुर्की शासन की स्थापना के पश्चात् दिल्ली सल्तनतकालीन शासको ने इस्लामी कानून के अनुसार कर लगाने का प्रयत्न किया । इस कारण बहुत से गैर कानूनी करों को जिन्हें "अबवाब" कहा जाता था[3], बन्द करने की घोषणा की गयी ।

1- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग-2, पृ0 89, आई0 एच0 कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दी मुगल एम्पायर, पृ0 152, आशीवार्दीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 631, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 391,

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब,-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 176 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 444, जे0 एम0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 66-67

ऐसा प्रतीत होता है कि इन करों के बन्द करने के आदेश के बावजूद इनमें से अधिकतर कर स्थानीय अधिकारियों द्वारा वसूल होते रहे । मुगल काल की स्थापना के समय से ऐसे कर भी जनता से वसूल किये जाते थे । उदाहरण के लिये अकबर व जहाँगीर के समय की स्थिति का भी उल्लेख किया जा सकता है । प्रजा का बोझ हल्का करने के उद्देश्य से अकबर ने कई कर समाप्त कर दिये । इनमें गाँव शुमारी (कर प्रति बैल), पेशाकार (विभिन्न वर्ग के पेशों पर कर), मीर बहरी (बन्दरगाहों पर लगने वाले कर), सैरे दरखती (कर प्रति पेड़), दरोगाना (दरोगा शुल्क), तहसीलदारी (तहसीलदार शुल्क), सलामी (भूमि पाने पर भेंट), खरीता प्राप्त होने का शुल्क सर्राफी (धन विनिमय शुल्क), नक्खास (पशु बिक्री कर), हाबिले बाजार (बाजार कर), आदि प्रमुख कर था[1]।

जहाँगीर अपनी आत्मकथा तुजूके-जहाँगीरी में लिखता है कि गद्दी पर बैठने के पश्चात् उसने तमगा एवं मीर बहरी नामक कर तथा अन्य कर जो प्रान्तों तथा सरकारो के जागीरदार अपने लाभ के लिए वसूल करते थे, समाप्त कर दिये[2] किन्तु ये पूर्णरूप से बन्द नहीं हुए और औरंगजेब के शासनकाल में भी वसूल होते रहे । औरंगजेब ने 20 नवम्बर 1665 ई0 के फरमान द्वारा बहुत से वसूल हो रहे गैर कानूनी कर समाप्त कर दिये । खाफी खाँ के अनुसार औरंगजेब ने अस्सी करों को समाप्त करने की आज्ञा दी । जदुनाथ सरकार ने औरंगजेब द्वारा समाप्त किये गये 63 करों का उल्लेख किया है[3]।

औरंगजेब द्वारा हटाये गये आबवाब -

अ- पैदावार की बिक्री पर लगायी गयी चुंगी-

हिन्दू व्यापारियों से विक्रय-मूल्य पर 5 प्रतिशत वैधानिक कर लिया जाता था जो केवल कुछ ही वस्तुओं पर लगाया गया था । ये कर उस दशा में नहीं लगाये जाते थें जब वस्तुओं का मूल्य निसाब अथवा कुरान द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल्य (52 रूपये) से कम होता था ।

1- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर दि ग्रेट भाग-2, पृ0 151,
हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 138,

2- जहाँगीर, तुजुके जहाँगीरी रोजर्स, भाग-1, पृ0 7,

3-अलीमुहम्मद खाँ, मीराते अहमदी, जिल्द 1, पृ0 258, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 69, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 391,

1- मछुआरों द्वारा विक्रयार्थ पकड़ी तथा लायी गयी मछलियाँ ।
2- अपने खेतों से किसानों द्वारा विक्रयार्थ लायी हुई रसोईघर की तरकारियाँ ।
3- ईंधन के लिए गोबर के उपले ।
4- दूध और दही ।
5- जंगलो से विक्रयार्थ लायी हुई ढाक (बंगाली पलाश) तथा पाला वृक्ष की पत्तियाँ और बबूल आदि की छाल ।
6- जंगलों से लायी हुयी घास, गोखरू, तथा ईंधन की लकड़ी ।
7- तेल गुजरात में सरसपुर के अधिकारी तेल के प्रत्येक कुप्पे पर 30 रूपया वार्षिक वसूल करते थे[1]।
8- गाँवों और कस्बों में विक्रयार्थ बने हुये मिट्टी के बरतन तथा रकाबियाँ ।
9- तम्बाकू (एक सिपाही द्वारा अपनी पत्नी की हत्या कर देने के फलस्वरूप 1666 ई0 मे यह मादक-कर हटा दिया गया था, जिस समय तम्बाकू के निमित्त कर वसूल करने वालों ने उसकी गाड़ी की तलाशी ली थी[2] ।)

1673 ई0 में जारी किया गया औरंगजेब का यह फरमान अपने अधिकारियों को निश्चित रूप से निर्देश देता है कि लोगों को उनकी डोलियों बैलगाड़ियों और दूसरी वस्तुओं की तलाशी लेकर कष्ट न दो[3]। तम्बाकू तथा दूसरी वस्तुओं पर कर लेने के लिए औरतों और बच्चों की डोलियों, बैलगाड़ियों तथा ऊँटगाड़ियों की तलाशी ली जाती थी और थैले, सन्दूकें और गठरियाँ खोली जाती थी ।

10- क्रय करने के राज्य के एकाधिकार को समाप्त करने के लिए आदेश दिया गया था । पहले अधिकारी सुगन्धि के राजकीय कारखानों के निमित्त सभी प्राप्य गुलाब के फूलों को खरीद लिया करते थे । जनता के लिए उनकी बिक्री निषिद्धि थी, किन्तु कुतुबुद्दीन खाँ के आग्रह पर एक फरमान जारी कर मालियों को अपने फूलों को इच्छानुसार कहीं भी बेचने की अनुमति दी गयी थी ।

1-अलीमुहम्मद खाँ, मीराते अहमदी जिल्द-1, पृ0 261, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 70,
2-निकोलो मनूची, स्टोरिया डू मोगोर जिल्द-2, पृ0 175, तथा जदुनाथ सरकार 'औरंगजेब का इतिहास, जि0-3, अध्याय 28, अनुच्छेद-1, जे0 एन0 सरकार मुगलशासन पद्धति, पृ0 70,
3-अलीमुहम्मद खाँ, मीराते अहमदी जिल्द-1, पृ0-287, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0-70,

ब- जायदाद बेचने पर ली गयी फीस -

1- भूमि बेचने अथवा बन्धक रखने पर ।

2- मकान बेचने पर विक्रेता से कानूनगों और प्यादे $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत फीस लिया करते थे ।

3- ढोलका नामक ग्राम में यदि कोई निर्धन व्यक्ति अपना मकान गिराना और उसका सामान बेचना चाहता है तो कोतवाल प्रति रूपया हजार पर बेची जाने वाली ईटों पर तीन टका लेता है ।

4- जब कभी एक मकान बेचा जाता था तो सरकार विक्रेता से अनुमानित मूल्य पर फीस वसूल करती थी[1] ।

5- गुलामों के बेचने पर ।

स- राज्य की फीस अथवा दलाली और अधिकारियों की दस्तूरी-

1- राहदारी[2] अथवा सड़क की गश्त का वेतन 1658 ई0 में औरंगजेब ने इसे हटा दिया था । इस कर को हटाने के समय इससे प्रति वर्ष पच्चीस लाख रूपये केवल ''राज्य भूमि'' से ही मिला करता था ।

2- बाजार में दुकाने बनाने के लिए कर व बाजार-भूमि के स्थानों के लिए किराया देना पड़ता था[3]।

3- ऋणों के पुर्नभुगतान के डिग्री प्राप्त मुकदमों तथा चोरी गयी हुयी सम्पत्ति के मिलने पर उसे उसके स्वामी को लौटाने में मजिस्ट्रेट ऋण अथवा सम्पत्ति के मूल्य का एक चौथाई भाग राज्य के लिए ले लिया करते थे । औरंगजेब ने इस फीस को और मुकदमें वालों द्वारा दिये गये जुर्मानों तथा शुकरानो के भुगतान को बन्द कर दिया था जो प्राचीन तथा मुस्लिम न्याय-प्रथा द्वारा स्वीकृत थे ।

4- प्रत्येक सौ रूपये पर सिक्कों के परखने के लिए फीस जिसे ''शशदामी'' (एक रूपये का साठवां भाग) कहते थे ।

1-मीराते अहमदी, जिल्द-1, पृ0- 287, जवाबिते आलमगीरी और दस्तूरूल अम्ल जे0 एन0 सरकार, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 71,

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब,-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 176, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 391,

3- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 176,

5- जूसी तैयारी किये जाने वाले प्रत्येक लोहे के कड़ाहे पर कर "मीराते अहमदी" के अनुसार चीनी तैयार करने में नियमानुकूल चुंगी लगायी जाती है ।
6- सूखी हुयी नदियों पर घाट का कर ।
7- पत्थर तथा लोहे के बाटों पर अधिकृत रूप से ठप्पा लगाते समय लगाया गया कर ।
8- शस्त्रगृहों तथा उनमें रहने वालों की गणना के निमित्त फीस । यह कर हिन्दुओं से लिया जाता था किन्तु मुसलमान इससे बरी थे ।
9- लगान-मुक्त भूमि "मददेमाश" प्राप्त लोगों से अनुदान की परिपुष्टि "मुकर्ररी" के अवसर पर प्रथानुसार ली जाने वाली दस्तूरी ।
10- चकबन्दी के अवसर पर लोगों से उपहार स्वरूप वस्तुएं लेना ।
11- चुंगियों अथवा दूसरे स्थानों पर तोलने वाली तराजुओं पर लगायी गयी दस्तूरी मीराते अहमदी में इसे तराजूकशी के लिए दरोगा की फीस और कुछ स्थानो पर "धारन तथा दण्डीधारी" कहा गया है किन्तु जवाबिते आलमगीरी और दस्तूरूल अम्ल में इसे "दरोगाना व रसूमे कोतवाली" कहते है ।
12- अनाज के व्यापारियों तथा दूसरे व्यापारियों से, कुछ स्थानों पर बंजारों से नव-नियुक्त अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली भेंट "पेशकश" । मीराते अहमदी जिल्द-1, पृष्ठ 261 में इसका इस प्रकार उल्लेख है- फौजदार और करोड़ी साबरमती तथा पत्रक नदियों के तटवर्ती परगनों के निवासियों से बलपूर्वक 10 रूपये से लेकर 15 रूपये तक वसूल करते थे जिसे वे "कछारी" कहते थे और फिर यदि अहमदाबाद का कोई निवासी अपने पूर्वजों के मकान में स्थित किसी वृक्ष को काटना चाहता था, जो उसके मकान को क्षति पहुँचा रहा था, तो स्थानीय अधिकारी उसको या उसकी एक टहनी को काटने की अनुमति नहीं देते थे जब तक कि वे उन्हें कुछ दे न देते थे[1] ।

13- जब कभी भी एक निर्धन व्यक्ति अथवा किसान किसी पशु को अहमदाबाद अथवा इसके उप नगरों को विक्रयार्थ ले जाता था तो उनसे दो बार कर लिया जाता था । एक तो आयात-कर "आमदनी" और दूसरा विक्रय-मूल्य पर सरकारी कमीशन यदि वे इसे बेच न सकने के कारण इसके साथ वापस आना चाहते थे तो भी अधिकारी उससे निर्यात कर "रफ्तानी" वसूल करते थे ।

1- मीराते अहमदी, जिल्द-1, पृ0 260-जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0-74.

1682 ई0 में औरंगजेब को निम्नलिखित आबवाबो को बन्द करने के लिए दूसरा फरमान जारी करना पड़ा था । ये आबवाब इस प्रकार है -मल्बा, भेंट बालादस्ती, तहसीलदारी, सादिर तथा वारिद ।

द- हिन्दुओं पर लगाये गये कर -

1- गंगा तथा दूसरी पवित्र नदियों के जल में स्नान करने पर टैक्स[1] । मुगल शासन इलाहाबाद में प्रत्येक यात्री से सवा छह रूपया लिया करता था[2]।

2- मृत हिन्दुओं की अस्थियों को गंगा में फेंकने पर टैक्स । ये परम्परागत टैक्स हो गये थे । इसी कारण इसे कई बार समाप्त किया[3] गया किन्तु इसके बाद भी स्थानीय कर्मचारियों द्वारा वसूल किया जाता रहा । इन करों से कितनी आय होती थी यह इस बात से स्पष्ट होता है कि इन करों को समाप्त करने से केवल शाइस्ता खाँ के बंगाल की जागीर में बारह लाख रूपये की हानि हुई[4]।

मुसलमान बादशाहों द्वारा बार-बार आबवाब कर अवैध घोषित किये गये और उनके साम्राज्य के भीतर ये निषिद्ध थें किन्तु अपने मदों में कुछ परिवर्तन के साथ वे शीघ्र ही पुनः दिखायी पड़ने लगते । "रेवेन्यू रिसोर्सेज आफ द मुगल एम्पायर" नामक अपनी पुस्तक में टॉमस ने फारसी श्रोतों के आधार पर 1590 ई0 के लगभग अकबर द्वारा हटाये गये आबवाबों की सूची दी है । 20 अप्रैल 1673 ई0 के फरमान में औरंगजेब द्वारा हटाये गये आबवाब मीराते अहमदी जिल्द-1, पृष्ठ 286-88, जिसकी पृष्ठ 260-264 पर व्याख्या दी हुई है (जवाबिते आलमगीरी) फ 135 तथा दस्तूरूल अम्ल, फ 102 पर गिनाये गये है किन्तु ये तीनों श्रोत आपस मे एक-दूसरे से सभी बातों में मिलते-जुलते नहीं है। इस समय हटाये गये आबवाबों की संख्या मीराते अहमदी के अनुसार 41, जवाबिते आलमगीरी के अनुसार 74 तथा दस्तूरूल अम्ल के अनुसार 78 है । बंगाल में इस प्रकार के 19 कर

1- स्टोरिया डू मोगोर, जिल्द-2, पृ0 82, जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 78,

2- जहाँगीर, तुजुके जहाँगीरी रोजर्स, भाग-1, पृ0 7,

3- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब-ईलियट एवं डाउसन, भारत का ईतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 176,

4- एस0 आर0 शर्मा, मुगल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 66-67,
हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 139,

केवल किसानो के अतिरिक्त सब पर उन्नीसवीं शताब्दी तक लगाये गये थे[1] जबकि ब्रिटिश कानूनी अदालतों ने अंतिम रूप से उन्हें अवैधानिक घोषित किया। आबवाबों को छः मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है जिससे साम्राज्य को आय होती थी -

क- आधुनिक भारत के कुछ कस्बों की म्यूनिसिपल चुंगी कर के सदृश राज्य द्वारा पैदावार की स्थानीय बिक्री पर लिया जाने वाला कर ।
ख- अचल सम्पत्ति की बिक्री पर लगायी गयी फीस ।
ग- अपने लाभ के लिए अधिकारियों द्वारा ली गयी दस्तूरी तथा प्रायः प्रत्येक विचारणीय अवसर पर राज्य की ओर से लगायी गयी कटौती अथवा फीस ।
घ- किसी व्यापार को करने के लिए लाइसेन्स टैक्स ।
ड़- बलपूर्वक प्राप्त चन्दा ।
च- हिन्दुओं पर लगाये गये विशेष कर[2] ।

वस्तुओं के क्रेताओं एवं विक्रेताओं तथा प्रत्येक व्यापार एवं व्यवसाय के करने वालो पर लगाये गये आबवाबों अथवा प्रत्यक्ष अवैधानिक करों के अतिरिक्त बलपूर्वक वसूल करने के दूसरे श्रोत थे अर्थात बादशाहों के बार-बार निषेध करने के विपरीत स्थानीय अधिकारियों का व्यकितगत व्यापार[3] जिसने उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं पर अप्रत्यक्ष कर का एक भारी भार लाद दिया था।

<u>वित्त व्यवस्था[4]</u> -

बजट की व्यवस्था अकबर से पहले नहीं थी । 1562 ई0 में सबसे पहले अकबर ने एतमाद खाँ की सहायता से बजट प्रथा का शुभारंभ किया । उसके शासन काल के अन्तिम चरण में यह पूर्णरूप से सुव्यवस्थित हो गयी । उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में आय-व्यय का हिसाब-किताब तथा बजट उसी

1- रामपिनि का बंगाल टेनेन्सी एक्ट, चतुर्थ संस्करण, पृ0 255-56-जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 67,

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 176,

3-फारसी में इसे 'तरह' कहते है ''घियासुल-लुगत'' जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 67-68, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662,

4- श्री हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 139 ।

उसी आधार पर निर्धारित होता रहा । हिसाब-किताब को सुचारू रूप से चलाने के लिए तरह-तरह के नियम बनाये गये । इस प्रकार मुगल वित्तीय व्यवस्था ने जटिल रूप धारण कर लिया ।

"खजाना" अकबर के शासनकाल में दो भागों में विभाजित था । एक से भुगतान किया जाता था दूसरे में भुगतान लिया जाता था । जिस खजाने से भुगतान लिया जाता था वह बारह भागों में विभाजित था । पेशकश, नजर, लावारिस, सम्पत्ति, दान, बहुमूल्य रत्नों, जड़ाऊ आभूषणों, सोना, आदि के लिए पृथक-पृथक कोष थे । औरंगजेब के समय के खजानों में खजाना-ए-उमरा, बेतूल खराज, खजाना-ए-सदाकदत, खजाना-ए-बकाया, खजाना-ए-जजिया प्रमुख थे[1]।

सम्पूर्ण साम्राज्य की अनुमानित आय के आधार पर सम्राट की देख रेख में बजट बना लिया जाता था । उसी के आधार पर खर्च किया जाता था । केन्द्रीय सरकार का दीवाने आला "दीवान वजीर या प्रमुख दीवान" वित्त व्यवस्था का प्रमुख अधिकारी था । शाही वस्तुओं की देखभाल एवं संरक्षण का उत्तरदायित्व 'मीर-ए-सामाँ' के ऊपर था । प्रान्त में प्रान्तीय दीवान तथा उनके विभाग के कर्मचारी वित्त सम्बन्धी पूरा हिसाब-किताब रखते थे । केन्द्रीय सरकार के प्रमुख दीवान के निर्देशन में प्रान्तीय दीवान कार्य करता था । सरकार में अमल-गुजार प्रान्तीय दीवान के निर्देशन में मालगुजारी तथा वित्त सम्बन्धी कार्यो का सम्पादन करता था । परगने के जो आमिल, खजान्ची, कानूनगो, थे ये लोग ही हिसाब किताब रखते थे । भूमि सम्बन्धी आकड़ा गाँव का पटवारी रखता था इसप्रकार वित्त-सम्बन्धी अधिकारी गांव से केन्द्र तक एक दूसरे से सम्बन्धित थे । इन अधिकारियों को दिये गये निर्देशों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुगल आर्थिक प्रशासन में प्रत्येक बात का बारीकी से ध्यान रखा जाता था । अबुल फजल इस प्रबन्ध की तारीफ करते हुए लिखता है कि लेखा विधि की उचित व्यवस्था से साम्राज्य की सम्पन्नता में वृद्धि हुयी, खजाने भर गये, सेना का विकास हुआ और सिर उठाने वाले विद्रोहियों का दमन हो गया[2] । लेखाविधि के सिद्धान्त का ज्ञान मुगल अधिकारियों को था ।

1- आईन-ए-अकबरी, ब्लाकमैन भाग-1, पृ0 14 - जे0 एन0 सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 182-86, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 139,
2- आईन-ए-अकबरी, ब्लाकमैन भाग-1, पृ0 14, आई0 एच0 कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 159, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 139-140 ।

भूमिकर -

सम्राट को राज्य की समस्त भूमि का वैधानिक अधिकारी माना जाता था। किसान को उसके खेत से पृथक नहीं किया जाता था जो किसान जागीरदारों के अधीन होते थें वे राजनियमों के अनुसार अपना कर जागीरदार को देते थे । जो भूमि सम्राट के सीधे नियन्त्रण में होती थी उसे 'खालसा' कहते थे । राज्य के वैतनिक कर्मचारियों को वहाँ से कर वसूलने का काम दिया जाता था । खालसा क्षेत्र के किसानों के करों तथा जागीरदारी में पहले अन्तर रहता था किन्तु अकबर के समय से यह अन्तर समाप्त हो गया । इन दो प्रकार की भूमियों से प्रायः उपज का $\frac{1}{3}$ से लेकर $\frac{1}{2}$ तक कर लिया जा रहा था । इसके अतिरिक्त कुछ भूमि धार्मिक नेताओं, सन्तों, विद्वानों के गुजारे अथवा धार्मिक संस्थाओं की रक्षा के लिए बिना लगान के दे दी जाती थी । इसे सयूरगाल कहते थे। कुछ भूमि ऐसी भी थी जिससे प्राचीन परम्परा, के अनुसार उपज का केवल $\frac{1}{10}$ या $\frac{1}{20}$ कर लिया जाता था ।

व्यय -

आय के अनुसार व्यय भी अधिक था । अकबर ने अपनी मृत्यु के समय लगभग 35 करोड़ रूपया विभिन्न खजानों में छोड़ा था । सम्राट औरंगजेब को भी अपनी सामान्य आय से सारा व्यय चलाने में कठिनाई होती थी किन्तु नादिरशाह के आक्रमण के समय तक शाही खजाने पूरे तौर से खाली नहीं हुए थे। मुगल साम्राज्य की संस्थाओं को बजट तथा खर्च के लिए तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है: शाही परिवार, प्रशासन, तथा सेना[1] । सम्राट तथा शाही प्रतिष्ठान का खर्च बहुत अधिक था । इसमें कई छोटे-छोटे विभाग थे । इन्ही विभागों के द्वारा भिन्न-भिन्न कार्यो का अलग-अलग बजट बनता था तथा उसके खर्चे अथवा व्यय का हिसाब-किताब सम्बन्धित विभाग रखता था । इसमें आबदारखाना, वस्त्रालय "तोशकखाना" बावर्चीखाना, इत्यादि महत्वपूर्ण विभाग थे । हरम पर विशाल धनराशि खर्च होती थी[2] । हरम में पाँच हजार से अधिक महिलाएं अकबर के समय में रहती थी । औरंगजेब के काल में केवल हरम के कर्मचारियों की संख्या दो हजार से अधिक थी ।

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 140 ।

2- एल0पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 376 ।

हरम की महिलाओं हेतु वर्ष के प्रारंभ में एक बजट तैयार किया जाता था जो उनके निजी खर्च से सम्बन्धित था । उन्हें एक निश्चित मासिक धन दिया जाता था जिससे वे अपना निजी खर्च कर सके । शाही भोजनालय से ही हरम की महिलाओं को भोजन मिलता था । सर्वोच्च महिला अपने खर्च हेतु 1028 से 1610 रूपये प्रतिमाह अकबर के शासनकाल में वेतन प्राप्त करती थी । दो प्रकार की निम्नतम सेविकाएं थी । कुछ का वेतन 51 रूपये से 20 रूपये तक तथा अन्य का 40 से 2 रूपये तक था । औरंगजेब के काल में इनका वेतन कमशः 500/- से 300/- तथा 200/- से 50/- रूपया हो गया था[1]। दावतों तथा अच्छे भोजन के खर्च का बजट वर्ष के प्रारम्भ में ही तैयार कर लिया जाता था और प्रत्येक माह का खर्च उसी के आधार पर विभाजित कर दिया जाता था । शाही भोजनालय में आने वाली वस्तुओं को मीर बकावल तथा मुशरिफ निश्चित करते थे । दीवान-ए-ब्यूतात तथा मीर बकावल द्वारा भोजनालय की आवश्यकता का सामान प्रत्येक फसल पर एकत्रित कर लिया जाता था जिससे वह किसी समय भी उपलब्ध हो सके । शाही भोजनालय पर बहुत धन खर्च होता था । मनूची के अनुसार औरंगजेब के समय जब खर्च कम कर दिये गये थे तो शाही भोजनालय पर एक हजार रूपया प्रतिदिन खर्च होता था[2]।

सम्राट से सम्बन्धित अन्य विभागों जैसे वस्त्रालय, तोशकखाना, आबदारखाना, पेयजल विभाग, फर्राशखाना, शाही पड़ावखाना, शाही परिवार के बच्चों के विद्यालय, शाही पुस्तकालय, शाही सवारियों का विभाग, शाही नक्कारखाना, फैशन की वस्तुओं का बाजार, शाही कारखाने इत्यादि विभागों के सामानों के खरीदने तथा उनके कर्मचारियों के वेतन में बहुत धन खर्च होता था ।

साहित्यकारों एवं कलाकारों को दिया जाने वाला पारितोषक, या असहायों को दी जाने वाली सहायता में धन इन विभागों के अतिरिक्त व्यय होता था। औरंगजेब ने इस मद में होने वाले व्यय में कमी कर दिया । मुगल सम्राट सड़कों, नहरो, एवं भवनों तथा सार्वजनिक निर्माण के कार्यो में भी धन खर्च करते थे। अकबर तथा शाहजहाँ[3] के शासनकाल में भवन निर्माण में अत्यधिक धन

- एम0 ए0 अन्सारी, सोशल लाइफ आफ दि मुगल एंपरर्स, पृ0 69,
- मनूची, स्टोरिया डू मोगोर, भाग-2, पृष्ठ 332, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 141,
- रायभारमल, लुब्बुत-तवारीख-ए-हिन्द - ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 121,

व्यय हुआ । औरंगजेब ने वास्तुकला में रूचि नही दिखायी । अत: उसने इस मद में व्यय नहीं किया । जो व्यय किया वह नगण्य ही रहा ।

सर्वाधिक व्यय प्रशासन पर होता था । इसमें राज्य के समस्त अधिकारियों और कर्मचारियों का वेतन सम्मिलित था । सैनिक एवं नागरिक सेवाओं के अधिकारियों में मुगलकाल में भेद नहीं था । सभी महत्वपूर्ण प्रशासकीय अधिकारी मनसबदार होते थे । सैनिक सेवा मन्त्रियों तथा प्रशासकीय अधिकारियों को भी करनी पड़ती थी । विभिन्न श्रेणियों के मनसबदार प्रशासकीय कार्य में जब तक कार्यरत रहते थे तब तक वे मनसबदारों की सूची के अनुसार ही वेतन पाते थे जिन्हें सैनिक सेवा नहीं करनी पड़ती थी ऐसे कर्मचारी भी प्रशासन में थे । इनमें न्याय से सम्बन्धित अधिकारी काजी, मुफ्ती, इत्यादि लगान सम्बन्धी कार्य करने वाले जैसे कानूनगो, अमीन, चौधरी इत्यादि आते थे। लिपिक, मुन्शी, खजान्ची, इत्यादि को सैनिक कार्य राजधानी, प्रान्तों जिलों, तथा परगनों में नहीं करना पड़ता था[1]।

प्रशासनिक कर्मचारियों को वेतन नकद या उतनी आय के बराबर की जागीर द्वारा दिया जाता था । अमीर या जागीरदार जिस जागीर की भूमि से सम्बन्धित होते थे उसी जागीर की भूमि की मालगुजारी वसूल करते थे यदि वेतन से अधिक जमीन की मालगुजारी होती थी तो अतिरिक्त धन जागीरदार खजाने में जमा कर देता था । महत्वपूर्ण अधिकारियों को वेतन के एवज में भूमि प्राप्त थी । साधारणतया छोटे कर्मचारियों को नकद वेतन दिया जाता था इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कर्मचारी थे जो भू-राजस्व वसूल करते थे जिन्हें भूमि के अतिरिक्त वसूल की गयी धनराशि में से कमीशन, बट्टा, या दलाली भी मिलती थी । इसमें महत्वपूर्ण पटवारी, कानूनगो, तथा चौधरी थे । विद्वान सन्त तथा शरीर से लाचार व्यक्तियों को मदद-ए-माश की भूमि दिया जाता था । स्थायी सेना के सैनिको तथा शासन के अन्य निम्न कर्मचारियों, पैदल सेना के सिपाही, बन्दूकची, पालकी ढोने वाले इत्यादि को वेतन नकद मिलता था । पैदल सैनिकों के अन्तर्गत प्रथम श्रेणी वाले को 500/- दाम द्वितीय को 400/- दाम, तृतीय को 300/- दाम तथा चतुर्थ को 240/- दाम प्रतिमाह दिया जाता था[2] । विद्वान तथा धार्मिक लोगों को भी कभी-कभी नकद भत्ता दिया जाता था । यदि वह प्रतिदिन के हिसाब से

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृष्ठ 270,
2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 142

दिया जाता तो उसे ''रोजीना'' कहा जाता था और अधिक समय के लिए दिया जाता तो ''वजीफा'' कहा जाता था ।

सेना पर अत्यधिक व्यय किया जाता था । सेना हेतु अस्त्र-शस्त्र गोला बारूद, साज सज्जा, घोड़े हाथी अन्य जानवर तथा इससे सम्बन्धित अन्य बहुत से खर्च थे । शाही खजाने से स्थायी सेना का खर्च वहन किया जाता था । अपनी सेना पर मनसबदार स्वयं खर्च करते थे । उन्हें राज्य मे अस्त्र-शस्त्र कभी-कभी ऋण के रूप में प्राप्त होते थे जिसका मूल्य उनके वेतन से काट लिया जाता था। घोड़ो और हाथियों पर भी अत्यधिक व्यय किया जाता था । अबुल फजल के अनुसार प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत अरबी घोड़े को माना जाता था । 720 दाम एक घोड़े पर प्रतिमाह खर्च किया जाता था । छः सेर दाना उसे रोज दिया जाता था। 12 दाम उसकी कीमत थी । प्रथम श्रेणी के हाथी पर प्रतिदिन 1,320 दाम (33 रूपये) रोज खर्च किये जाते थे । अहदी सैनिक को अच्छा वेतन दिया जाता था। अहदियों में कुछ का वेतन 500 रूपये प्रतिमाह था[1] । इन आकड़ों से सेना के खर्च का अनुमान लगाया जा सकता है ।

मुगल साम्राज्य का आय-व्यय तथा बचत -

पूर्ण राजस्व कितना था, उसमें व्यय कितना होता था तथा बचत कितनी थी इसके सही आँकड़े उपलब्ध नहीं है। शाहजहाँ के काल का राजस्व 8,890,000,000 दाम तथा औरंगजेब के काल में 13,599,963,822, दाम थी[2] । सम्राट द्वारा उपहार में प्राप्त धन का मूल्यांकन सम्भव नहीं है।

1- आईन-ए-अकबरी, पृ0 233-37, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 142-143,

2-आई0 एच0 कुरैशी. दि एडमिन्स्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 155, समकालीन इतिहासकारों के आकड़ो में भिन्नता है बर्नियर ने औरंगजेब के बीस प्रान्तों का भू-राजस्व 22,59,35,5000, रूपया बर्नियर, पृ0 454-458, सुजान राय ने औरंगजेब के शासनकाल के प्रथम दस वर्षो की आय 3868,16,594 रूपया अंकित किया है. फारूकी. औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स. पृ0 468-70. एस0 आर0 शर्मा. मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 66-67, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 143 ।

सभी विभागों में मुगलकाल में अलग-अलग कितना खर्च होता था इसका सही-सही ज्ञान नहीं है किन्तु मुगल सम्राटों ने अपार धन एकत्र कर लिया था। इस बात में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है । चार करोड़ पाउण्ड से अधिक अकबर छोड़कर मरा था । (आगरा का कोष ही दो करोड़ पाउण्ड नकद था[1]) शाहजहाँ ने अपार धन खर्च करके अपना वैभव बढ़ाया । औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात जब शासन की कमजोरी के कारण आमदनी भी कम होती जा रही थी उस समय उत्तराधिकार तथा युद्ध में धन की जो बर्बादी हुई तथा नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जितना धन लूटकर ले गये उससे महान मुगल सम्राटों द्वारा एकत्रित सम्पत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है । अब्दाली ने मुगलानी बेगम की सहायता से भी अमीरों के गुप्त कोषो को लूटकर धन प्राप्त किया था । इस विशाल आय के खर्च की प्रधान मदें निम्नलिखित थी ।

1-अमीरों, दरबारियों, मनसबदारों काजियों तथा अन्य राजकर्मचारियों का वेतन ।
2-सेना का खर्च तथा विजय-कार्य में व्यय ।
3-राजमहल तथा राजदरबार का व्यय ।
4-सम्राट द्वारा दिये जाने वाले पारितोषिक भेंटे आदि ।
5-सरकारी इमारतों दुर्गो मस्जिदों मकबरों आदि पर व्यय ।
6-सरकारी कारखानो के लिए कच्चे माल का मूल्य ।
7-सड़को, पुलों, सरायों, नहरों आदि के निर्माण उनको ठीक दशा में रखने की लागत

भूराजस्व व्यवस्था -

मध्ययुगीन शासन के आर्थिक संगठन का मेरूदण्ड भूमि[2] कर था । उसी से सबको आय होती थी और उसकी सफलता व असफलता पर उनकी लोकप्रियता निर्भर थी । इसी कारण सभी योग्य शासकों ने भूमि कर की व्यवस्था सुदृढ़ करने का प्रयास किया[3] । मुगलशासकों में अकबर ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया । 1673 एवं 1682 के फरमानो से भू-राजस्व के बारे में काफी प्रकाश

1- स्मिथ, अकबर दी ग्रेट, पृ0 347, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 143,

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 490,

3- इरफान हबीब ने 1600 ई0 एवं 1900 ई0 के कृषि क्षेत्र या आराजी का निर्धारण करने का प्रयास किया है जो बहुत स्पष्ट नहीं है, तपनरायचौधरी एवं इरफान हबीब, कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 163-165 ।

पड़ता है । भूमि के स्वामित्व के सन्दर्भ में "मुकस्सम" और मुवज्जफ[1] शब्दों को प्रयुक्त किया गया है । मुकस्सम के अनुसार केवल खेतों को जोतने पर ही लगान देना पड़ता था । मुवज्जफ के अनुसार खेती की जाय अथवा नहीं, किन्तु निश्चित लगान देना पड़ता था । फरमान में भी यही वर्गीकरण हुआ है । मुवज्जफ इकरारनामें का एक रूप है अतः इसके अनुसार जमीन के उपयोग हेतु एक निर्धारित राशि चुका दी जाती थी । शासन का सम्बन्ध किसी भी फसल के बोने या उसकी उपज से नहीं था । मुकस्सम के अन्तर्गत[2] हिस्से बाँट कर "बटाई" या नाप प्रणाली द्वारा लगान का भुगतान होता था यह तरीका उन सभी जगहो के लिए निर्धारित किया गया जो मौसमी उपज पर निर्भर था । औरंगजेब द्वारा दीवान को आदेश दिया गया कि वे समय-समय पर इससे (ठेकेदारी[3]) पैदा होने वाली कठिनाइयों को दूर करें । इस आदेश से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन प्रशासन किसानों के भूमि को अपने अधिकार में रखने तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बेंच सकने के अधिकार को मान्यता देता था[4] । ठेकेदार के मरने पर उसके पुत्र को उसका ठेका उत्तराधिकार के रूप में मिल जाता था तथा वह उस भूमि पर अपने स्वामित्व को बंधक रख सकता था । किसी अन्य को ठेके पर दे सकता था या बेंच सकता था । आदेश में ऐसी कोई बात तो नही आती, जो प्रत्यक्ष रूप से यह सिद्ध कर दे कि व्यक्तिगत रूप से किसानो को भी उस भूमि पर स्वामित्व उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त था परन्तु उस आदेश में एक बात ऐसी है जो अप्रत्यक्ष रूप से यह सिद्ध कर देती है कि किसान जिस भूमि की लगान देता था, वह भूमि उसकी मृत्यु के पश्चात स्वतः उसके पुत्र को मिल जाती थी । हाशिम के फरमान में यह कहा गया है कि यदि कोई उत्तराधिकारी शेष न रह गया हो तो वह भूमि बेंच दी जाय या किसी अन्य को दे दी जाय । इसी आदेश में परोक्ष रूप से इस बात का भी संकेत है कि भूमि बेंची भी जा सकती थी । दोनो ही फरमानों में बेदखली के नियमों का समावेश नहीं किया गया है । प्रथम फरमान के अन्तर्गत सर्वाधिक जोर लगान वसूली पर दिया गया है किन्तु इस सन्दर्भ में कोई नियम नहीं दिया गया है कि यदि किसान लगान न दे तो क्या करना होगा ।

1- डब्लू० एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ० 185, एस० आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 390,

2- डब्लू एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ० 185,

3- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ० 173, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ० 662,

4- डब्लू० एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यस्था, पृ० 187

यह बहुत असम्भव सा लगता है कि सम्राट किसानों तथा दूसरे श्रोतों से अधिक से अधिक वसूल करना ही अपना लक्ष्य बना चुका हो । उस शासन में सम्राट का हक न देने वाले के लिए कोई नियम ही न हो इसलिए ऐसा सोचा जा सकता है कि कर्मचारियों को ऐसे मामलों में कुछ न कुछ करने का अधिकार अवश्य रहा होगा, किन्तु उसे फरमानों में जगह नहीं दी गयी क्योंकि खेतिहरों के अभाव की स्थिति में ऐसे नियमों का कोई महत्व ही नहीं होता । किसानों की कमी रहने से भूमि की मॉंग वैसे भी कम हो जाती है उस पर कठोर नियम उस मांग को और भी कम बना देते हैं[1]।

औरंगजेब द्वारा दिये गये आदेश में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि लगान न देने पर किसानों के आश्रित पारिवारिक सदस्यों को बेंच दिया जाय, किन्तु बहुत से इतिहासकारों जैसे बदायूँनी, पेल्सर्ट, बर्नियर, और मॉंनरिक की कृतियों[2] से हमें यह संकेत मिलता है कि स्थानीय कर्मचारी इस तरीके का प्रयोग खुले तौर पर करते थे । इन आदेशों में तत्सम्बन्धी उन सारी कार्यवाहियों का विवरण जो सामान्य अवस्था में तथा आपत्तिकालीन अवस्था में व्यवहार में लायी जाती थी नहीं दिया गया है । उचित धारणा तो यह है कि इन आदेशों में उसी सम्बन्ध के नियमों को स्थान दिया गया है जिन पर नियम बनाने की अत्यधिक आवश्यकता थी । सम्भवत: लगान न दे सकने वालों के लिए नियम बनाने की आवश्यकता या तो इसलिए न पड़ी हो कि ऐसे मामले ही नहीं थे या इस कारण कि ऐसी स्थिति में परम्परा का ही पालन होता रहा हो ।

इस फरमान में ध्यान देने योग्य नियम यह है कि जो इस प्रकार के ठेकेदारों के अवशिष्ट अधिकारों की व्याख्या करता है, जिन्होंने कुछ भू-भाग को ठेके पर ले तो लिया, किन्तु उसे जोत न सके या अन्य किसी कारण से पलायन कर गये । हाशिम के फरमान में इस बात की स्पष्टता है कि ऐसी स्थिति में उस ठेकेदार का स्वामित्व उस भूमि पर बना रहेगा किन्तु कर्मचारी को चाहिए कि उसकी

1- डब्लू० एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम-भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ० 188, एस० आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 390.

2- बदायूँनी भाग-2, पृ० 189, पेल्सर्ट 47, बर्नियर 205, मॉंनरिक भाग-1 - डब्लू० एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ० 188.

अनुपस्थिति की अवधि में उस भूमि का प्रबन्ध किसी दूसरे किसान के साथ कर दें और ज्यों ही वह ठेकेदार लौटे या वह इस योग्य हो जाय कि वह अपने ठेके में प्राप्त खेत को जोत सके तो उसकी भूमि उसको मिल जानी चाहिए । यदि उस भूमि की आय ठेके में उल्लिखित आय से अधिक हुई तो वह अतिरिक्त धनराशि ठेकेदार को दे दी जाती थी । यह अपने ढंग का प्रथम प्रमाण है जो मालिकाना शब्द के अर्थ में समीप पहुँचता है जिसके अनुसार भूमि न जोतने पर स्वामित्व को धक्का नहीं पहुँचता था ।

यदि यह मान भी लिया जाय कि ठेकेदारी की व्यवस्था उस समय पूर्ववत् थी तो यह कहना पड़ेगा कि उपरोक्त आदेशों नें भारतीय ग्रामीण-व्यवस्था में किसी महत्वपूर्ण नवीनता को जन्म नहीं दिया । निःसन्देह काजियों द्वारा दिये गये फतवों में आये हुए नियमो का विस्तृत वर्णन अति आवश्यक है जैसे- स्थनान्तरण की दशा में लगान का बँटवारा करने के नियम, अंगूर तथा बादामों के खेतों पर लगान[1] निर्धारण के नियम, मुसलमानों द्वारा उश्री भूमि के अतिरिक्त अन्य भूमि पर दी जाने वाले लगान के नियम, कब्रिस्तानों या मकबरों को दी गयी भूमि पर लगान-मुक्ति के नियम । इन नियमों को भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में बिना किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन के लागू किया जा सकता था क्योंकि मुस्लिम शासन में धीरे-धीरे इस व्यवस्था का विकास हो चुका था ।

औरंगजेब के फरमानों[2] के सम्बन्ध में एक और बात विवेचनशील है। इन फरमानों में इस बात पर अत्यधिक जोर दिया गया है कि पुराने किसान हाथ से जाने न पाये । इसके साथ ही नये-नये किसान भी प्राप्त किये जांय । अकबर के भी नियमों का यही उद्देश्य था उसने भी अपने मुहस्सिलों को यही आदेश दिया था कि वे इस बात के लिए हर सम्भव प्रयत्न करें कि किसानों को अधिक से अधिक भूमि जोतने का उत्साह मिलें । उसने भी खेतों को छोड़कर भाग जाने वाले किसानों के लिए कोई नियम नहीं बनाया । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के शासनकाल तक इस प्रकार भाग जाने वाले किसानों की समस्या ने गम्भीर रूप नहीं ग्रहण किया था किन्तु औरंगजेब के शासन काल में इस समस्या ने इतना

1- डब्लू० एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम-भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ० 189 ।
एस० आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 390-391 ।

2- डब्लू० एच० मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ० 189-190

गम्भीर रूप धारण कर लिया था कि प्रशासन के सामने इस समस्या के कारण उलझने आने लग गयी थी ।

प्रत्येक किसान की भूमि का व्यौरा पटवारी रखता था जो हर गाँव में नियुक्त किया जाता था । जो गुजरात में तलाती व महाराष्ट्र में कुलकर्णी के नाम से जाना जाता था । सामान्यतः उसे कुछ धन दे दिया जाता था न कि निर्धारित वेतन उसे प्राप्त होता था । पटवारी का कार्य था खेतों की उपज, भू-राजस्व इत्यादि का व्यौरा रखना[1]। अधिकांशतः पटवारी ही भू-राजस्व वसूल होने पर किसानों को रसीद देता था । पटवारी जिस पर ब्यौरा तैयार करता था उसका विवरण अन्य बड़े अधिकारियों को देता था और प्रमाण के रूप में गाँव के मुखिया द्वारा उसकी सत्यता हेतु हस्ताक्षर भी करवाता था।

एक दूसरा कर्मचारी मुखिया होता था इसे भी स्थायी वेतन प्राप्त न था। इसको पटेल, मुकद्दम, देशमुख, कहा जाता था । इसके द्वारा गाँव की जनता का प्रतिनिध्त्वि किया जाता था । सरकार व किसानों के मध्य इसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी । करों को वसूल करने में पूर्ण सहयोग करता था । जागीरदार[2] व खालसा के अधिकारियों द्वारा कभी-कभी गाँव से कर वसूल करने हेतु जिम्मेदारी सौंप देते थें और कर वसूल करके ये आमिलों को सौंप देते थे । खानदेश में मुखिया का सरकार से सीध्रे सम्पर्क होने के कारण ये अध्रिक महत्वपूर्ण था और इसी के द्वारा कर निर्धारण व वसूली दोनों सम्पन्न होती थी ।

परगना उसे कहते थे जिसमें कई गाँवों का संयोजन होता था । इसके अन्तर्गत वंशानुगत अवैतनिक कर्मचारी होता था । जिसे कानूनगो कहा जाता था । यह परगने की उपज व आय का विवरण रखता था । इनके पास अत्यधिक कीमती वस्तुएं होती थी । कुछ कानूनगो अत्यधिक योग्य होते थे । इनको तीन भागों में विभक्त किया गया इनको 50 से 20 रूपये महीने पर नियुक्त किया गया[3] ।

- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ0 192-193, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 274, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 114-115,
- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृष्ठ 391,
- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृष्ठ 501-502,

स्थाई वेतन प्राप्त करने वाले अधिकारियों में परगने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकारी आमिल था। यह भी कर्मचारियों को नियन्त्रण में रखता था । लगान की वसूली करने की व्यवस्था, उसको स्थिरता प्रदान करना, आय-व्यय का ब्यौरा प्रति महीने बड़े अधिकारियों के पास भेजने, यदि दो लाख दाम एकत्र हो जाता था तो उसे सीधे केन्द्र में भेजने की व्यवस्था आदि करता था । वह सभी धन सरकार के अमलगुजार के पास प्रेषित करता था । अमलगुजार द्वारा प्रान्तीय दीवान तथा प्रान्तीय दीवान द्वारा केन्द्र भेजा जाता था आमिलों का मुख्य कार्य किसानों को खुश रखने के साथ-साथ उन्हें उन्नति हेतु उत्साहवर्धन करना एवं बंजर भूमि को जोतने हेतु ऋण प्रदान करना था । आमीलों को इतना धन मिलता था कि वह घूस लेते हुये अपने कार्य को कर सकता था । इसका वेतन अधिक रहता था । प्रान्तीय दीवान[1] सूबेदार का प्रतिद्वन्दी था दोनों को एक-दूसरे की कड़ी निगरानी करनी पड़ती थी।

आमतौर पर शाही दीवान की संस्तुति पर प्रान्तीय दीवान की नियुक्ति सम्राट करता था । वह सीधे उसी के आदेशों पर कार्य करता था तथा उसी को रिपोर्ट भेजता था । नये दीवान को विदा करते समय उच्च दीवान खेती को बढ़ाने और अमीन क निमित्त केवल ईमानदार व्यक्ति को चुनने के लिए उसे प्रेरित करता था । उसे अपने पास अवशिष्ट रोकड़ के लेखों के साथ-साथ सूबे की घटनाओं के सम्बन्ध में प्रति मास दो बार उच्च दीवान के यहाँ विवरण भी प्रस्तुत करना पड़ता था । बिना दण्ड दिये और कठोरता का व्यवहार किये ही प्रजा को स्वतः सरकारी देयों का भुगतान करने के लिए प्रेरित करने वाले व्यवहार कुशल व्यक्तियों को कलेक्टर (करोड़ी और तहसीलदार) नियुक्त करने के हेतु प्रयास किया जाता था ।

प्रान्तीय दीवान की सनद (नियुक्ति पत्र) में उसके कर्तब्यों का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में इस प्रकार है[2] :-

"ग्रामों में निवास करने तथा कृषि कार्य करने का प्रसार करो । राजकीय कोष के प्रति सजग रहो जिससे कोई भी व्यक्ति बिना उचित प्रमाण के उससे रूपया

1- प्रान्तीय दीवान- वजीर की मुहर लगी हुयी एक सनद तथा उसके द्वारा लिखित बादशाह के हस्बुल हुक्म से प्रान्तीय दीवान की नियुक्ति होती थी । मीराते अहमदी, सप्लीमेन्ट, पृष्ठ 173 । जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृष्ठ 45-46 ।
2- जे0 एन0 सरकार, मुगलशासन पद्धति, पृ0 47-48 ।

न निकाल सके । फोतदार की तिजोरियों तथा दूसरे साधनों से जब कोष में धन जमा हो जाय तो उनके अभिकर्ताओं को प्राप्ति की रसीद दें दो । यह ध्यान रखो कि कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी भी प्रकार की निषिद्ध चुंगी वसूल न करें''

''प्रत्येक कृषि सत्र के अन्त में मौलिक कागजों के आधार पर आमिलों के धन-अपहरण तथा बलपूर्वक वसूल की तारीख का ठीक पता लगा लो और इस मद में उन्हें जो कुछ भी देय हो, उसे राजकीय-कोष के लिए वसूल करो । शासन अर्थात उच्च दीवान से बेइमान से बेइमान अथवा बुरे आमिलों की निन्दा करो जिससे उनके स्थान पर उनसे अच्छे व्यक्ति नियुक्त किये जा सकें'' ।

''यदि किसी आमिल ने कई वर्षो की मालगुजारी बकाया छोड़ रखी है तो देय धन को सम्बन्धित गाँवों से पाँच प्रतिशत प्रति सत्र की दर से सुविधाजनक किश्तों में वसूल करो'' ।

''शासन द्वारा गत वर्ष दिये हुए तकावी ऋण[1] को वर्तमान वर्ष के प्रथम सत्र में वसूल करना चाहिए । यदि वे उसका भुगतान न करेंगे अथवा उसका भुगतान करने में देर केरंगे तो शासन दीवान और जमीन को उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए विवश करेगा'' ।

''नियमानुकूल अपने विभाग के कागजों को राजकीय-अभिलेख कार्यालय में भेज दो'' ।

कारकून आमिल के अधीन रहकर कार्य करते थे ये गाँव में जाकर निरीक्षण करने के साथ ही खेतों को नापने व उनका हिसाब लिखने का कार्य करते थे । परगने में खजान्ची भी नियुक्त किया जाता था । इसके द्वारा किसानों को असह्य पीड़ा झेलनी पड़ती थी ।

अधिकारियों को अपने कर्तब्य के प्रति निष्ठा व सहृदयता किसानों के लिए बहुत आवश्यक थी । इससे किसान राहत महसूस करते थे । एक प्रकार से कृषक इनकी कृपा पर निर्भर थे । अधिकारियो व कर्मचारियों के प्रति सम्राट ने सतर्कता के साथ उन पर कड़ी दृष्टि रखी । साथ ही अपने गुप्तच्चर संस्था को सशक्त

1-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 457-58,

किया। सम्राट ऐसे नियम बनाते थे जिससे किसान प्रसन्नतापूर्वक रहे। सम्राट द्वारा यह भी प्रयास किया गया कि कर्मचारी किसानों से दुर्व्यवहार न करें और न ही रिश्वत ले सकें यदि कोई किसान नगद लगान देने में असमर्थ था तो उस समय उसके लिए अन्य व्यवस्था की जाती थी । फसल नष्ट हो जाने व अकाल पड़ने की स्थिति में किसानों को लगान माफ कर दिया जाता था और उन्हें जीवन निर्वहन हेतु तथा खेती करने के लिए सम्राट द्वारा सहायता रूप ऋण प्रदान किया जाता था। कुछ स्थानों पर कर्मचारीगण यदि किसान के साथ मनमाना व्यवहार करते थे या उनसे निर्धारित लगान दर से अधिक वसूल करते थे, एवं फसल नष्ट होने पर भी लगान लेते थे, यदि ऐसे तथ्य की जानकारी सम्राट को हो जाती थी तो सम्राट उन कर्मचारियों को दण्ड भी देता था सम्राट अपनी प्रजा को न्याय प्रदान करने एवं जनता के हित में चिन्तन करने से विरत नहीं रहता था[1] । सम्राट सदैव इस प्रयास में रहता था कि किसानों को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये, साथ ही उन्हें पर्याप्त साधन मिले जिससे खेती को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे । इससे किसानों को अच्छी तरह फसल बोने की प्रेरणा मिलती थी इससे राज्य की आय में वृद्धि होती थी और आर्थिक स्थिति भी मजबूत होती थी जिससे शासन समृद्धिशाली, वैभवशाली व स्थिर होता था ।

मुगल भू-राजस्व व्यवस्था अकबर के काल से सुसंगठित हुई । इसकी कई प्रमुख विशेषताएं थी[2] । भूमि वर्गीकरण, उसकी पैमाइश, दर का निर्धारण तथा सामयिक व्यवस्थाएं, मुगल काल में किसानों से भू-राजस्व नकद व अनाज दोनों रूपों में लिया जाता था । कृषक अपनी सुविधानुसार नकद या उपज में कर चुकाता था । भू-राजस्व के निर्धारण के लिए गल्लाबख्शी, जब्ती, एवं नस्क की विधियाँ प्रचलित थी । गल्लाबख्शी, के अन्तर्गत भू-राजस्व निश्चित नहीं था । प्राय: खेती हो जाने के पश्चात ही कर निर्धारित कर दिया जाता था । इसके अन्तर्गत खेत बँटाई, रास बटाई या लंक बटाई की विधियाँ थी । जब्ती प्रथा को अकबर के शासनकाल में अधिक अपनाया गया था । इसमें प्रारम्भ के दस वर्षो के औसत उत्पादन एवं औसत मूल्य के आधार पर भू-राजस्व का नकद तय होता था । किसान के उपज पर आधारित प्रथा नस्क प्रणाली थी । जो नये सूबे अधिग्रहीत किये जाते थे वहाँ प्राय: नस्क प्रणाली ही लागू की जाती थी।

1-रूक्कात-ए-आलमगीरी, अनुवादक जे0 एच0 विलिमोरिया पृ0 29, उदघृत बर्नियर का कथन,

2- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 458,

औरंगजेब के काल में भू-राजस्व व्यवस्था कतिपय सामयिक संशोधनों एवं समस्याओं से इतनी बदल गयी थी कि उसकी तुलना अकबरकालीन व्यवस्था से करने पर यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरता है कि मुगलों का आर्थिक श्रोत सूखना प्रारम्भ हो गया था । इसका बुरा प्रभाव साम्राज्य पर पड़ने लगा था । मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों में आर्थिक कारणों को प्रमुखता दी जाती है ।

भूमि के प्रमुखतः दो वर्ग थे - खिराजी भूमि, व गैर खिराजी भूमि । यह एक विचारणीय बात है कि क्या औरंगजेब ने इस्लामी नीति के अनुसार ही भू-राजस्व लागू किया ? इस बात पर अली मुहम्मद खॉं ने "मीरात-ए-अहमदी" में प्रकाश डाला है । उसने लिखा है कि औरंगजेब ने गुजरात के दीवान मुहम्मद हाशिम को एक फरमान भेजा । इस फरमान में कहा गया है कि आर्थिक मामलों में इस्लामी कानून के सिद्धान्तों का पालन किया जाय[1] । इस फरमान के छठें अनुच्छेद[2] में कहा गया है कि "जिन स्थानों पर कृषि भूमि के खराज का निर्धारण नहीं हुआ है शरियत कानून के अनुसार राजस्व निर्धारित करों । खराज की राशि अधिक से अधिक उतना निर्धारित करो जिससे कृषक जमीन छोड़ने के लिए बाध्य न हो जॉंय । उपज के आधे से अधिक राजस्व न निश्चित किया जॉंय । जहॉं कर की राशि निश्चित है उसे स्वीकार करो बशर्ते की राज्य का हिस्सा उपज के आधे से अधिक न हो और ऐसा न हो की रैयत लगान से पंगु हो जायें । अन्य मामलों में खराज को उतना घटा दिया जाय जितना किसानों द्वारा आसानी से अदा कर दिया जायें" ।

गल्लाबख्सी (खिराज-ए-मुकसमा) के बारे में भी यह निर्देश लागू होते थे। उपर्युक्त फरमान के अनुच्छेद 16 में कहा गया है "यदि कोई आदमी हिन्दू हो या मुसलमान, खराजी जमीन का (मूल) स्वामी नहीं है किन्तु वह जमीन को खरीदने या गिरवी रखने के कारण जोत रहा है उसे उसकी फसल को लेने दिया जाय । उससे उतना वसूल करो जितना निर्धारित है यदि भू-राजस्व आधे से अधिक है तो उसे घटा दिया जाय यदि कम है तो बढ़ा दिया जायें[3] ।

1- अली मुहम्मद खॉं, मीरात-ए-अहमदी, पृ0 274,

2-एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 390,

3-अलीमुहम्मद खॉं, मीरात-ए-अहमदी, पृ0 272, जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 458

रसिकदास करोड़ी जो गुजरात का दीवान था को भेजे गये फरमान में भू-राजस्व की नीति पर प्रभाव पड़ता है । उनसे स्पष्ट होता है कि कृषकों की स्थिति कैसी थी तथा सरकारी कर्मचारी उनसे किस तरह पेश आते थे । इस फरमान के अनुसार किसानों को पूर्व की भाँति भू का स्वामी स्वीकृत किया गया है और उनकों भूमि को बेचने, उसे गिरवी रखने, व पट्टा देने का अधिकार दिया गया है। सम्राट चाहता था कि कृषक परिश्रम से खेती करे व खुश रहे जिससे वह उनसे अत्यधिक धन ले सके यदि किसानों के साथ उदारता का व्यवहार करने में राज्य की आय कम होने लगती थी तो वह उनके साथ कठोरता का व्यवहार करने के लिए आज्ञा देता था[1]। इन फरमानों से यह स्पष्ट होता है कि सामान्यत: भूराजस्व $\frac{1}{2}$ लिया जाता था किन्तु विशेष परिस्थिति में $\frac{1}{3}$ या $\frac{2}{5}$ भी लिया जाता था। अकाल व दुर्भिक्ष के समय किसानों को रियायत दी जाती थी या भू-राजस्व माफ कर दिया जाता था[1] । यह फरमान दीवान को बताता है कि किस तरह अपने अधीन कर्मचारियों जैसे अमीन, आमील या करोड़ी और खजान्ची पर नियन्त्रण रखना चाहिए । यहाँ करोड़ी से किसी पद नहीं बल्कि कर्तव्य विभाजन का अर्थ लगाना चाहिए । ऐसे कर्तव्य विभाजन प्राय: एक ही नाम के दो या अधिक अधिकारी होने पर प्रयोग किये जाते थे और सम्भवत: रसिकदास दीवानी पाने के पहले करोड़ी रह चुका था दूसरा फरमान पाने वाला व्यक्ति मुहम्मद हाशिम, प्रोफेसर सरकार के अनुसार गुजरात के सूबे का दीवान था[2] ।

इन दोनों फरमानों की नकलें मुहम्मद हाशिम एवं रसिकदास करोड़ी के नाम लिखी गयी है आम तौर पर इसे सभी जगहों पर लागू होने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है । सम्भवत: इसकी एक-एक प्रति सूबे के दीवानों के नाम भेजी गयी । प्रथम फरमान साम्राज्य के सुरक्षित क्षेत्रों तथा जागीरों में की गयी जाँच पर आधारित है जब कि द्वितीय फरमान मुख्यत: हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण साम्राज्य के लगान से सम्बन्धित सभी कर्मचारियों पर लागू होता है[3] । इन दोनो ही फरमानों की शब्दावली में अत्यधिक अन्तर है । प्रथम फरमान के अन्तर्गत अकबर के शासन काल के सरकारी शब्दों का प्रयोग है । द्वितीय फरमान इस्लामी कानून के शब्दों में स्पष्ट किया गया है ।

1-अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 505,

2-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ0 176,

3-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ0 176-177

प्रथम फरमान की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि यह पूर्णत: उचित तर्कसंगत व व्यवस्थित था । सुरक्षित क्षेत्रों (खालिसा) से जो आय प्राप्त होती थी वह सीधे केन्द्रीय कोष में जाती थी । भू-राजस्व का निर्धारण एवं उसकी वसूली दीवानों के द्वारा मुहकमा लगान करता था । हर जगह दीवान और उसके सहयोगी कर्मचारियों का वर्णन है । अमीन का मुख्य कार्य लगान निश्चित करना था । करोड़ी, ये वसूली का कार्य करते थे । खजान्ची ये वसूल किये हुये लगान का ब्यौरा रखते थे। प्रथम फरमान का मुख्य लक्ष्य स्थानीय कर्मचारियों पर दबाव बनाना था ।

जहीरूद्दीन फारूकी का विचार है कि औरंगजेब के समय भूराजस्व की दर उपज का 50 प्रतिशत नहीं थी । सामान्य नियम के रूप में उपज का एक तिहाई था एक चौथाई न्यूनतम दर थी और 50 प्रतिशत अधिकतम दर थी[1]। औरंगजेब ने निर्देश दिया था कि उतना लगान निर्धारित किया जाय जितना किसान आसानी से दे सके । लगान की दर एक तिहाई से बढ़ाकर 50 प्रतिशत नहीं की गयी बल्कि इस हेतु निर्देश दिया गया कि आधे से अधिक किसी भी दशा में न वसूल किया जाय । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वत्र 50 प्रतिशत की दर से ही लगान लिया जाता था । किसी-किसी क्षेत्र में 50 प्रतिशत लगान लिया गया। अकबर के समय भी कश्मीर में 50 प्रतिशत लगान लिया जाता था । जहीरूद्दीन फारूकी का विचार है[2] कि औरंगजेब के शासनकाल में भूराजस्व की दर स्थानीय विभिन्नताओं के कारण $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ तक हुआ करती थी । बर्नियर ने कृषकों एवं शिल्पियों पर किये जाने वाले अत्याचार का एवं इनके गरीबी का वर्णन किया है। बर्नियर ने लिखा है कि निजी सम्पत्ति का अधिकार साधारण लोगों के पास नहीं था । बर्नियर के निष्कर्ष [3] को यथावत नहीं स्वीकार किया जा सकता है । उसने यूरोपीय व्यवस्था से तुलना करते हुये एशियाई परिवेश को देखने का प्रयास किया। उसका एशियाई परिवेश के प्रति तिरस्कार पूर्ण भाव झलकता है। भारतीय कृषक आम तौर पर जब तक लगान देता रहता था उसे जमीन से बेदखल नहीं किया जाता था ।

1- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, दि कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 103, तथा 176, इरफान हबीब का विचार है कि वसूल किये गये राजस्व का कुछ भाग जमींदारों साहूकारों, मुखिया, या अन्य ऐसे लोगों को जिनका जमीन पर श्रेष्ठ स्वामित्व बनता था उनको मिलता था ।

2- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 459-460.

3-बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 215-18 ।

सन् 1670 ई0 के आस-पास कोलबर्ट नामक एक फ्रांसीसी के कहने पर बर्नियर ने मुगल सम्राज्य का सम्पूर्ण निरीक्षणात्मक रूप लेखबद्ध किया था । बर्नियर को जो कार्य सुपुर्द किया गया था वह उसके लिए निस्सन्देह योग्यतम व्यक्ति था । स्वयं किसान होने के कारण कृषक व ग्राम-व्यवस्था के प्रति रूचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था । उसने उस समय के भारत में जो समस्या थी उसका गहनतापूर्वक अध्ययन किया । वह एक शिक्षित एवं महान पर्यटक था । बर्नियर का भारत आगमन औरंगजेब के राज्यारोहण के वर्ष हुआ । भारत आगमन के पूर्व वह एशिया व यूरोप के अनेक देशों में भ्रमण करके महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर चुका था। बर्नियर ने 8 वर्ष तक वैद्य के रूप में औरंगजेब के दरबार को सुशोभित किया और औरंगजेब के दरबार के उच्च पदाधिकारियों के साथ घनिष्ठतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया । बर्नियर[1] ने तत्कालीन कृषको के बारे में अधिकारपूर्वक वर्णन किया है । बर्नियर ने देखा था कि कभी-कभी शोषण से उत्पीड़ित किसान खेत छोड़कर पलायन कर जाते थे । बर्नियर के अनुसार शासन इतना कठोर था कि उनको विवश होकर अपनी व अपने परिवार वालो के प्राण रक्षार्थ भागना पड़ता था । वास्तव में वे भागते नहीं थे भगाये जाते थे । उसके कथन के अनुसार सम्पूर्ण साम्राज्य की समग्र भूमि'' बड़े ही खराब ढंग से जोती बोयी जाती थी । उन पर बहुत ही कम आवादी थी । मनुष्यों के अभाव में बहुत अधिक उपजाऊ जमीन परती पड़ी हुई थी । जो थोड़े बहुत किसान व उनके मजदूर थे भी, उनके प्रति भी प्रान्तीय सूबेदारों का व्यवहार असह्य था । ये गरीब लोग यदि कभी सरकारी माँग को पूरा करने में असमर्थ हो जाते थें तो न केवल उनका जीवन साधन उनसे छीन जाता था वरन् उनके बीबी बच्चे भी उनसे छिन जाते थे तथा गुलाम बनाकर सुदूरस्थ प्रान्तों में या कभी-कभी विदेशों को भेज दिये जाते थे । इस प्रकार के अत्याचार जब असह्य हो जाते थे तो किसान अपने खेतों को छोड़कर शहरों की ओर चले जाते थे, जहाँ वे बोझा ढोने या पानी भरने या घुड़सवारों की साईसी का काम करने लगते थे । कभी-कभी वे भाग कर किसी हिन्दू राजा के देश में जा बसते थे, जहाँ पर उनसे अपेक्षाकृत अच्छा व्यवहार किया जाता था तथा जहाँ उनका जीवन-यापन अधिक सुख व सुविधापूर्ण होता था[2]।

बर्नियर के उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि शाही कर्मचारियों के अत्याचारों से किसान खेत छोड़कर कोई दूसरा व्यवसाय करने लगता था या अन्य

1-बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 205, इरफान हवीब, ऐग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, पृ0 336-337 ।

2-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम ग्रामीण व्यवस्था, पृष्ठ 193-194

ाज्य में जाकर बस जाता था जो राज्य मुगल प्रभाव से मुक्त था । बर्नियर द्वारा केये गये वर्णन को औरंगजेब द्वारा भेजे गये फरमान भूमिका में देखा जाय तो दोनों ही संगति बैठ जाती है । दोनों से ही स्पष्ट होता है कि उस समय किसानों पर लगान का बोझ अधिक था । लगान वसूलते समय कठोरता का व्यवहार किया जाता था अतः किसानों की लगताार कमी होती गयी इससे साम्राज्य को कठिनाई का अनुभव होने लगा[1] । औरंगजेब के समय तक आते-आते कृषकों पर प्रशासन का दमनपूर्ण प्रभाव इस तरह हो गया कि प्रशासन का सम्पूर्ण उद्देश्य ही असफल होने लगा। यही स्थिति सुरक्षित क्षेत्रों की भी थी। जागीरदारी व्यवस्था दोषपूर्ण हो गई।

औरंगजेब द्वारा जारी किये गये फरमानों से यह भी विदित होता है कि यदि कोई दीवान समर्थ, सशक्त, कुशल एवं सच्चा हो तो वह अपने क्षेत्र की उचित व्यवस्था करके राज्य व किसान दोनों की भलाई कर सकता था किन्तु ऐसा होता नहीं था क्योकि जागीरों की स्थानान्तरण होने की सम्भावना बनी रहती थी। इस लिए जागीरदार कृषकों या जागीर के हित में कोई ठोस कदम बहुत कम ही उठाते थे । वह इस बात से भली प्रकार अवगत था कि यदि इन सब के हित हेतु वह कोई योजना बनाएगा तो सम्भव है कि वह क्षेत्र उसके हाथ से निकल जाए । बर्नियर के अनुसार सम्पूर्ण साम्राज्य में एक भी ऐसा दीवान नहीं था जिसमें प्रशासन सम्बन्धी गुणों के साथ-साथ ईमानदारी भी हो । उसका कहना है कि सुरक्षित प्रदेश की कितनी ही भूमि सीरदारी पर उठी हुयी थी, दमनपूर्ण कारनामों के लिए उसकी दृष्टि में सीरदार कर्मचारी, जागीरदार ये सभी समान रूप से उत्तरदायी थे । यदि कोई ईमानदार था तो दूसरे के कारण विवश होकर उसकी अपनी ईमानदारी अपने ही पास रह जाती थी किसी काम की नही होती थी ।

जहाँ तक उत्तरी भारत के किसानों पर लगायी जाने वाली लगान निर्धारण व्यवस्था का प्रश्न है उसमें औरंगजेब के बाद से अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षो तक किसी भी प्रकार की परिवर्तन की सूचना नहीं है । ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ के वर्षो में उत्तरी भारत में जो व्यवस्था प्रचलित थी, उसका अधिकांश भाग सन् 1665 ई0 में औरंगजेब द्वारा जारी किये गये फरमानों के ही अनुरूप था । मनूची[2] ने भारतीय कृषकों के बारे में लिखा है कि यदि यहाँ के साधारण आदमी के पास चार रूपये रहते है वे अपने को शक्तिशाली समझते है और नौकरी

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृष्ठ 195,

2-मनूची, स्टोरिया डू मोगोर, जिल्द-2, पृ0 84-85 ।

नहीं करते । जब उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं रहता है तब वे नौकरी करते है । उसने आगे लिखा है कि भारत के लोग बिना दबाव पड़े करों का भुगतान नहीं करते। उनसे वसूली करने के लिए उनमें से किसी प्रमुख व्यक्ति को मिलाना आवश्यक होता है । किसानों की आदत है कि वे पैसा न होने का बहाना बनाकर कर की अदायगी नहीं करते । जब उनके विरूद्ध कड़ाई की जाती है तब वे थोड़ा-थोड़ा कर देने लगते है । स्वेच्छा से पूरा कर देने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। औरंगजेब के शासन काल में कृषकों से बहुत कड़ाई का व्यवहार किया गया[1]। मनूची के अनुसार - औरंगजेब के शासनकाल में अवध को छोड़कर शेष सभी प्रान्तों का भूराजस्व 38725930 करोड़ रूपये है । जगजीवनदास कृत मुन्तखब-उत-तवारीख के आधार पर विलियम इरविन ने 1707 ई0 में बहादुरशाह के समय तैयार किये गये आँकड़े का उल्लेख करते हुए लिखता है कि वार्षिक वसूली 18,99,34,863 रूपये थी । बर्नियर के अनुसार औरंगजेब के 21 प्रान्तों का भू-राजस्व 22,59,35,500 रूपये था[2] । औरंगजेब के शासन काल के नौवें वर्ष में तैयार बख्तावर खाँ कृत "आईन-ए-बख्त" में 19 सूबों के भू-राजस्व का आकड़ा 9247916082 दाम था जो कि 23 करोड़ 11 लाख 97 हजार 902 रूपये के बराबर था । बीजापुर और गोलकुंडा को छोड़कर शेष 19 सूबों के ये आकड़े है । इन सूबों के राजस्व को 8767000 हजार बताया गया है यदि इसे भी जोड़ दे तो कुल 21 सूबों[3] के आय 31 करोड़, 88 लाख, 67 हजार, 902 रूपये थी । यह राशि कुल भू-राजस्व का जो आँकड़ा जगजीवनदास ने दिया है अर्थात् 33,26,96,241 करोड़ उसके बहुत नजदीक पहुँचती है जगजीवनदास ने वास्तविक हासिल अर्थात् वसूली 19करोड़ रूपये बताया है जबकि औसत जमा अर्थात् अनुमानित भू-राजस्व 33,26,96,241 थी । भूराजस्व के निर्धारण में भूराजस्व की राशि में वृद्धि होने के पीछे एक कारण अकबर के समय की तुलना में भूराजस्व की दर में वृद्धि मानी जा सकती है किन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि औरंगजेब के समय सूबों की संख्या बढ़कर 21 हो गयी थी जिससे कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ गया था अतः भू-राजस्व की राशि में वृद्धि होनी स्वाभाविक थी । भूराजस्व का वास्तविक हासिल जमा से काफी कम था । 33 करोड़ के मुकाबले 19 करोड़ था । इस आधार पर जहीरूद्दीन फारूकी का यह निष्कर्ष तर्करहित नहीं लगता कि यदि 50 प्रतिशत की दर से भूराजस्व का निर्धारण किया गया तो भी कृषकों ने वास्तव में

1- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 467-68,

2-बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 458-60 ।

3-बख्तावर खाँ, मीरात-ए-आलम-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 136 ।

25 प्रतिशत से कुछ अधिक ही कर दिया । इस आधार पर कृषकों पर बढ़े हुए प्रशासनिक दबाव की पुष्टि नहीं होती । मोरलैण्ड ने यह विचार व्यक्त किया है कि कृषकों की दशा जहाँगीर और शाहजहाँ के समय खराब हुयी तथा औरंगजेब के समय और अधिक बिगड़ गयी । मोरलैण्ड ने इस निष्कर्ष के लिए कुछ विन्दुओं को चिन्हित किया है । इन बिन्दुओं को निर्विवाद नहीं माना जा सकता । अतः उनके निष्कर्षो पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है । यूरोपीय यात्रियों तथा यूरोपीन निवासियों के विवरण महत्त्वपूर्ण हो सकते है किन्तु सत्य का पूर्ण सूचक होने में सन्देह है । शाही फरमानों की मूलभावना को समझने में वे पूरी तरह सफल नहीं थे । एक उदाहरण से इस तथ्य को अधिक स्पष्ट किया जा सकता है । प्रत्येक यूरोपीय यात्री ने सम्पत्ति की जब्ती का नियम "ली ऑफ एशचिट" का उल्लेख[1] किया है जो मुगलकाल में प्रचलित बताया गया है । इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि हर अमीर की मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी जबकि तथ्य यह है कि सभी की सम्पत्ति नहीं छीनी जाती थी । केवल उन्हीं लोगों की सम्पत्ति जब्त की जाती थी जो मनसबदार थे, कर्ज लिये थें और उसे अदा करने में असमर्थ रहे थे । इस नियम का दायरा सर्वव्यापक नहीं था । मोरलैण्ड का विचार है कि अकवर अपने अधिकारियों को नकद वेतन देता था उसके उत्तराधिकारी जागीर के रूप में वेतन देते थे । जागीर प्रथा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों पर अत्याचार बढ़ गया वास्तव में ऐसा निष्कर्ष निकालना कठिन है । अकबर के पहले भी भारत में जागीर प्रथा थी। अकबर भी जागीर प्रथा को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाया था ।

मोरलैण्ड ने भू-राजस्व के मनमाना निर्धारण का उल्लेख किया है । मोरलैण्ड का विचार है कि राजस्व निर्धारित करने वाले एक निश्चित राशि का प्रस्ताव करते थे और अकबर की जब्ती प्रथा को तभी लागू किया जाता था जब कोई गाँव या इलाका निश्चित भूराजस्व को मानने से इन्कार करता था । मारलैण्ड का निष्कर्ष है कि वार्षिक तौर पर भूराजस्व का निर्धारण एक निश्चित रकम के रूप में किया जाता था । कर निर्धारण कर्त्ताओं पर जागीरदारों का दबाव रहता था जो अधिक से अधिक धन की अपेक्षा करते थे । राज्य का खर्च भी वढ़ता जा रहा था उसकी पूर्ति को भी ध्यान में रखना होता था । शाहजहाँ के समय से ही राज्य का खर्च बढ़ गया था । रायभारमल ने 'लुब्ब-उत-तवारीख' में लिखा[2]

1-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 471 ।

2-रायभारमल, लुब्ब-उत-तवारीख- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृष्ठ 299

है कि अकबर के शासन काल में जिस परगने की आमदनी तीन लाख थी अब वहाँ 90 लाख संग्रह हो सकता था परन्तु कुछ परगनों की आमदनी घट भी गयी थी जो लाग कुशल कृषि कार्य द्वारा आय बढ़ाते थ उनको पुरस्कार मिलता था और जो घटाते थे उनको दण्ड मिलता था । गत शासनकाल में जो खर्च होता था वह इस समय का चौथाई भी नहीं था फिर भी सम्राट के पास इतना धन संग्रह हो गया था जितना उसके पूर्वज वर्षों में भी एकत्र नहीं कर सकते थे । मोरलैण्ड का विचाार है कि बढ़े हुये खर्च की आपूर्ति मुख्यत: भू-राजस्व के ही माध्यम से की जाती थी । जहीरूद्दीन फारूकी, मोरलैण्ड, के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं है यह विचार औरंगजेब के फरमानों पर आधारित है ।

उन फरमानों से कृषकों के शोषण का अनुमान लगाना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है । अस्तु मोरलैण्ड के निष्कर्ष हमें उसकी पुर्नसमीक्षा की आवश्यकता प्रस्तुत करते है । मोरलैण्ड का यह कथन विचारणीय है "चूंकि कृषि का विस्तार और लगान द्वारा आमदनी में वृद्धि ही इस महकमें के घोषित उद्देश्य थे इसलिए इन कर्मचारियों की काबिलियत का फैसला उनके द्वारा इन मकसदों के पूरा करने के नतीजे पर ही खासतौर पर आधारित रहता होगा । इस प्रकार किसानों के प्रति कड़ा बर्ताव करने के लिए काफी प्रलोभन मौजूद थे यह सख्ती और बेरहमी उस समय के शासन की खास विशेषता थी । मोरलैण्ड[1] स्वयं किसानों के प्रति कथित सख्ती को सीमा में बाँधते हुए लिखते है जरूरत से अधिक सख्ती करने पर नुकसान होने की सम्भावना थी क्योंकि इससे किसान खेती ही छोड़कर बैठ जाते फिर भी हम यह तर्कसंगत निष्कर्ष निकाल सकते है कि इलाकों में किसानों को सख्त अनुशासन में रहना पड़ता था । सामूहिक कर निर्धारण प्रथा से किसानों को नुकसान पहुँचा हो ऐसा सामान्य निष्कर्ष, जैसा कि मोरलैण्ड ने त्रुटिवश निकाला है उचित नहीं है। कुछ गाँवों में, जहाँ किसान गरीब थे, वहाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित दरों पर उपज में हिस्सा लेने का ढंग (बटाई)[2] प्रचलित था- जैसे उपज का आधा या एक तिहाई या $\frac{2}{5}$ या इसके कम या अधिक पर सामूहिक लगान निर्धारण का तरीका ही विधिसंगत था । साल के प्रारंभ में अमीन एक गाँव या कभी-कभी पूरे परगने द्वारा अदा की जाने वाली लगान की रकम और उस साल बोयी जाने वाली भूमि के क्षेत्रफल के अनुसार यह निर्धारण करता था। कोई गाँव अमीन द्वारा निर्धारित की हुई रकम अदा करने से इन्कार भी कर सकता था और

1-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, दि रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि यूनाईटेट प्राविंसेज, पृ0 17-19 ।

2-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 165-167 ।

ऐसी अवस्था में हाकिमों के फैसले के अनुसार उपज के हिस्से के ढंग से या नाप प्रणाली द्वारा मालगुजारी ले ली जाती थी । जहीरूद्दीन फारूकी[1] ने इस पर एक तर्कसंगत टिप्पणी करते हुए लिखा है कि जब कृषकों की दशा और क्षमता तथा अन्य बिन्दुओं को ध्यान में रखकर सामूहिक कर निर्धारण किया जाता था तो यह कैसे कहा जा सकता है कि निर्धारण मनमाना होता था । यह भी ध्यान में रखना होगा कि किसी भी परिस्थिति में उपज के आधे से अधिक भाग को लगान के रूप में नहीं लिया जाता था। इस तथ्य से मोरलैण्ड भी सहमत हैं । उनके अनुसार अकबर के काल की अपेक्षा इस काल में मालगुजारी की दर ऊँची हो गयी थी। अकबरकालीन व्यवस्था का कुल उपज का एक तिहाई भाग अब न्यूनतम सीमा बन गयी थी, इससे अधिक भी मांगा जा सकता था । उपज का आधा भाग लगान की अधिकतम सीमा थी । इन्हीं हदों के भीतर स्थानीय कर्मचारियों को सपष्टतः अपने विवेक से लगान की दर निश्चित करने की अनुमति प्राप्त थी परन्तु यह देखते हुए कि उनका खास फर्ज आमदनी बढ़ाना था, हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि वास्तविक लगान की दर न्यूनतम सीमा की अपेक्षा अधिकतम सीमा के ही अधिक निकट थी[2] ।

सामूहिक लगान निर्धारण की प्रथा में वर्ष भर के लिए लगान की मांग निश्चित कर दी जाती थी, अन्य तरीकों की तरह प्रत्येक मौसम के लिए नहीं । यह हर परगने की परिस्थितियों के लिहाज से निश्चित की हुयी तीन किश्तों में वसूल किया जाता था । पूरी लगान की मांग वर्ष के प्रारम्भ में एक निश्चित रकम के रूप में निर्धारित कर दी जाती थी । फसलों के पकने पर किसान मुकद्दम के पास अपना-अपना लगान का हिस्सा जमा कर देते थे और मुकद्दम चकलेदार की मांग को पूरा करता था । यह व्यवस्था किसी आकस्मिक आपत्ति जैसे सूखा, पाला, नीची कीमतें और अन्य के फलस्वरूप गड़बड़ हो जाती थी । उपज में जरा सी हानि होने से निर्धारित कर का वसूल होना असम्भव हो सकता था। ऐसी परिस्थितियों में महकमा लगान के कर्मचारियों को आदेश दिया गया था कि वे सक्रिय तथा सावधान रहे और वास्तविक उपज के अनुसार फिर से लगान निर्धारित करे और इस पर विशेष ध्यान रखें कि कहीं किसानों पर तफरीक करने का कार्य मुकद्दम, मुनीम, और सम्बन्धित अधिकारी के जिम्मे न रह जाय । राज्य की ओर

1- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 472.

2- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृष्ठ 179

से यह प्रयास किया जाता था कि कृषकों से आधे से अधिक उपज लगान में न ली जाय । इस हेतु निषिद्धि करों की वसूली न करने का स्पष्ट निर्देश था । मोरलैण्ड के शब्दों में "अब यह कहना मुश्किल है कि यह नियन्त्रण कितना कारगर हुआ[1] । सामूहिक कर निर्धारण के बारे में संकेत स्पष्ट है किन्तु वित्तीय अधिकारियों को यह निर्देश था कि वे प्रत्येक कृषक की दशा को ध्यान में रखकर ही लगान निर्धारित करें इससे भी स्पष्ट होता है कि सामूहिक कर निर्धारण प्रथा में कृषकों का शोषण अधिक नहीं हुआ ।

कृषि योग्य भूमि के विस्तार के लिए किसानों पर दबाव डाला गया मोरलैण्ड का यह विचार है । फारूकी[2] ने लिखा है कि कृषकों की क्षमता से अधिक कृषि योग्य भूमि के विस्तार के लिए दबाव डाला गया हो ऐसा कहना निरापद नहीं है । यह सही है कि सम्राट ने कोड़े का इस्तेमाल करने का निर्देश दिया था लेकिन यह उन कृषकों के लिए था जो खेती करने से मुकरते थे । फारूकी ने लिखा है कि कृषि योग्य भूमि का विस्तार करने के लिए किसानों पर बल प्रयोग किया गया हो, ऐसा नहीं लगता है । रसिकदास को भेजे गये फरमान में अधिकारियों को आदेश दिया गया कि कृषकों के साथ समझौता एवं उनमें विश्वास पैदा करने की नीति अपनायी जाय और उन्हें उनका हक दिया जाय । मुहम्मद हाशिम को भेजे गये फरमान में अधिकारियों से कहा गया है कि वे कृषकों की भलाई का ध्यान रखें उनकी दशा के बारे में जानकारी रखें और सूझ-बूझपूर्वक ऐसा प्रयास करे कि कृषक स्वयं खेती का विस्तार करे और प्रत्येक कृषि योग्य भूमि में खेती की जाने लगे । राज्य की ओर से किसानों को सुविधा दिये जाने का प्रयास किया जाता था जैसे उन्हें ऋण देना, कृषि औजार देना, और सिंचाई के लिए कूँए खोदना इस प्रकार कृषीय भूमि का विस्तार करने का प्रयास किया गया न की जोर-जबरदस्ती द्वारा ।

भू-राजस्व की दर एक तिहाई से बढ़ाकर उपज का आधा किये जाने के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि फरमानों से यही प्रकट होता है कि औरंगजब किसानों से उतना भू-राजस्व लेने के पक्ष में था जितना कृषक आसानी से दे सकें। मनूची, औविंगटन आदि यह बताते है कि राज्य का हिस्सा कृषक के उत्पादन में

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृष्ठ 182.

2- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 474.

50 प्रतिशत का होता था । फारूकी[1] का विचार है कि व्यवहार एवं नियम में साम्य रहना अनिवार्यत: संभव नहीं होता है अत: वे यह मानने को उद्यत है कि औरंगजेब के समय भू-राजस्व की दर करीब-करीब वही थी जो अकबर के समय थी । उनका विचार है कि यूरोपीय लेखकों ने गलत निष्कर्ष निकाला है । औरंगजेब के फरमान से ये निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि किसी वर्ष फसल खराब हुई और उत्पादन कम हुआ तो किसानों से औसत की दर से लगान लेने पर यदि उपज के आधे से अधिक लगान निकलता है तो भी आधे से अधिक न ले । फारूकी का विचार है कि औरंगजेब के समय कृषक की दशा करीब-करीब वैसी ही थी जैसी अकबर के समय[2] । अधिक तर्कसंगत यह है कि औरंगजेब के समय कृषकों को कष्ट अवश्य उठाने पड़े लेकिन उसका कारण भूराजस्व की दर में वृद्धि न होकर अनवरत युद्ध थे जो साम्राज्यवादी कारणों से अनिवार्य रूप में लड़े जा रहे थे ।

1- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 474,
2- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 476,

अध्याय 3

कृषक, शिल्पी एवं मजदूर वर्ग

भारत प्राचीन काल से ही अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों तथा जलवायु के कारण कृषि प्रधान देश रहा है । यहाँ के अधिकांश निवासियों का प्रधान व्यवसाय कृषि था। जीवन निर्वाह हेतु जो साधन विकसित हुये वे सभी कृषि पर आधारित थे या इससे सम्बन्धित थे । अत: यह कहना उचित है कि कृषक वर्ग जो मानवता का सबसे बड़े भाग का निर्माण करता है, हमारे भाग्य-निर्धारण में भी उसका विशेष योगदान है ।

मध्यकालीन किसानों के अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान मुख्यत: बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के अन्त में आकृष्ट हुआ । इन विद्वानों में सबसे पहले इतिहासकार मोरलैण्ड ने कृषकों के महत्व को उजागर किया[1] । मोरलैण्ड, के अनुसार किसान से तात्पर्य उस वर्ग से है जो अपने लोभ के लिए अपने परिवार वालों या मजदूरों की सहायता से खेत जोतता हो चाहे उसकी भूमि पर स्वामित्व या स्थायित्व की शर्तें किसी भी प्रकार की हो । इरफान हबीब[2] एवं अन्य इतिहासकारों ने "कृषक" की परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया कि कृषक से उनका अभिप्राय उस जनसाधारण से है जो खेत में अपने ही कृषि यन्त्रों का प्रयोग करके तथा केवल अपने ही परिवार के सदस्यों के श्रम का उपयोग करके स्वयं ही कृषि कार्य करता है ।

सत्रहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या देहात में निवास करती थी अत: यह निश्चित है कि इनमें बहुतायत कृषक वर्ग ही था। भारत में अपने पूर्व के अन्य शासकों की भाँति मुगल शासन की अर्थव्यवस्था भी प्रधानत: कृषि उपज पर निर्भर थी । इतालवी यात्री मनूची[3] के अनुसार "भारत से निर्यात के लिए मुख्य सामग्री चार विभिन्न पौधों, अर्थात कपास शहतूत, अफीम, एवं

1- मोरलैण्ड, मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, पृ0 17, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड-2,

2- इरफान हबीब, दी पीजेन्ट इन इण्डियन हिस्ट्री, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1982, पृ0 21,

3- मनूची, स्टोरिया डू मोगोर, उदघृत हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खंड-2, पृ0 355-356,

नील के पौधों से प्राप्त होती है" इससे स्पष्ट है कि मुगल काल में निर्यात होने वाली मुख्य उपयोगी वस्तुएं भी पूर्णतया भू-उत्पाद थी अतः मुगलकाल में इस बात पर बार-बार बल दिया गया है कि कृषि उन्नतिशील[1] रहे तथा कृषि-उत्पादन में गिरावट न आने पाये । मुगल शासकों की यह चेष्टा रही कि कृषकों को पूर्ण सुरक्षा तथा सुविधा प्राप्त हो जिससे वे निश्चिन्त होकर कृषि-कार्य में लगे रहें और साम्राज्य की आय में बढ़ोत्तरी हो । मुगल भू-राजस्व पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों को खुले शाही आदेश[2] थे कि वे सतर्कतापूर्वक किसानों के हितो की रक्षा करें, उन्हें आवश्यकतानुसार कृषि-यन्त्र तथा बीज आदि खरीदने के लिए तकावी कर्ज उपलब्ध कराने की व्यवस्था करे तथा अधिक से अधिक बंजर भूमि को कृषि योग्य बनकर उस पर जुताई-बुआई आरम्भ करें । औरंगजेब ने एक फरमान में वित्त कर्मचारियों को किसानों के साथ परोपकारिता एवं उदारता का व्यवहार करने तथा उनकी स्थिति के विषय में पूर्ण जानकारी रखने आदि का आदेश दिया था ताकि खेतिहर आनन्द तथा उत्साह सहित कृषि बढ़ाने में संलग्न रहे तथा प्रत्येक खेती योग्य भू-भाग जुताई में लाया जा सके । औरंगजेब ने यह भी आज्ञा दी थी कि जिन कृषकों में कृषि -यन्त्र आदि खरीदने की सामर्थ्य न हो उन्हें तकावी कर्ज दिये जाये। साथ ही 'मुकासमा' भूमि[3] में यदि किसी दैवी प्रकोप या अन्य विपत्ति के फलस्वरूप फसल नष्ट हो जाये तो ऐसी अवस्था में अनुमानित हानि के मूल्य के बराबर भू-राजस्व माफ कर दिया जाये[4] तथा यदि फसल पकने से पहले या बाद नष्ट हुई हो तो उपज के केवल बचे हुए भाग पर ही भूमि कर लगाया जाये । किसानों के हित में जारी किये गये फरमान स्वाभाविक रूप से एक ओर जमींदार, जागीरदार, एवं इजारेदारों तथा दूसरी ओर स्थानीय भू-राजस्व कर्मचारियों के निजी स्वार्थो से टकराते थे अतः शाही फरमान अप्रभावी सिद्ध हुये तथा व्यवहारिक रूप में पूर्णतया कार्यान्वित न हो सके । शाही दावों तथा आश्वासनों के बावजूद कृषक वर्ग साम्राज्य

1- एस0आर0शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 391,

2- मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2 पृ0- 275, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 156,

3- हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 356, इस्लामी कानून के अधीन मुकासमा का अर्थ व्यवसाय न होकर उत्पादन पर लिये जाने वाला कर था।

4- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 156, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति पृ0 155,

का सर्वाधिक उत्पीड़ित तथा शोषित वर्ग बना रहा[1] यद्यपि किसान खेत में उत्तम श्रेणी का गेहूँ, चावल, तथा चना पैदा करते थे जो स्वयं के प्रयोग के लिए नहीं बल्कि राजस्व चुकाने के लिए किया जाता था । उसका अपना सामान्य भोजन मोटा अनाज था । उसका सारा जीवन मिट्टी, घास-फूस और बांस से बनी झोपड़ियों में व्यतीत हो जाता था । कर्मचारियों तथा जमींदारों आदि के संयुक्त प्रकोप का निशाना किसानों को बनना पड़ता था । भूराजस्व की अतिरिक्त अवैध मांगों तथा विभिन्न लाभों के फलस्वरूप उसकी उपज के एक बड़े भाग से किसान वंचित हो जाता था और कभी-कभी तो यह अवस्था आ जाती थी कि लगान आदि न चुका सकने के कारण उसे अपना घर-बार छोड़कर दूसरे स्थानों को भाग जाना पड़ता था[2]।

मुगल काल में किसानों की सामान्य दशा को भली प्रकार समझने के लिए मुगल काल में भारत में आये विदेशी यात्रियोंके उल्लेखों तथा अन्य श्रोतों से उनके खान-पान पहनावे, तथा रहन-सहन का स्तर पता चलता है । विभिन्न मूल श्रोतों से पता चलता है कि मुगल साम्राज्य के अधिकतर भागों में चावल, ज्वार, एवं बाजरा तथा दालें जन-साधारण का सामान्य आहार थी । बंगाल, उड़ीसा, सिन्ध, कश्मीर, तथा दक्षिणी भारत में, जहाँ धान मुख्य फसल थी, चावल सामान्य लोगों के भोजन का मुख्य अंग था । किसान आमतौर पर अपनी उपज में से थोड़ा ही अनाज अपने परिवार के उपभोग हेतु बचा पाता था । आगरा दिल्ली के मुख्य गेहूँ उत्पादक क्षेत्र में भी जनसाधारण के लिए गहूँ एक दुर्लभ अनाज था, यह वर्ग चावल, ज्वार, बाजरा तथा दालों पर जीवन व्यतीत करता था । मालवा में इतना अधिक गेहूँ पैदा होता था कि वहां से निर्यात किया जाता था परन्तु यूरोपीय यात्री टेरी के अनुसार[3] वहाँ पर सामान्य जन गेहूं के स्थान पर एक घटिया प्रकार के अनाज के आटे की रोटी का सेवन करते थे । इसीप्रकार कश्मीर में एक निम्न श्रेणी का चावल जनसाधारण का सामान्य भोजन था । विहार के किसानों का लौकिक आहार मटर के आकार के एक अन्न पर निर्भर था जिसे 'किसारी' या खेसारी कहते थे ।

मुगल काल में देहातों में कृषकों की एक बड़ी जनसंख्या मिट्टी से बने

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 157, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 362, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 392, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 290

2- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 357,

3- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 359-60,

तथा छप्पर से ढके एक कोठरी के घर में रहती थी[1] । दो एक खाटें तथा बांस की चटाईयाँ प्राय: किसान के घर का समस्त फर्नीचर था । इसके अतिरिक्त पानी पीने तथा भोजन बनाने के लिए मिट्टी के कुछ बर्तन होते थे, केवल रोटी सेकने के काम आने वाली छोटी सी अँगीठी या चूल्हा ही किसान के घर में एक ऐसी वस्तु थी जिसमें कुछ लोहे का प्रयोग होता था । इरफान हबीब ने लिखा है, कि गांव में केवल गरीब कृषक ही नहीं रहता था । शक्तिशाली खूत या सामन्त भी रहते थे । स्वाभाविक है कि उनका रहन-सहन साधारण स्तर से उपर का रहा होगा[2]।

सामान्य उपज के वर्षो में भी किसान का जीवन गरीबी तथा तंगी में व्यतीत होता था । फसल सदैव ही अच्छी नहीं रहती थी । वर्षा न होने अथवा अधिक होने तथा अन्य कई कारणों से कभी-कभी उपज खराब हो जाती थी और अकाल पड़ जाता था । अकाल के प्रकोप[3] का प्रभाव सामान्य रूप से समस्त जनसाधारण पर पड़ता था परन्तु किसान का जीवन इससे सीधे प्रभावित होता था। ऐसी अवस्था में कृषक वर्ग की कठिनाइयाँ कुछ बढ़ जाती थी ।इन परिस्थितियों का सामना करने के लिए किसान प्राय: अनाज का स्टॉक सुरक्षित रखता था । सरकार भी लगान माफ करके तथा तकावी कर्ज देकर राहत पहुँचाती थी । परन्तु बड़े अकाल जो अधिक व्यापी होते थे तथा महामारी के साथ आते थे, बड़े घातक तथा प्रलयकारी सिद्ध होते थे । इनके प्रकोप से सारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था नष्ट हो जाती थी । सम्भवत: 1660 ई0 में गुजरात[4] में कठोर अकाल पड़ा । अकाल का प्रकोप इतना तीव्र था कि भुखमरी से बचने के लिए माता-पिता ने अपने बच्चों को बेच दिया। कृषक द्वारा नियंत्रित भू-क्षेत्र के विस्तार, उनके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले भाड़े के श्रम की अधिकता, संपत्ति सम्बन्धों तथा धन संपत्ति के आधार पर मुगलकालीन कृषक समुदाय स्पष्ट रूप से तीन वर्गो में विभाजित था, खुदकाश्त, पाहीकाश्त, मुजारियान । इनके अतिरिक्त भूमिहीन कृषकों का एक वर्ग भी प्रत्येक गांव में पाया जाता था ।

1-डब्लू 0एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजब, पृ0 302, चापड़ापुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 56

2- तपनराय चौधरी, इरफानहबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, 1, पृ0 176

3- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 155,
मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 282-283,

4-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368,

खुदकाश्त[1] किसान को मुगल सरकारी दस्तावेजों में मालिक-ए-जमीन अर्थात ''भूमि का स्वामी'' भी कहा गया है । वह मुगल साम्राज्य में विभिन्न नामों से जाना जाता था उदाहरणार्थ राजस्थान में उसे गारूहाला या गावेती तथा महाराष्ट्र में मिरासी या थलवाहिक कहते थे । खुदकाश्त किसान वे खेतिहर थे जो उसी गांव की भूमि में खेती-बाड़ी करते थे जिसके वे निवासी थे । किसानो का यह वर्ग वास्तव में अपने द्वारा नियंत्रित भू-क्षेत्र का स्वामी था । उसे अपनी भूमि पर स्थायी अधिकार प्राप्त थे तथा जमींदार का दर्जा हासिल था । खुदकाश्त किसान को अपनी सम्पत्ति बेचने का अधिकार था तथा पुरूषों में वंशगत उत्तराधिकार की प्रथा को मान्यता प्राप्त थी। खुदकाश्त किसान अपनी खेती-बाड़ी में श्रमिकों की सेवाओं का प्रयोग करते थे उनमें महंगे और अधिक पैदावार देने वाले साधन जुटाने की क्षमता थी तथा वे अच्छी नस्ल के पशुओं एवं अधिक उपजाऊ भूमि के स्वामी[2] थे । वे प्रायः बटाई पर खेती करते थे । कृषकों का दूसरा वर्ग 'पाही' कहलाता था । ''पाहीकाश्त[3]'' किसानों से तात्पर्य उन कृषकों से था जो दूसरे गांवों में जाकर कृषि कार्य करते थे तथा वहाँ उनकी अस्थायी झोपड़ियाँ होती थीं । पाहीकाश्त किसानों की जोत उस गांव में नहीं होती थी जिसमें उनका स्थायी निवास था बल्कि वह दूसरे गांव में अस्थायी निवास ग्रहण करके खेती करते थे । वे खुदकाश्त किसानों की भाँति मालिक-ए-जमीन नहीं थे। पाहीकाश्त किसानों के अधिकार में केवल उतनी ही जोत होती थी जितनी वह केवल अपने ही परिवार के श्रम का उपयोग करके उस पर खेती कर सकते थे । उनमें भाड़े का श्रम प्राप्त करके कृषि की सामर्थ नहीं थी।

कृषकों में तीसरा वर्ग मुजारियान था । 'मुजारियान'[4] वे किसान होते थे जिनके अधिकार में इतनी कम भूमि होती थी कि वह भूमि उनके परिवार के सम्पूर्ण श्रम को काम में लाने के लिए अपर्याप्त थी । मुजारा कृषक अपनी जोत बेच नहीं सकते थे परन्तु इस प्रकार के प्रमाण मिलते है कि एक बार खेत छोड़ देने क पश्चात पुनः अपना भाग वापस लेने के लिए मुजारा कृषक फिर से लौट आये थे।

1- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 137,
   हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 363,
2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 159.
3- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 137,
4- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 364,
   राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 138,

कृषि आश्रित अर्थव्यवस्था में राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक परिवर्तन का तो कृषक के जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता ही है परन्तु आर्थिक कारक उसका भाग्य निर्धारित करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं वास्तव में बाजार के लिए वस्तु उत्पादन के फलस्वरूप ही कृषकगण के भीतर आर्थिक वर्गीकरण को प्रोत्साहन मिला तथा ग्रामीण जनसंख्या धनी, मध्यम, निर्धन, आदि वर्गों में विभाजित होने लगी ।

मुगल सम्राट इस बात को जानते थे कि राज्य की आय में सबसे बड़ा योगदान किसान का है । इस दृष्टि से किसानो का महत्वपूर्ण स्थान था । पेलसार्ट, बर्नियर, मनूची, एवं, अन्य यूरोपीय यात्रियों ने किसानों एवं मजदूरों की दरिद्रता का उल्लेख किया है[1] अंतिम काल में आकलन की जो प्रणाली प्रचलन में आयी वह किसानों के लिए अत्यधिक कष्टदायक साबित हुई । किसानों की भूमि में कोई रूचि न रही । किसान वर्ग का अधिक से अधिक वसूली करके शोषण किया गया । सरकार का दृष्टिकोण यह था कि राज्य के प्रति किसान का यह कर्तब्य है कि वह खेती करे और उसके बदले में राजस्व दे अतः सत्रहवीं शताब्दी में "भूमि का अभाव नहीं था बल्कि कृषकों का अभाव था" । औरंगजेब के शासनकाल में 'नश्क[2]' की नीति अपनायी गयी । इसके अन्तर्गत आकलन की ईकाई एक किसान की जोत न होकर ग्राम, टप्पा या परगना है । सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह प्रणाली आकलित 'जमा' के वितरण का काम बड़े जमींदारों या ताल्लुकेदारों के हाथों में छोड़ दिया गया जो भूराजस्व की वसूली तथा अदायगी का प्रबन्ध करते थे । इससे बड़े जमींदारो या किसानों को यह आवश्यक अधिकार व मौका मिल गया कि वे छोटे जमींदारों के खिलाफ राजस्व की मांग में वृद्धि कर सकते थे । छोटे जमींदारों ने अपना भार किसानों पर डाल दिया । 'नश्क' प्रणाली के अपनाने से प्रशासनिक व्यवस्था विभिन्न स्तर पर कमजोर हो गयी[3] ।

अतः मुगल शासकों का ध्यान भू-राजस्व के आकलन की विभिन्न प्रणालियों तथा आकलन की व्यवस्था एवं उसे वसूल करने की ओर विशेष रूप से

1-तपनराय चौधरी, इरफान हवीव, दी कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1, पृ0 171, हरीश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 354.

2-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 360, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 155, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0154

3-मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 275, एम0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राजय, पृ0 390,

था क्योंकि वे कृषकों के साथ न केवल न्याय वरन् उनके हितो की सुरक्षा चाहते थे व यह नहीं चाहते थे कि कृषकों का शोषण हो या कर का अधिक भार उन पर पड़ या किसी व्यक्ति को किसी भाँति से क्षति पहुँचे । कृषको के कल्याण पर ही राज्य का स्थायित्व निर्भर करता था । मुगल सम्राटों में अकबर महान प्रथम शासक था जिसने कमशः प्रयोगों द्वारा ऐसी भूराजस्व व्यवस्था की स्थापना की जो थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ औरंगजेब के समय तक चली रही[1] । इस कार्य में उनको अनक कुशल अमीरों से जो कि स्वयं वित्तीय विषयों में दक्ष थे, सहयोग प्राप्त हुआ ।

भूमि के वास्तविक स्वामित्व के प्रश्न की जटिलता के पीछे एक विशाल इतिहास है । प्राचीन काल में विद्वान, मनीषी, विधिवेत्ता समय-समय पर इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते रहें । हिन्दू विधि के अनुसार भूमि का वास्तविक स्वामी कृषक है क्योंकि वही जंगलों को अपने परिश्रम से साफ करता है, भूमि को खेती योग्य बनाता है[2] और उस पर खेती करता है, परन्तु यह विचारधारा धीरे- धीरे अमान्य हो गयी । कारण यह कि विजय या साम्राज्य संस्थापन की प्रकिया से नये-नये शासकों का अभ्युदय हुआ जो कि अपनी विजयों के आधार पर भूमि के स्वामी होने का अधिकार का दावा करने लगे । किसी प्रदेश या भू-भाग के विजित करने पर पराजित शासक के सभी अधिकार उसके अन्तर्गत भूमि, मकान, इत्यादि सभी कुछ विजय प्राप्त करने वाले व्यक्ति के हो जाते थे और वह उनका स्वामी हो जाता था परन्तु खेतों का स्वामित्व उसे प्राप्त नहीं होता था क्योंकि खेतिहर भूमि का वास्तविक स्वामी कृषक ही होता था । शासक कृषकों की रक्षा करते थे व शान्ति, सुव्यवस्था, बनाये रखते थे अतएव कृषक उन्हें उनकी सेवा के लिए अपने उत्पादन का एक भाग भू-राजस्व के रूप में दिया करता था यदि कृषक खेती नहीं करता था या खेती करने से मना करता था तो वह समाज के प्रति उत्तरदायित्व की पूर्ति नहीं करता था ऐसी स्थिति में या तो शासक उसकी सहायता करता था या उसे खेती करने पर बाध्य किया करता था. क्योंकि उसके खेती न करने पर या उत्तरदायित्व को पूरा न करने पर समाज को भूखा रहना पड़ सकता था[3]। किसानो का भूमि से क्या सम्बन्ध था तथा उसकी दशा कैसी थी,

---

1-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली. पृ0 166

2-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति, पृ0 156.

3-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति, पृ0 152

इसपर विद्वानों में मतभेद है । समकालीन यूरोपीय यात्री एक मत से कहते है कि सम्राट भूमि का स्वामी था[1] । डा0 इरफान हबीब[2] का मत है कि भूमि का स्वामी न तो किसान था और न ही सम्राट था । कुछ परिस्थितियों में उसका अधिकार मिल्कियत का था । सामान्य रूप से किसान अपनी भूमि को न बेच सकता था और न उससे अलग ही हो सकता था । वह भूमि से संलग्न था फिर भी उसकी दशा यूरोप के दासों से भिन्न थी । भूमि सम्बन्धी मौरूसी हक किसान को प्राप्त था । मौरूसी भूमि को पूर्ण मान्यता देने हेतु सरकारी आज्ञा थी । सरकारी कर्मचारियों को ये आदेश दिया गया था कि अगर कोई किसान अपनी भूमि को छोड़कर कहीं दूसरे स्थान पर जाता है तो वह उसे समझा-बूझाकर वापस ले आये। किसानों का भूमि छोड़कर पलायन करना एक साधारण घटना थी ।

डा0 कुरैशी का मत है, कि किसान मुगलकाल में खुशहाल थे । इसका कारण सस्ते दामों में आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि थी । उनका मत है कि किसानों की दरिद्रता का जो चित्र ब्रिटिशकाल में दिखायी देता है उसका कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा किसानों का शोषण तथा भारत की लूट थी[3] ।

मुगलकाल में किसान राजस्व के प्रमुख श्रोत थे, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है । किसानों पर मालगुजारी के अलावा अन्य तरह-तरह के कर लगाये जाते थे । शोषण अत्यधिक असह्य हो जाता था तो किसान सब कुछ छोड़कर भाग जाते थे । बहुत से किसान खालसा भूमि से भागकर जमींदार के क्षेत्र में चले जाते थे । बर्नियर कहता है कि किसान राजाओं के क्षेत्र में अधिक सुखी थे। 'आलमगीरनामा' के अनुसार, जमींदारों द्वारा शाही नियमों के लागू न करने तथा उनके दुर्व्यवहार के कारण किसान भागकर स्वायत्त शासकों या जमींदारों के क्षेत्र में चले जाते थें । औरंगजेब के काल में बहुत से किसान तालकोंकण से भागकर पड़ोस के जमींदार के पास चले गये उनको जबरदस्ती वापस लाकर छः सौ गांवों

1-बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 204, 226, मनूची, स्टोरिया डू मागोर, भाग 2, पृ0 46, इरफान हबीब, दि एग्रोरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, पृ0 110, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 167,
2- हबीब, इरफान, दि एग्रोरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, अध्याय-4, सिद्धिकी, लैण्ड रेवेन्यू, पृ0 11-13, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 167,
3-कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 178 179, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 167,

में बसाया गया किन्तु उन्हें शीघ्र पुर्तगाली फुसलाकर ले गये[1]। इस घटना से यह अनुमान लगाया जाना तर्कसंगत है कि कृषकों पर शोषण का दुष्प्रभाव पड़ता रहता था । बड़े पैमान पर संगठित विद्रोह भी कृषकों ने किए जैसे जाट, सतनामी विद्राह। साधारणतया कृषकों के छिटपुट विद्रोह[2] होते रहते थे । इन विद्रोहों को आसानी से दबा दिया जाता था । ये विद्रोह कभी-कभी जातीय भावना के परिणामस्वरूप व्यापक भी हो जाते थे । इस सन्दर्भ में औरंगजेब के काल का सतनामियों तथा जाटों का विद्रोह महत्वपूर्ण है। इन विद्रोहों का मूल कारण किसानो का असन्तोष था[3]।

जाट विद्रोह -

जाटों का विद्रोह औरंगजेब के शासनकाल में 1669 ई0 में[4] मथुरा के क्षेत्र में तिलपत के जमींदार गोकुल के नेतृत्व में शुरू हुआ । युद्ध में विद्रोहियों ने मथुरा के मुगल फौजदार अब्दुर नबी को हरा कर उसकी हत्या कर दी । स्थिति नियंत्रण के बाहर होने पर औरंगजेब स्वयं प्रभावित क्षेत्रों की तरफ रवाना हुआ । गोकुल ने 20,000 सिपाहियों के साथ 20 मील दूर एक जगह पर मुगल फौजों को ललकारा और खूनी संघर्ष के बाद गोकुल को बन्दी बना लिया गया और आगरा की पुलिस चौकी पर उसके टुकड़े-टुकड़ कर दिये गये ।

जाटों ने मुगल सत्ता के खिलाफ 1680 ई0 में एक बार फिर विद्राह किया। औरंगजेब की दक्षिण में व्यस्तता ने जाटों को संगठित होने का एक अच्छा मौका दिया । उन्होने किले के चारो तरफ खाइयाँ बना ली तथा मिट्टी की दीवारों को मजबूत कर लिया ताकि वे तोपखानों की मार को झेल सकें । इस बार जाट विद्रोह राजाराम तथा उसके भतीजे चूड़ामन जाट के नेतृत्व

1-बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 205, इरफान हबीब, एग्रारियन सिस्टम, पृ0 336-37, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 167

2-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 167,
राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 156

3-सतीशचन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, पृ0 9-11,
इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम, पृ0 338-351, हरिशंकर श्री0, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 167-68

4-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 155, ए0 आर0 शर्मा भारत में मुगल साम्राज्य पृ0 330,

में शुरू हुआ। सिनसीनी और सौंधी उनके विद्रोह का मुख्य क्षेत्र था। उन्होंने दिल्ली आगरा के आसपास के परगनों में लूटपाट शुरू कर दी तथा व्यापार-वाणिज्य की संचार व्यवस्था को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। उन्होने मुगल शाही परिवारों को भी लूटना शुरू कर दिया। राजस्व[1] अधिकारियों को निष्कासित कर दिया और चकला, मथुरा, और मेवात के परगनों पर अपना सैनिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया। मुसावाड़ हांडल और पलवल पर 1686 ई0 में विजय के बाद जाट आगरा और दिल्ली के मध्यवर्ती क्षत्रों में सर्वशक्तिमान हो गये[2]। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये औरंगजेब ने विद्रोह को कुचलने के लिए खान-ए-जहाँ कोकलताश[3] जफर जंग को भेजा मगर उसे कामयाबी नहीं मिली। 1688 ई0 तक जाटों को अपनी शक्ति पर इतना भरोसा हो चला था कि उन्होंने अकबर के मकबरे को लूटने और नष्ट करने का दुस्साहस किया। इस पर औरंगजेब ने बिशन सिंह[4] कछवाहा को इस आदेश के साथ मथुरा का फौजदार बना कर भेजा कि वह जाट सरदारों को परास्त कर सिनसिनी को अपनी जागीर में मिला ले। एक लम्बी और कठिन घेराबन्दी के बाद 1690 ई0 में बिशन सिंह सिनसिनी को हथियाने में सफल हो सका। अगले वर्ष सौंधी ने भी बिशन सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। औरंगजेब के शेष शासनकाल में भी विद्रोह होते रहे पर इतने बड़े पैमाने पर नहीं।

औरंगजेब के शासनकाल में उसकी दक्षिण के युद्ध में व्यस्तता का और उसकी मृत्यु के बाद नाजुक राजनीतिक परिस्थिति का लाभ उठाकर जाटों ने न केवल विद्रोह किया वरन् उस क्षेत्र के तमाम मुगल जागीरदारों के खिलाफ जमींदारों का एक मोर्चा बनाया। 1694 ई0 में जाटों की विजय को देखकर और दूसरे जमींदार जैसे - गोजा, गूजर, और मीना जमींदार तथा इसके आगे मेव, भूमिया और कोल के अमर सिंह चौहान भी जाटों के साथ मिल गये।

इन विद्रोहों में किसानों के भाग लेने का कारण जमींदारों से भिन्न था।

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 636,
मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 213,

2-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 156, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 636-637

3- खाफी खाँ, मुन्तखब उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 245,

4- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 638.

इसी प्रकार किसान विद्रोह में भी क्षेत्रीय विषमताएं थी । सर्वप्रथम किसानों ने कभी भी पारम्परिक भूमि करों के खिलाफ आवाज नहीं उठायी परन्तु वे करों की संख्या एवं रकम में वृद्धि का लगातार विराध करते रहें । रैयती गाँव के किसान अपने गाँव को जमींदारी बनाने का विरोध करते थे क्योंकि इससे उन पर कई भार पड़ते थे । पहले किसान अपनी शिकायतों की सुनवायी के लिए उँचे पदाधिकारियों के पास जाते थे यदि संयोगवश वे मुकदमा हार जाते थे तो वे दूसरे क्षेत्र में बसने चले जाते थे या विद्राह कर देते थे । 1683, 1704, 1709 ई0 में किसानों और भूमिया ने सभी जगह गड़बड़ियाँ फैला दी । सहार परगना के किसानों ने जाट जमीदारों के साथ लूटमार में सहयोग[1] दिया ।

अतः औरंगजेब के समय जाट विद्रोह एक महत्वपूर्ण विद्रोह था[2] किन्तु इसका मूल कारण किसानों का असन्तोष था । वे करो की संख्या एवं रकम वृद्धि होने से तंग हो चुके थे । ऐसी स्थिति में विद्रोह करना स्वाभाविक था ।

सतनामी विद्रोह -

औरंगजेब के प्रारंभिक दिनों में एक राजस्व अधिकारी ने एक भाषणा में कहा कि ''यद्यपि भाटनेर परगना के गांव के विशेष काश्तकार अपनी स्त्री, बच्चों, अधिकृत सम्पत्ति व मवेशियों के साथ बैरागियों के भेष में रहते है फिर भी व राजद्रोह और डाके के विचार से स्वतन्त्र नहीं थे'' । उनके विद्रोह वास्तव में 1672 ई0 में ग्रामीण असन्तोष के रूप में आरम्भ हुए । एक सतनामी का अपने खेत पर मक्का के ढेर की चौकसी करते हुए एक प्यादे से कुछ विवाद हो गया[3] और प्यादे ने अपनी बेंत के द्वारा उस सतनामी के सिर पर वार किया तत्पश्चात इस पथ की भीड़ ने उस प्यादे को बुरी तरह पीट दिया ।

इस विद्रोह का सामान्य चरित्र इस उद्धरण से स्पष्ट है जो एक ऐतिहासिक

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 637-38 जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 362,

2-एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 331, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 167,

3-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड- 2 पृ0 643 जदुनाथ सरकार औरंगजेब, पृ0 157, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य पृ0-332,

वृतान्त से प्राप्त है "भाग्य के आश्चर्यजनक कार्यो में विश्वास रखने वालों के लिए इस घटना का उद्भव विस्मयकारी है कि विद्रोहियों, हत्यारों, लोहारों, बढ़इयों, चमारों आदि के असन्तुष्ट व अभावग्रस्त गिरोह तथा अप्रतिष्ठित हस्तकारों व शिल्पियों की जाति के व्यक्तियों को क्या विचार आया कि उनके मस्तिष्क पर इतना अन्धकार छा गया । विद्रोही विचार उनके दिमाग में घर कर गये और वे अपने प्रति सम्पूर्ण विनाश के जाल में फँस गये । इस कहानी पर से पर्दा हटाने के लिए मेवात के क्षेत्र के शरारती तत्वों का यह समूह अचानक भूमि से पतंगों की तरह निकला और आकाश से टिड्डी की तरह गिरा । "सतनामी मूल रूप में हिन्दू भक्तों के एक अनुपद्रवी सम्प्रदाय थे । इनके केन्द्र नारनोल एवं मेवात थे । खाफी खाँ इनके विषय में लिखता है" ये लोग भक्तों के समान परिधान पहनते है परन्तु व्यापार एवं खेती करते है, यद्यपि इनका व्याापार छोटे पैमाने पर होता है । अपने धर्म के मामले में उन्होने सतनाम की उपाधि से अपने को सम्मानित किया है । सतनाम का अर्थ है 'अच्छा नाम' । इन्हें विधि विहित पेशे के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकार से सम्पत्ति एकत्रित करने की आज्ञा नहीं है, यदि कोई बलपूर्वक या अधिकार जताकर इनकी हानि करने अथवा इन्हें सताने का प्रयास करे तो ये इसे नहीं सहेंगें। इनमें से बहुत के पास हथियार अथवा शस्त्र है[1] "सतनामियों के विद्रोह का वास्तव में तत्कालिक कारण तो मुगल सैनिक द्वारा उनके सदस्यों की हत्या थी । सतनामियों ने नारनोल पर अधिकार कर लिया जब परिस्थितियाँ गम्भीर हो गयीं तो मुगल बादशाह औरंगजेब ने "अपने तम्बुओं के बाहर निकलने की आज्ञा दी"।अप्रशिक्षित सतनामी किसान शीघ्र एक विशाल शाही फौज से परास्त हो गये । उनमें से कुछ तो बच गये तथा कुछ मर गये ।

मुगल काल में किसान के अधिक कर भार तथा शोषण सहन के कई कारण थे । खेती के योग्य भूमि नहीं थी किन्तु जनसंख्या कम थी इस कारण परिश्रमी किसान अधिक से अधिक भूमि अपनी खेती के लिए प्राप्त कर सकता था। किसान की आवश्यकताएं उस युग में कम थी । ग्रामीण कुटीर उद्योगों में उनकी आय हो जाती और समय भी कट जाता था। जंगलों से लकड़ी, फल, जड़ी बूटियाँ इत्यादि प्राप्त हो जाती थी। जानवरों के लिए चारागाह तथा हरी घास उपलब्ध थी, जिससे किसान को दूध दही, घी तथा खेती करने के लिए बैल प्राप्त हो

1- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 332,
मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2 पृ0 214.

जाते थे[1] । इस तरह किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। इसके अतिरिक्त धार्मिक आन्दोलनों ने उन सांसारिक उपलब्धियों में अरूचि पैदा कर उन्हें अध्यात्म की तरफ मोड़ दिया था । इन कारणों से शोषण[2] होने पर भी किसान विद्रोह कम हुए।

किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए दुर्भिक्ष तथा इस तरह की कठिनाईयों में उन्हें भू-राजस्व से छूट दी जाती तथा तकाबी बाँटी जाती थी जिसको सुविधाजनक किस्तों में सरकार को वापस किया जा सकता था| सिंचाई के लिए नहरों तथा कुओं का निमार्ण किया गया । अधिकारियों को किसानों के साथ सद्व्यवहार करने के निर्देश थे । सेनाओं को आदेश थे कि सैनिक अभियानों केसमय खेत की फसलें नष्ट न हो और यदि नष्ट हो तो उनका उचित मुआवजा दिया जाये । सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात थी कि गांव के स्तर से केन्द्र तक अधिकारियों का जाल बिछा हुआ था और प्रत्येक अधिकारी के कार्यो के पूर्ण निर्देश उपलब्ध थे ।

1668 ई0 में औरंगजेब से शिकायत की गयी कि पालमपुर का फौजदार 'गऊ चराई' तथा ''खुराक-ए-अस्पान' वसूल करता है उसे आज्ञा दी गयी कि वह उसे वसूल न करें[3] किन्तु उसे दण्डित नहीं किया गया । ऐसी स्थिति में इन करों का पुनः वसूल होना स्वाभाविक था । देश की विशालता तथा यातायात की कठिनाइयों से दूरवर्ती प्रदेशों में इन नियमों का कठोरता से पालन होना सम्भव न था वस्तुतः अधिकारियों द्वारा शोषण तथा राजस्व की चोरी पूर्णतया रोकना किसी शासन में सम्भव नहीं हो पाया ।

औरंगजेब ने गुजरात के दीवान मुहम्मद हाशिम और रसिकदास[4] करोड़ी को जो फरमान भेजे थे उससे उसकी नीति पर व्यापक प्रकाश पड़ता है उनसे यह भी ज्ञात होता है कि किसानों की दशा कैसी थी और सरकारी कर्मचारी किस प्रकार

1-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 168,
राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 157
2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 167,
3- अलीमुहम्मद, मीरात-ए-अहमदी, पृ0 82, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 166,
4- ~~आर0~~ एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 391,

उन पर अत्याचार करते थे । इन फरमानों में भी, पहले की तरह किसानों को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया है और उनके अपने खेत बेचने, रेहन रखने अथवा किसी को पट्टा देन के अधिकार स्वीकार किये गये हैं[1] । सम्राट की इच्छा थी कि किसानों से अधिक रूपया मिले परन्तु वह यह समझता था कि यह तभी सम्भव है जब किसान सन्तुष्ट रहे और खेती में पूरा उत्साह रखें किन्तु वह केवल किसानों की सुविधा का ही ध्यान रखने के पक्ष में नहीं था । अधिक से अधिक धन प्राप्त करने का साधन किसानों को प्रसन्न रखना था इसीलिए जहाँ किसानों के प्रति उदारता दिखाने में राज्य की आय घटने का भय हो वहाँ किसानों के साथ कठोरता का व्यवहार करने का आदेश दिया गया था किन्तु यदि इस बात का सन्देह हो जाता था कि उसके लापरवाही के कारण खेत खाली रखा है ऐसी स्थिति में उससे कर लेने का प्रयत्न किया जाता था । किसानों के साथ वर्षा न होने, बाढ़ आने आदि के कारण फसल नष्ट होने पर रियायत की जाती थी । किसानों पर स्थानीय कर्मचारी अनेक प्रकार के अत्याचार करते थे । वे उनसे नजर माँगते थे, मनमाना कर बढ़ा देते थे, उनसे वे कर भी वसूल करते थे जो सम्राट ने बन्द कर दिये थे और फसल खराब होन अथवा खेत परती पड़ जाने पर बिना रिश्वत लिए उनको छूट नहीं देते थे । कभी वे फसल तैयार होने के पहले ही कर मांगने लगते थे । सम्राट द्वारा समस्त नियम-विरूद्ध कार्यो को रोकने का आदेश दिया गया । सम्राट ने कड़ी जाच का आदेश दिया[2] और लिख भेजा था कि जो सुधरने योग्य न हों उनको नौकरी से निकालन की सिफारिश भेजी जायें ।

आमतौर पर कृषकों की दशा खराब थी। उनको पहले की अपेक्षा अधिक कर देना पड़ता था । पटवारी, मुकद्दम, कानूनगो, तथा स्थानीय राजकर्मचारी से मिलकर उनका रक्त चूसते थे और बहुत सा धन पैदावार के आभ भाग में से भी छीन लेते थे । रिश्वतखोरों से कुछ हिस्सा पाकर ऊपर के पदाधिकारी उन्हीं का पक्ष लेते थे । किसान के पक्ष में सम्राट के आदेशों का पालन नहीं होता था परन्तु जितनी बातें उसके विरूद्ध थी उनका उपयोग किया जाता था । खेत न जोत सकने पर अन्य खेतों से इसका कर वसूल कर लिया जाता था क्योंकि उनका कहना था

1- अवधविहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ० 505,
राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ० 155

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ० 505-506,
हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ० 156,

कि खेत जान-बूझकर नहीं जोता गया है । उसकी सहायता हेतु पूरी तकावी[3] न देकर उसमें से कुछ अंश बीच वाले लोग खा जाते और उससे विभिन्न विधियों द्वारा रूपया लेने का प्रयास करते, यदि किसान अपने जीवन से ऊबकर भागने का प्रयास करता तो उसे पकड़कर पीटा जाता था । अत: किसान की अत्यधिक दयनीय दशा थी। प्रारम्भ में सम्राट ने उसके कष्टों को कम करने का प्रयास किया किन्तु आर्थिक संकट बढ़ने पर उसने भी स्थानीय कर्मचारियों को तंग करने के स्थान पर उनसे केवल अधिकाधिक धन लेने का प्रयास किया । अठारहवीं सदी में किसानों की दशा और भी खराब हो गयी ।

दक्षिण भारत पर मुगलों का अधिकार देर से हुआ और वहाँ बहुत दिनों तक साम्राज्य-विस्तार के लिए संघर्ष भी चलता रहा । युद्धों के कारण दक्षिण के किसानों की दशा बहुत बिगड़ गयी ।

औरंगजेब की दक्षिण की दूसरी सूबेदारी के समय मुर्शिदकुली खाँ उसका दीवान[1] था । शाहजहाँ ने दक्षिण के सूबों की आय बढ़ाने और कृषि की दशा सुधारने का विशेष आदेश दिया था । मुर्शिदकुली खाँ ने दक्षिण के तत्कालीन चार सूबों की भूमि कर व्यवस्था को उसी आदेश का पालन करने में ठीक किया । उसने इस्लामी सिद्धान्तों, मलिक अम्बर की प्रथाओं एवं टोडरमल को ध्यान में रखकर अपनी व्यवस्था स्थिर की। उसे अल्पसमय में ही सम्पूर्ण व्यवस्था को स्थिर करके लागू करनी थी। इसीकारण उसे सुधार करते समय किसानों की भावनाओं को भी ध्यान में रखना पड़ा । यह सर्वत्र टोडरमल वाली व्यवस्था चलाना चाहता था किन्तु किसानों ने इसका विरोध किया और वे अपनी पुरानी परिपाटी के अनुसार ही चलना चाहते थे । इसीलिए तीन विभिन्न परिपाटियाँ मुर्शिदकुली खाँ ने स्वीकृत की। कहीं-कहीं उसने कर को हलवार के आधार पर निश्चित कर दिया एक हल और एक जोड़ी बैल को आधार मानकर लगान निश्चित कर दिया गया ।

शिल्पी –

विभिन्न उद्योग धन्धों में लगे हुये शिल्पी प्राय: अपने घरों में अपने निजी

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ0 506,
एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 390,
राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 155

1- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ0 508,
एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 320,

यन्त्रों की सहायता से काम करते थें और सामान तैयार होने पर उसे बेंचकर अपना पालन-पोषण करते थे उनकी आय का ठीक अनुमान लगाना कठिन है । कुछ करों को उदार सम्राट ने इनकी आर्थिक दुर्व्यवस्था का ध्यान रखकर बन्द कर दिया था। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि साधारणतः अपना सामान्य व्यय चलाने भर के लिए इनकी आय पर्याप्त होती थी । अकबर के समय एवं उसके मृत्यु के पश्चात संभव है स्थानीय कर्मचारियों ने बीच-बीच में बन्द किये हुए कर उगाहने का प्रयास किया हो । यह भी ज्ञात होता है कि अधिकांशतः कारीगर नगरों के व्यापारियों को अपनी चीजे बेंचते थे न कि खुले बाजार में अपना सामान वेचते थे। ये लोग पूँजीवाले थे[1] अतः कारीगर की आर्थिक कठिनाइयों से लाभ उठाकर वे उससे ऐसा सौदा कर सकते थे जिससे उसको कम से कम और उन्हें अधिक से अधिक लाभ हो । सम्भवतः जो कारीगर सरकारी कारखानों[2] में काम करने वाले थे उन्हें नियमित वेतन मिलता था और इनकी आय भी कुछ अधिक होती थी। ग्रामीण क्षेत्र के कारीगर अपना सामान प्रायः सीधे खरीददार को बेंच सकते थे। इसलिए उनको कुछ अधिक लाभ होना सम्भव था किन्तु कभी-कभी उन्हें खरीददार न मिलने पर बहुत कम दाम पर भी बेंचना पड़ता होगा । दुर्भिक्ष अथवा आकाल का सामना करने में ग्राम व शहर सभी स्थानों के कारीगर अक्षम रहते थे और उस समय अन्न महंगा होने के कारण हजारों की संख्या में मर जाते थे[3]।

भारत में कारीगरों की कार्यकुशलता पैतृक शिक्षा पर ही आधारित थी। इसके कारण उन्हें श्रेष्ठता और विस्तार की ओर ले जाने वाली परिस्थितियों का निर्माण सम्भव न था । विभिन्न कारीगर अपने घरों में ही कार्य करते थे, परिवार के सदस्यों से ही कार्य सीखते थें । उनके उद्योगों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था और अधिकांशतया कारीगर निर्धन थे । इन परिस्थितियों में उद्योगों की सम्भावना नहीं की जा सकती थी । जब उत्तरकालीन मुगल बादशाहों के समय की दुर्व्यवस्था भारतीय उद्योगों को ये साधारण सुविधाएं भी प्रदान न कर सकी तब भारतीय उद्योग नष्ट होने आरम्भ हो गये शेष कार्य की पूर्ति अंग्रेजी शासन-काल में हो गयी जबकि भारत इंगलैण्ड के लिए कच्चा माल देने वाला उपनिवेश और इंगलैण्ड की बनी हुई वस्तुओं को खरीदने वाला एक अच्छा बाजार बन गया[4]। व्यवसायिक शिल्प के सदस्य

1-अवधविहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ0 578,
2-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370,
3-अवधविहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ0 578,
4-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत पृ0 371,

बहुत सीमित क्षेत्रों की मांग के लिए उत्पादन किया करते थे तथा राजदरबारों या अमीरों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे । दक्षिण भारत में शिल्पकारों तथा कारीगरों को 'अयागार' कहते थे जिन्हें गांव के सदस्यों से अयाम प्राप्त थे ये भूमिपतियों (मिरासीदार[1]) से नीचे के स्तर के माने जाते थे । ग्रामीण शिल्पकारों की श्रेणी में वस्तु उत्पादन या तो मोटी वस्तुओं के सीमित स्थानीय बाजार के लिए किया जाता था या विशाल बाजार के लिए, जिसमें विदेशी मांगें शामिल थी । इनमें साधारण किस्म का कपड़ा उत्पादन, बुनाई, तेल निर्माण, धागे, रंगना, वस्त्र रंगना, अंबारी या शण उत्पादन, टाट, गलीचे, नमक उत्पादन जैसे व्यवसाय शमिल थे[2]।

ग्रामीण शिल्पकारों और कारीगरों की उत्पादन सम्बन्धी गतिविधियाँ प्रतिस्पर्धा पर आधारित वस्तु उत्पादन के लिए नहीं थी बल्कि गांव का जन-जीवन बनाये रखने के लिए थी । ये कारीगर अपनी भूमि को अपनी जाति के सदस्य या रिश्तेदार को बेच सकते थे या छोड़कर शहर जाकर भ्रमणकारी कारीगर बन सकते थे । इस प्रकार ग्रामीण उत्पादन में सीमित रूप से लचीलापन था । दक्षिण भारत में शहरी उद्योगों का उत्पादन निरन्तर बढ़ता जा रहा था । शहरी शिल्पों में उच्च स्तर का विशिष्टीकरण आता जा रहा था । अधिकांश शिल्पकार वस्तु उत्पादक थे जो व्यापारी पूंजी की गिरफ्त में आते जा रहे थे । विदेशी व्यापार के विस्तार से शिल्पकारों पर व्यापारी पूंजी का नियंत्रण जाति प्रथा पर आधारित था । तमिलनाडु की कम्मलन जाति तथा आन्ध्र में पंचाला जाति में लोहार, बढ़ई, तांबेदार, सुनार, इत्यादि शामिल थे[3] उस समय आर्थिक महत्व, तकनीक व संगठन की दृष्टि से जहाजरानी उद्योग प्रसिद्ध था जो मूल रूप से पुलीकट, कोचीन में स्थित था । हीरे का खनिज कर्म गोलकुण्डा कर्नाटक, मैसूर, में विकसित था । यह आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ पूँजी व विशाल संख्या में रोजगार देने के लिए प्रसिद्ध था ।

कुशल शिल्पकारों की व्यवसायिक निपुणता इतनी अधिक थी कि वे सुन्दर से सुन्दर वस्तुओं का निर्माण[4] अपने औजारों से व सीमित साधनों से कर लिया करते

1-हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड-2, पृ0 754, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 369,

2-मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 284,

3-हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड-2, पृ0 755,

4 मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग दो, पृ0 284, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 369,

थे । अपनी कुशलता को वे अपने साथ संरक्षित रखते थे और अपनी कला को वह अन्य किसी वर्ग के व्यक्ति या जाति व समुदाय के पास नहीं पहुँचने देते थे। बारीक से बारीक काम में वे अभ्यस्त, अनुभवी निपुण और अत्यन्त कुशल थे। इनकी कला वंशानुगत थी । पीढ़ी दर पीढ़ी तक उनकी कला उनके परिवारो में रही। बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ विविध प्रकार के असंख्य कारीगर है प्रत्येक कार्य के लिए कारीगरों की एक निर्धारित जाति है जहाँ कि पिता से लेकर पुत्र तक व्यवसाय चलता रहता है[1] अतः बाबर के इस कथन से पता चलता है कि मुगलकाल के प्रारंभ से ही शिल्पकारों की संख्या बहुतायत थी । ये विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को निर्मित करते थे ।यही कारण है कि औरंगजेब के काल तक विभिन्न उद्योगों में हजारो की संख्या में शिल्पकार थे, जैसे कि सुनार, लोहार, टीन का काम करने वाले, बढई, पत्थर काटने वाले, नक्काशी करने वाले आदि[2] । विभिन्न कुटीर उद्योगों में वस्तु की मांग के साथ-साथ श्रम की कुशलता का भी विकास निरन्तर हुआ । शिल्पकारों की स्थिति में पूर्व कालों की अपेक्षा सुधार हुआ । उन्हें नये-नये व्यवसाय उपलब्ध हुए किन्तु उनकी आर्थिक दशा ज्यों-की त्यों बनी रही अतः शिल्पकार सामान्य जीवन व्यतीत करते थे । जो शिल्पकार शाही कारखानों में काम करते थे[3] उनके पास धन का अभाव नहीं था किन्तु जो साधारण थे ग्रामीण व्यक्तियों हेतु वस्तु का निर्माण करते एवं कुटीर उद्योगों में काम करते थे वो अपनी जीविकोपार्जन बड़ी कठिनाई से करते थे[4] । इस प्रकार के साधारण शिल्पकार मोटा अनाज खाते थे, साधारण कपड़े पहनते थे और कच्चे मकान में निवास करते थे परन्तु इस प्रकार के शिल्पकार को अत्यधिक श्रम करना पड़ता था जिससे अपने परिवार का भली प्रकार से भरण-पोषण कर सकें ।

मजदूर वर्ग -

कारीगरों के अन्तर्गत अनेक ऐसे थे जो मजदूरी करके रोटी कमाते थे। राज, संगतराश, माली, आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते थे[5]। बढ़ई, स्वर्णकार, लोहार

1-बाबर, बाबरनामा पृ0 518-20, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एव संस्कृति पृ0 154,

2-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 152, एल0पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370-371,

3-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 154,

4-मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 285,

5-अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 578,

आदि भी इनके अतिरिक्त मजदूरी के आधार पर काम करते थे किन्तु सही ज्ञान यह नहीं है कि इन सब की मजदूरी कितनी थी । आईन-ए-अकबरी में कुछ लोगों की मजदूरियाँ इस प्रकार हैं[1] -

साधारण मजदूर	-	2	दाम प्रतिदिन
कुशल मजदूर	-	3-4	दाम प्रतिदिन
बढ़ई	-	3-7	दाम प्रतिदिन
राज	-	5-7	दाम प्रतिदिन

तीन रूपये प्रतिमास पर रखे जाने वाले नौकर प्रायः मिल जाते थे । इससे इस बात का अनुमान किया जाता है कि उस समय मजदूरी काफी कम थी[2] किन्तु उनका भरण-पोषण इस मजदूरी से हो जाता था । इसका कारण यह था कि उस समय आवश्यक वस्तुओं के दाम बहुत कम थे । कुछ वस्तुओं के दाम इस प्रकार थे जैसा कि सारणी में है[3] -

क्र0सं0	जिन्स	परिमाण	मूल्य	आज कल के सिक्के और तौल
1-	गेहूँ	एक मन	12 दाम	प्रति रूपया 2।ऽ
2-	काबुली चना	एक मन	16 दाम	प्रति रूपया 1।।ऽ7।।
3-	जौ	एक मन	8 दाम	प्रति रूपया 3।ऽ5
4-	सुखदास चावल	एक मन	100 दाम	प्रति रूपया ।ऽ1
5-	साठी चावल	एक मन	20 दाम	प्रति रूपया 1।ऽ4
6-	मूँग	एक मन	18 दाम	प्रति रूपया 1।।ऽ
7-	ज्वार	एक मन	10 दाम	प्रति रूपया 2।।8
8-	प्याज	एक मन	6 दाम	प्रति रूपया 4।।
9-	लहसुन	एक मन	40 दाम	प्रति रूपया ।।ऽ7
10-	अदरख	एक सेर	2 दाम	प्रति रूपया ।ऽ1
11-	चौलाई साग	एक सेर	$\frac{1}{4}$ दाम	प्रति रूपया 2।।ऽ8
12-	अफगान भेड़	एक	$\frac{1}{4}$-2 रू0	--- ---
13-	बकरी अच्छी	एक	1/ रूपये	--- ---

1-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 492,

2-चोपड़ा पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0 122,

3-अवध बिहारी पाडण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 579

14-	गोश्त बकरी	एक मन	54 दाम	प्रति रूपया ।।ऽ
15-	घी	एक मन	105 दाम	प्रति रूपया ।ऽ।
16-	तेल	एक मन	80 दाम	प्रति रूपया ।ऽ3।।
17-	दूध	एक मन	25 दाम	प्रति रूपया ।ऽ3
18-	दही	एक मन	18 दाम	प्रति रूपया 1।।ऽ
19-	मिश्री	एक सेर	5 दाम	प्रति रूपया ऽऽ

नगर निर्माण, भवन निर्माण, नहर, जलाशय, तालाब, आदि कार्यो के लिए श्रमिकों की प्रचुर संख्या में उपलब्ध होना नितान्त आवश्यक था । बिना मजदूरों अथवा श्रमिकों के कोई योजनापूर्ण नहीं हो सकती थी । इन योजनाओं के लिए श्रमिक प्राप्त करने के कई श्रोत थे । स्थानीय योजनाओं हेतु अर्थात नहर, कुओं[1] जलाशय आदि के निर्माण के लिए कृषक उपलब्ध थे जिनकी सहायता से ऐसी योजनाएं पूरी की गयी। श्रम का दूसरा श्रोत भूमिहीन किसान थे, जो कि अपना जीवन निर्वाह करने के लिए श्रम की खोज में रहते थे ।

शहरों में विभिन्न उद्योगों मे लगे हुये औद्योगिक श्रमिकों और गाँव में कुटीर उद्योगों में लगे हुए श्रमिकों में कोई विशेष अन्तर न था[2] क्योंकि दोनों ही अपने-अपने व्यवसायों में कुशलता प्राप्त कर लेते या कुशलता रखते थे । दोनों को ही प्रशासन की ओर से कोई संरक्षण नहीं मिलता था । अन्तर केवल इतना ही था कि शहरों में शाही कारखानों में सुल्तान व उसके परिवार के सदस्य के लिए वस्तुएं तैयार होती थी या अमीरों के कारखानों में उनके लिए वस्तुएं तैयार की जाती थी किन्तु ग्रामीण कारीगर गाँव के लोगों व निकटवर्ती कस्बों या शहरों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वस्तुओं का उत्पादन किया करते थें । शहर की जनता गाँव के उत्पादन पर ही निर्भर रहती थी । गाँवों में श्रम की वाहुल्यता के कारण ही कुटीर उद्योग जीवित रह सके[3] । खेतों को जोतने, बोने, उनकी निराई, व सिंचाई, फसल की कटाई, और मड़ाई, के बाद जो भी समय कृषकों को मिलता था उसमें वे अन्य कार्य कर लिया करते थे । जिनका सम्बन्ध किसी उद्योग से न

1-हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 156,
एल0पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 368.
2-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 212,
3-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 213,

था और जो भूमिहीन थे, वे निकटवर्ती शहरों में जाकर रोजी-रोटी कमाकर अपने गाँव को वापस लौट आया करते थे ।

मुगलकाल में चाहे राजधानी हो या अन्य शहर, सभी स्थानों में कुशल व सामान्य श्रमिकों की आवश्यकता बराबर रही । सम्राट, अमीर, गणमान्य व्यक्ति, अपने लिए रहने के लिए बड़े-बड़े दुर्ग सुन्दर महल, हवेलियाँ या मकान बनवाते थ । इस कार्य क लिए उन्हें छोटे मजदूर से लेकर कुशल कारीगर[1] की निरन्तर आवश्यकता पड़ती रही । मस्जिद, मदरसों खानकाहें, दरगाहें, मकबरों तथा धार्मिक इमारतों को बनवाने में सहस्त्रों मजदूर व कारीगर राजधानी दिल्ली, तत्पश्चात आगरा, प्रान्तीय राजधानियों तथा नये व पुराने शहरों में लगे रहें। यहाँ दूर-दूर से कारीगर, मजदूर आते रह क्योंकि उनकी आवश्यकता आये दिन रहती थी ।

अतः मजदूरों का जीवन स्तर साधारण था[2] । इनकी आवश्यकताएं सीमित व न्यूनतम थी उसे अपने लिए एक धोती, अपनी स्त्री के लिए एक सूती साड़ी, रहने के लिए घास, फूस व मिट्टी की बनी हुयी झोपड़ी व खाने क लिए मोटा अनाज व मिट्टी के बर्तन की ही आवश्यकता होती थी । कृषि में कुछ काम करने के अतिरिक्त अन्य धन्धे भी किया करते थे । अधिकांश मजदूर[3] खेत बोने व काटने के समय के मध्य समय में विभिन्न कुटीर उद्योगों जैसे कि कपास, की चुनाई, बिनौले निकालने, रूई की धुनाई, सूत की कताई, वस्त्र की बुनाई, धान की कुटाई, तेल पिराई, गुड़ बनाने, डलिया या रस्सी बनाने इत्यादि के उद्योग में लग जाते थे। जिनसे उनकी अतिरिक्त आय हो जाया करती थी । उन्हें जंगलों में लकड़ी, फल, कन्दमूल, तथा गाँव के चारागाहों से अपने मवेशियों के लिए घास मिल जाती थी। वह मवेशियों का पालन करता था, जिनसे उसे घी, दूध, दही, इत्यादि प्राप्त होते थे। इसप्रकार उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी । ये संयमी तथा सन्तोषी थे। परिस्थितियों से समझौता करना जानते थे । आर्थिक शोषण के बावजूद भी इनका जीवन स्तर साधारण ही बना रहा[4] ।

1-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370,
2- एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 368,
3-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति पृ0 213.
हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन इतिहास, खण्ड- 2, पृष्ठ 357,
4- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 179,
एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 371,

अध्याय 4

व्यापार एवं वाणिज्य
(प्रमुख उद्योग एवं उत्पादन)

मुगलकाल में व्यापार का सन्तुलन भारत के पक्ष में था । निर्यात अधिक तथा उसकी तुलना में आयात कम होने से भारतीय व्यापार लाभ की स्थिति में था । मुगल बादशाहों ने जो शान्ति और व्यवस्था की स्थापना की थी उससे व्यापार वाणिज्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ा । इस पर सड़कों की सुरक्षा, सरायों का निर्माण, और बहुतायत अवैध चुंगियों का समापन, का भी प्रभाव पड़ा[1] । व्यापार निर्बाध गति से होता रहे इसके लिए राज्य ने अनुकूल वातावरण प्रदान किया लेकिन राज्य की प्रत्यक्ष रूप से व्यापार-वाणिज्य को विकसित करने के लिए कोई सुनियोजित नीति नहीं दिखायी पड़ती है । यह औरंगजेबकालीन व्यापार की एक प्रमुख खामी थी[2]। यहाँ उल्लेखनीय है कि इस दिशा में बाबर के समय से ही शासक वर्ग प्रत्यक्ष पोषक की भूमिका से विरत रहा था । आन्तरिक व्यापार सड़कों और नदियों दोनों से होता था । विदेश-व्यापार जलमार्ग एवं स्थलमार्ग दोनों से होता था । स्थलमार्ग में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वह सड़क थी जो लाहौर से काबुल तक और दूसरी सड़क जो मुल्तान से कन्धार, तक जाती थी । उस समय कई अच्छे बन्दरगाह थे जिनसे जलमार्ग द्वारा प्रभूत मात्रा में व्यापार होता था[3] । गुजरात, दक्षिण भारत में मालाबार तथा पूर्वी समुद्र तट और बंगाल में अच्छे बन्दरगाह थे । ये समुद्री मार्ग से व्यापार की सुविधा प्रदान करते थे । औरंगजेब के शासनकाल में भी पूर्ववत् भारत के व्यापारिक सम्बन्ध यूरोप, अफ्रीका, तथा एशिया के विभिन्न देशों से थे । फ्रांस, हालैण्ड, पुर्तगाल, इंग्लैण्ड, अरब, मिश्र, मध्य एशिया, फारस, लंका, वर्मा, चीन, जापान, दक्षिणी पूर्वी एशिया के द्वीप समूह, नेपाल, आदि सभी से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे । भारत फ्रांस से ऊनी वस्त्र[4], इटली और फारस से रेशम, फारस से कालीन, चीन से कच्चा

1-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 371, तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0-268,

2-जहीरूद्दीन फारूकी, का मन्तब्य थोड़ा भिन्न है वे मानते है कि तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों शिल्पों और उद्योगों को हर तरह का प्रोत्साहन दिया गया । देखिए, जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0- 504,

3-तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 407-418, डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 166 ,

4-सी0 जे0 हेमिल्टन, पृ0 32-33, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 437

रेशम, और मध्य एशिया तथा अरब से घोड़े मगाँता था[1]। भारत विदेशों से सोना और चाँदी बहुमूल्य हीरे जवाहरात का आयात करता था क्योंकि यहाँ वे कम मात्रा में उपलब्ध थे । इनके अतिरिक्त अच्छी शराब, काँच के बर्तन, मखमल, दवाईयाँ, आदि भी विदेशों से आयात किया जाता था । निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में सूती कपड़ा प्रमुख था जिसकी मांग यूरोप, अफ्रीका, और एशिया, के सभी देशों में थी । इसके अतिरिक्त काली मिर्च, नील, अफीम, चीनी, शोरा, मसाले, नमक आदि विभिन्न वस्तुएं भारत से विदेशों को भेजी जाती थीं[2] । इस प्रकार भारत का विदेशों से विस्तृत व्यापार था । डा0 जे0 एन0 सरकार के अनुसार समुद्र मार्ग द्वारा भारतीय भी बाहरी देशों से विशेष मात्रा में व्यापार करते थे इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है । थल मार्ग से ईरान तुर्की और तिब्बत के साथ भी थोड़ा बहुत व्यापार चलता ही रहता था । सोने चाँदी जैसे बहुमूल्य धातुओं तथा धनिकों के ऐश्वर्य विलास की कुछ वस्तुओं के अतिरिक्त विदेशों से बहुत ही थोड़ा माल तब भारत में आता था और उन सबके बदले में यहाँ से भेजा जाता था सूती कपड़ा तथा काली मिर्च, नील और शोरे, जैसी इनी-गिनी किस्मों का कच्चा माल । आर्थिक दृष्टि से भारत की हालत ठीक थी और वह बहुत कुछ आत्मनिर्भर ही था[3] । इस व्यापार में लाभ की स्थिति भारत की थी जो भारत की आर्थिक स्थिति को ठीक रखने में सहायक थी[4]।

इन विदेशियों का प्रायः विरोध नहीं किया जाता था वरन् बहुधा उनका स्वागत किया जाता था क्योंकि जो सामान वे लाते थे उसकी यहाँ बहुत आवश्यकता रहती थी । विदेशों से धातुओं में जो सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा और इस्पात मंगाया जाता था[5] उनमें सोना और चाँदी की विशेष मांग रहती थी । इसका कारण यह था कि स्वदेश में वे प्रायः नहीं के बराबर थें । रेशम के कपड़े इटली, ईरान, तथा तूरान से आते थे । विदेशों से अच्छे घोड़े सेना के लिए आते थे ।

1- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662,

2- तपनरायचौधरी इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया 1, पृ0 409-416, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग 2, पृ0 286

3- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 366-67,

4- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 371-372,

5- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 581, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 438

भारतीय घोड़े की नस्ल ठीक रखने के लिए बहुत चेष्टा की जाती थी परन्तु अच्छी जाति के घोड़ों की सदा कमी बनी रहती थी । भारतीय सेना में ईराकी, अरबी, तथा ईरानी घोड़े बहुत कम थे । तुर्की घोड़ों से ही प्रायः काम चलाया जाता था। घोड़ों का व्यापार जल तथा स्थल दोनों ही मार्गो से होता था|ऊँट पालने के प्रमुख केन्द्र थे, राजस्थान, गुजरात, और सिन्ध[1] । इस समय में खच्चर भी मंगाये जाते थे और उनका मूल्य कभी-कभी 1000/- रूपया तक होता था । इसके अतिरिक्त फल, मेवे, शराब, दास-दासियाँ, कस्तूरी चीनी के बर्तन लड़ाई का सामान, श्रृंगार की वस्तुएं, विचित्र और कलापूर्ण सामग्री आदि भी आते थे ।

यहाँ से विदेशों को सूती कपड़े छींट, सादे मोटे कपड़े, मलमल आदि सर्वाधिक परिमाण में आते थे । गुजरात[2] से रेशमी कपड़ा बाहर जाता था । काली मिर्च, मोती, सुन्दर आभूषण तथा दर्शनीय वस्तुएं भी विदेशों में जाती थी। डच व्यापारी बंगाल से कच्चा रेशम खरीदकर विदेश भेजते थें । नील, और, अफीम, चीनी मिश्री, की भी कुछ खपत विदेश में थी किन्तु देश की जनसंख्या को देखते हुए विदेशी व्यापार का परिमाण काफी कम था क्योंकि राज्य को औरंगजेब के समय में कुल 30 लाख रूपया चुंगी से प्राप्त होता था[3]।

भारत से सोने और चाँदी के निर्यात की अनुमति नहीं थी[4]। कोई विदेशी जब भारत के साथ व्यापार करता था तो उसे या तो विदेशी सिक्के या सोना-चाँदी लाना पड़ता था या ऐसी वस्तुएं लानी होती थी जिनकी भारतीय बाजारों में अधिक मांग होती थी । आयात बहुत सीमित मात्रा में होता था । केवल कुछ विदेशी महंगी एवं विलासिता की वस्तुएं छोड़कर भारत आत्मनिर्भर था । भारतीय आयात और निर्यात की वास्तविक मात्रा का सही-सही निर्धारण करने के लिए आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं । मोरलैण्ड का विचार है कि जिन बाजारों पर पहले अरबों का प्रभुत्व था उनको यूरोपीय व्यापारियों ने अपने प्रभुत्व में कर लिया । निर्यात में वृद्धि किसी नये व्यवसाय के प्रारम्भ का सूचक नहीं है । डचों ने कुछ नये व्यापारिक

1- तपनराय चौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया 1, पृ0-350,

2- जदुनाथ सरकार, औरंगेजब, पृ0 439, तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 401,

3- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 581,

4- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 492,

क्षेत्र खोले जैसे वे बंगाल के रेशम और कोरोमण्डल के चमड़े को जापान निर्यातित करते थे । भारत से यूरोप को पश्चिमी घाट से पाँच लाख रूपया का सामान भेजा जाता था बंगाल और पूर्वी तट से तीन लाख रूपये का सामान भेजा जाता था। ये आँकड़े मोरलैण्ड ने 1658-60 ई0 के बारे में दिये है ।

व्यापार के क्षेत्र में अग्रणी व्यक्तियों में वीरजी वोहरा[1] का नाम उल्लेखनीय है। यह सूरत का प्रमुख व्यापारी था । इसका व्यापार इतना विस्तृत था कि इसे विश्व का सबसे बड़ा व्यापारी माना जाता था । इसका कारोबार बहुत बड़े पैमाने पर था । विदेशी वस्तुएं खरीदकर आन्तरिक क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था । सूरत के पीपर व्यापार पर इसका नियंत्रण था । मालाबार के बन्दरगाहों के व्यापार पर इसका नियंत्रण था । दूसरा प्रमुख व्यापारी अब्दुल गफ्फूर था । इसका व्यापार ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के करीब-करीब बराबर था जो 30 या 40 लाख रूपये का था[2]।

उद्योग एवं उत्पादन -

उद्योग एवं उत्पादन के क्षेत्र में प्रगति होती रही थी । इसी से आकृष्ट होकर यूरोपीय व्यापारी भारत की ओर दौड़ पड़े थे । नगरों की बढ़ती हुयी जनसंख्या एवं नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि भी इसी तथ्य की ओर इंगित करते है । कई बड़े-बड़े सम्पन्न नगरों का उत्थान मुगलकाल में हुआ । विभिन्न यूरोपियन जातियाँ व्यापार करने के उद्देश्य से भारत आयी । ये सभी इस बात के प्रमाण थे कि भारत में अच्छी मात्रा में उद्योग थे । इस सम्पन्नता एवं व्यापार के लिए केवल कृषि उत्तरदायी नहीं हो सकती थी । कुछ बड़े उद्योग थे, कुछ कुटीर उद्योग, थे । क्षेत्र विशेष में कोई न कोई प्रमुख उद्योग होता था जैसे गुड़ और चीनी बनाने का उद्योग मुख्यतया बंगाल, गुजरात[3], और पंजाब में था । नील और अफीम, बनाने के उद्योग महत्वपूर्ण थे । यें दोनों वस्तुएं विदेश भेजी जाती थी जिनसे प्रचुर मात्रा में आय होती थी। कुटीर उद्योग असंख्य थे जिनमें लगे हुए लोग जातिगत पेश से सम्बद्ध थे । जैसे कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते थे । मिट्टी के बर्तन बनाने

1- मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 156, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति, पृ0 294,

2- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 493, (हेमिल्टन 1 पृ0 89-117)

3- एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 369, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 284

के लिए काशी और दिल्ली अधिक विख्यात थे । दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं कलात्मक वस्तुएं[1] बनाने के लिए लकड़ी का कार्य होता था । जहाज निर्माण उद्योग भी भारत में था। यात्रियों को ले जाने वाले तथा सामान ढोने वाले बड़े-बड़े जहाजों का निर्माण हुआ था । भारत में लोहा उद्योग विकसित स्थिति में था । मुख्य रूप से लोहे का प्रयोग हथियार हेतु होता था । परम्परागत हथियार जैसे तलवार, कटार, भाला, बनाने में भारतीयों ने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी । तोपें एवं बन्दूकें भी बनायी जाती थी लेकिन यूरोपीय तोपों एवं बन्दूकों में गुणवत्ता अधिक थी । गोलकुण्डा के किले में रखी हुयी औरंगजेब की "फतेह रतब" तोप पर और इसके नाल मुखपर सुन्दर नक्काशी की गयी है । उन दिनों की एक अन्य भारी-भरकम तोप मालिका-ए-मैदान भी है । फारस, टर्की एवं यूरोप के देशों से इस क्षेत्र में भारत को पिछड़ा ही माना जाएगा । शस्त्र निर्माण उद्योग बड़े पैमाने पर प्रचलित था । गुजरात और पंजाब लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने में प्रख्यात थे । धातु उद्योग के अन्तर्गत बर्तन, मूर्तियाँ आदि भी बहुतायत में बनती थी । बर्तन बनाने के लिए तांबाँ, काँसा, और पीतल का प्रयोग किया जाता था । आभूषण बनाने के लिए सोना-चाँदी एवं हाथी दांत का प्रयोग किया जाता था । अन्य बहुमूल्य वस्तुएं जैसे हीरा, पन्ना, मोती, आदि का भी इस्तेमाल किया जाता था । पंजाब एवं कुमायूं की नदियों से सोना प्राप्त किया जाता था । राजस्थान एवं मध्यभारत में ताँबे की खानें थी । गोलकुण्डा एवं छोटा नागपुर में हीरे की खानें थी । गोलकुण्डा के ही खान से विश्वविख्यात कोहिनूर का हीरा प्राप्त हुआ था[2] । शराब बनाने का उद्योग भारत में बहुत बड़ा था किन्तु भारत में अच्छी शराब नहीं तैयार होती थी । यही कारण था कि यूरोप और फारस से शराब मँगाया जाता था । चमड़े की वस्तुएं बनाने का उद्योग अच्छी स्थिति में नहीं था । जनसाधारण में व्याप्त गरीबी के कारण साधारण व्यक्ति चमड़े की चप्पल या जूते नहीं पहनते थे । चमड़े का थैला, घोड़े की रासें, मश्क आदि पर्याप्त मात्रा में चमड़े द्वारा ही बनाई जाती थी[3] । इस उद्योग में देश के विभिन्न भागों में व्यक्ति लगे हुये थे । पंजाब की पहाड़ियों से

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 393, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन एवं समाज एवं संस्कृति, पृ0 294,

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 256, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0-370,

3- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0-98,

नमक[1] प्राप्त किया जाता था । समुद्र एवं झील के पानी से उसे तेयार किया जाता था । मोती निकालने का उद्योग समुद्र तट पर पर्याप्त अच्छी स्थिति में था । यह दक्षिण भारत का एक प्रमुख व्यवसाय था । फतेहपुरसीकरी, बरार तथा बिहार में काँच के बर्तन, शमादान आदि बनाने का उद्योग बहुत प्रगतिशील था । यहाँ काँच की सुन्दर वस्तुएं तैयार की जाती थी। इत्र सुगन्धित तेल, गुलाब जल, आदि वस्तुओं के उत्पादन के लिए जौनपुर एवं गुजरात प्रसिद्ध थे । वास्तुकला से सम्बन्धित कार्य औरंगजेब के काल में पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया । अमीर वर्ग इसमें बहुत रूचि रखता था । इमारतें, मस्जिदें, मकबरे बनाने का कार्य होता रहा । पहले मुगल बादशाहों और राजदूत राजाओं के द्वारा बड़े-बड़े किले और महल बनवाये गये थे। इस कारण भारत में पत्थर काटने और इमारतें बनाने में दक्ष शिल्पियों की भरमार थी[2] । औरंगजेब से संरक्षण न पाने के कारण इन्हें या तो अमीरों के यहाँ काम ढूंढना पड़ा या स्थानीय स्वायत्त शासकों के यहाँ । थट्टा में पीला पत्थर, जयपुर तथा धौलपुर में सफेद संगमरमर पाया जाता था। शोरा भी भारत में तैयार किया जाता था ।

भारत का सर्वाधिक बड़ा उद्योग कपड़ा निर्माण था[3] । भारत में सभी प्रकार का सूती, ऊनी, रेशमी, कपड़ा तैयार किया जाता था । भारत में अच्छे कालीन एवं शाल तैयार किये जाते थे । कालीन बनाने के लिए आगरा, मुल्तान, फतेहपुर-सीकरी, अलवर, प्रसिद्ध थे । भारतीय कालीन उतनी श्रेष्ठ कोटि के नहीं होते थे जितने कि फारस के कालीन । कश्मीर और बंगाल में रेशम का उत्पादन होता था और उससे रेशमी कपड़ा बनाया जाता था । रेशमी कपड़ों को विभिन्न रंगों में तैयार किया जाता था । उन पर कसीदा तथा सोने चाँदी के धागों का कार्य किया जाता था[4] । स्वयं बादशाह अपने कारखाने में ऐसे वस्त्र तैयार कराते थे औरंगजेब भी इसका अपवाद नहीं था । आगरा, लाहौर, दिल्ली, ढाका, तथा

1- मुगलकाल में नमक बहुत सस्ता था । जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 491, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 137,

2- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370,

3- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 492-93,
मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0- 283-284,

4- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0-93, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति, पृ0 292,

अहमदाबाद में अनेक शाही कारखानें थे । तब भी अच्छा रेशमी कपड़ा विदेशों से मंगाया जाता था । ऊनी वस्त्र बनाने का उद्योग केवल पहाड़ी प्रदेशों और मुख्यतया कश्मीर, पंजाब, और कुमायूं, के क्षेत्रों तक सीमित था[1]। कश्मीर तथा लाहौर में बढ़ियाँ ऊनी वस्त्र और शाल तैयार किये जाते थे[2]। अबुल फजल के कथन के अनुसार अकबर ने लाहौर में 1000 कारखाने आरम्भ किये थे । जहाँगीर ने अमृतसर में ऊनी वस्त्रों के उद्योग को आरम्भ किया था । भारतीय कारीगरों ने इस क्षेत्र में बहुत उन्नति की थी । विदेशी यात्रियों के विवरणों में उनके कार्य की प्रशंसा प्राप्त होती है[3] । अच्छे ऊन का आयात भी किया जाता था । बंगाल में सोनारगाँव, उत्तर प्रदेश में बनारस, और आगरा, सिन्ध तथा पंजाब में लाहौर, गुजरात में अहमदाबाद, बड़ौदा भड़ौच और सूरत, खानदेश में बुरहानपुर और गोलकुण्डा सूती कपड़ा तैयार करने के लिए विख्यात थे। ढाका की मलमल विश्वविख्यात थी । भारतीय सूती कपड़े की मांग यूरोप के देशों तथा चीन, जापान, फारस, अरब, मिश्र, अफ्रीका, आदि में अधिक थी । भारत के सूती कपड़े का उद्योग[4] उस समय तक सफलता से चलता रहा जब तक इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति नहीं हुयी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल के अन्तर्गत भारत के इस महत्वपूर्ण उद्योग को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया गया । भारत में सभी प्रकार के उद्योग थे यद्यपि इनमें से बहुत कम ही उद्योग ऐसे थे जिनका उपयोग विदेशी व्यापार के लिए किया जा सकता था ।

विभिन्न प्रान्तों के उत्पादन के बारे में मनूची ने निम्नलिखित जानकारी दी हैं[5]-

1- दिल्ली- अनाज

2- आगरा- सफेद कपड़ा, रेशमी कपड़ा, सोने और चाँदी के तारों से बना कपड़ा, लाख, नील,

3- लाहौर- अच्छे किस्म का सफेद कपड़ा, सभी रंगों में सिल्क, कढ़ाई में काम, कालीन, तम्बू, तलवार, ऊन, जूता, मोजा, नमक,

---

1- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370,

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं आर्थीक इतिहास, भाग-2, पृ0-93, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 284,

3- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370-371, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 284,

4- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 495, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 283, राधेश्याम, मयकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 292,

5-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 495,

4- अजमेर	सफेद कपड़ा, अनाज, मक्खन, नमक,
5- गुजरात	सोने चाँदी का कपड़ा, सिल्क, सोने चाँदी का काम, गहने रत्न
6- मालवा	सफेद और रंगीन कपड़े ।
7- पटना	सफेद अच्छे कपड़े ।
8- मुल्तान	डिजाइन वाले कपड़े ।
9- काबुल	घोड़ा, ऊँट, फल, चमड़ा ।
10- थट्टा	सफेद अच्छे कपड़े, डिजाइन वाले कपड़े, चमड़ा, अनाज, मक्खन,
11- भक्खर	सफेद और रंगीन कपड़ा और अनाज ,
12- उड़ीसा	सफेद कपड़ा और चावल,
13- काश्मीर	सफेद ऊनी कपड़ा, लकड़ी के काम और फल,
14- बनारस	रेशमी, सोने-चाँदी के कपड़े, महिलाओं के प्रयोग हेतु वस्तुएं,
15- औरंगाबाद	सफेद सिल्क के कपड़े, चीनी, आम, नारियल, चावल,
16- बरार	मक्का, सब्जी, गन्ना,
17- बुरहानपुर	सफेद और रंगीन कपड़े, अनाज,
18- वगलाना	सफेद कपड़े, अनाज,
19- दक्कन	सफेद और सिल्क के कपड़े ,
20- उज्जैन	अनाज और नमक,
21- राजमहल	सफेद कपड़े और चावल,
22- गोलकुण्डा	हीरे के खान, सुन्दर डिजाइन के कपड़े, लोहा ,

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक वितरण प्रणाली कारीगरों को संगठित व एकत्रित करके जीविका प्रेरित उत्पादन व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित करने लगी थी। अधिक कार्य के लिए वेतन व भुगतान नकद और वस्तु के रूप में देने का रिवाज आरम्भ हो चुका था परन्तु इससे अधिक मान्य तरीका था कारीगर परिवारों को ग्रामीण उत्पादन का निश्चित हिस्सा या भूमि का कुछ भाग दिया जाना ।

अधिकांश कारीगर अग्रिम रकम पहले ही से ले लेने की प्रथा अपनाते जा रहे थे । यह अग्रिम रकम या पेशगी खरीददारों द्वारा दी जाती थी या मध्यस्थ व्यक्तियों के द्वारा । सन् 1664 ई0 के बाद इस स्थिति का वर्णन सभी दस्तावेजों में मिलता है । यह पेशगी देने की प्रथा या ददनी व्यवस्था[1] कई कारणवश विकसित

1-हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग-2, पृ0 750,

हुयी । उस समय निर्मित वस्तुओं की मांग यूरोपीय व्यापारियों द्वारा की जा रही थी इसके लिए ये अग्रिम राशि देकर माल खरीदते थे । यूरोपीय व्यापारियों की विशेष मांग व सुझाव के अन्तर्गत कारीगरों को अपना लूम बदलना पड़ता था । यह जोखिम "ददनी" व्यवस्था से कम हो जाती थी क्योंकि कारीगरों को अग्रिम रकम मिल जाती थी और वे अपने को सुरक्षित महसूस करते थे अधिकांश कारीगर कच्चे माल तथा औजारों की खरीद पर इतनी पूँजी नहीं खर्च कर पाते थे ऐसी स्थिति में ददनी व्यवस्था अपनायी जाती थी[1] । इस व्यवस्था में कारीगर व्यापारी खरीददारों पर वहाँ अधिक निर्भर करते थे जहाँ कच्चा माल या तो महंगा था या बहुत दूर से लाया जाता था । हिन्दुस्तान में आभूषण बनाने के लिए जवाहरात पेगू से लाये जाते थे[2]। इस स्थिति में खरीददार व्यापारियों का नियंत्रण केवल उत्पादक पर ही हो सकता था, उत्पादन व्यवस्था पर नहीं ।

बाजार से प्रेरित उत्पादन का एक अन्य प्रभाव उत्पादन का स्थानीकरण था। आन्तरिक व विदेशी व्यापार के विस्तार ने इस प्रवृत्ति को सहयोग दिया। यूरोपीय कम्पनियों के व्यापारी विभिन्न स्थानों में जाकर खरीददारी किया करते थे चाहे वे गाँव हो या शहर । "औरंग" (वह केन्द्र जहाँ कारीगरों का समुदाय एकत्र होकर रहने लगा था) विदेशी मांग की पूर्ति करने लगे थे । इस प्रकार के "औरंग" कपड़े के उत्पादन में कहीं अधिक थे । ढाका से सूरत तक सभी प्रमुख नगरों में भारी संख्या में कारीगर मौजूद थे । इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप बाजार व्यवस्था का भी विस्तार हुआ । विभिन्न प्रकार के कारीगरों के समुदाय विशाल संख्या में आकर वाणिज्य व उत्पादक केन्द्रों, निर्यात करने वाले समुद्री तटों यूरोपीय फैक्टरी वाले शहरों में तथा अन्य शहरी केन्द्रों में संगठित होने लगे। इस प्रकार विभिन्न "औरंग" अलग-अलग वस्तुओं के लिए विख्यात होने लगे सूरत व अहमदाबाद कपड़े व रेशमी वस्त्रों के लिए, हुगली कई वस्तुओं के लिए जिनमें रेशम, अफीम, तेल, चीनी, मक्खन, टाट के कपड़े, रजाई, गलीचे, फर्नीचर, तम्बू, हाथी दांत की वस्तुएं, आदि शामिल थी। श्रीनगर ऊँनी शाल व ऊँनी वस्त्रों, ऊँनी गलीचे जौनपुर में, कालपी मिश्री के लिए, अलवर शीशे के लिए । हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों से कपड़ा, उसे नीला या काला रंगने के लिए, आगरा या अहमदाबाद ले जाया जाता था[3] ।

1- हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड-2, सरकार, पृ0 750-51,

2- चोपड़ा,पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थीक इतिहास, भाग-2, पृ0 102. राधेश्याम. मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति. पृ0 293 294.

3- हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड-2, पृ0 751-52, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 291,

शहरी और ग्रामीण उद्योगों के बीच अन्तर बहुत स्पष्ट नहीं था फिर भी कुछ ऐसे उद्योग थे जो ग्रामीण व्यवस्था से सीधे ढंग से जुड़े हुये थे तथा कुछ वस्तुओं का उत्पादन शहरी आबादी या विदेशी बाजार के लिए मूल रूप से किया जाता था। साधारण कपड़े का उत्पादन तेल, बनाना, लकड़ी, धातु, चर्म बाँस, आदि से बनी वस्तुओं का उत्पादन ग्रामीण आबादी के लिए ग्रामीण उत्पादकों द्वारा किया जाता था[1]। यह हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रान्त व क्षेत्रों में विस्तृत था ।

महाराष्ट्र व पश्चिमी हिन्दुस्तान में ग्रामीण कारीगरों व शिल्पकारों को संयुक्त रूप से बलूतेदार कहा जाता था । जिनमें 12 प्रकार के कारीगर शामिल थे, जैसे बढ़ई, लोहार, कुम्हार, मोची, नाई, धोबी, आदि । इन बारह प्रमुख व्यवसायों के अतिरिक्त एक अन्य श्रेणी के ग्रामीण कारीगर या व्यवसायी थे जिन्हें अलूतेदार कहा गया[2] जैसे दर्जी, माली, पानवाले आदि । ये बड़े गाँव के कुछ क्षेत्रों में ही देखे जाते थे । बलुतेदार व अलूतेदार की विभिन्न सूचियों से ऐसा प्रतीत होता है कि बुनकर तथा रंजक या रंगरेज ग्रामीण मांग से अधिक जुड़े थे ।

हिन्दुस्तान का शहरी उत्पादन काफी विस्तृत था । शहरी उद्योगों की वस्तुओं की मांग काफी अधिक थी जो विदेशी निर्यात और विशाल आन्तरिक आबादी के कारण बनी थी । उत्तर के सभी शहर किसी न किसी उद्योग से जुड़े थे । पश्चिमी हिन्दुस्तान में कई शहरी उद्योग विकसित थे। इनमें प्रमुख उद्योग कपड़े व रेशम की बुनाई के थे जिनके लिए औरंगाबाद, वारंगल, मछलीपट्टम, इत्यादि प्रसिद्ध थें। मछलीपट्टम कालीन की बुनाई का प्रमुख केन्द्र था। आधुनिक निजामाबाद[3] के समीप कालाघाट लोहे से बनी तलवार, चाकू, खुखरी तथा बल्लम, इत्यादि के लिए प्रसिद्ध था । कल्याण पीतल की वस्तुओं के लिए, औरंगाबाद सजावट की चीजों के लिए, नेवासी साधारण कागज के लिए प्रसिद्ध था । पुणे में कपड़े का उत्पादन, टोकरी बनाने तथा इत्र के उत्पादन के अतिरिक्त सरकारी कारखाने भी थे[4]।

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड-2, पृ0 752-53, एल0पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 367-368,

2- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड-2, पृ0 754,

3- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 322, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 293,

4- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 99,

इस प्रकार शहरी उद्योगों का महत्व बाजार व्यवस्था, वितरण प्रणाली व मुद्रा-व्यवस्था के उत्थान के साथ बढ़ता जा रहा था तथा ये उद्योग हिन्दुस्तान की उत्पादन व्यवस्था को विस्तृत रूप से प्रभावित करने लगे थे । न केवल उच्च व साधारण श्रेणी के कपड़ों, रेशम, रंगने सम्बन्धी सामग्री, शोरा, नील, इत्यादि का विशाल स्तर पर उत्पादन होने लगा था बल्कि जहाजरानी निर्माण, खनिजकर्म व शाही कारखाने भी विशाल पैमाने पर उत्पादन के लिए महत्व रखते थे[1]।

इस प्रकार वस्तु उत्पादन एवं वितरण प्रणाली के क्षेत्र में अन्र्तक्षेत्रीय निर्भरता बढ़ती जा रही थी । जिसके फलस्वरूप हिन्दुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था यूरोपीय या अन्य विदेशी बाजारों से जुड़ने लगी थी ।

खुलासत-उत-तवारीख में विभिन्न प्रान्तों के उद्योगों का वर्णन निम्नवत किया गया है[2] :-

1- आगरा -

बयाना से उत्पादित चीनी सबसे अधिक सफेद थी कालपी में भी चीनी का उत्पादन होता था । फतेहपुर और अलवार सुन्दर कालीनों के लिए प्रसिद्ध थे । अलवर सीसे के सामान के लिए भी प्रसिद्ध था । आगरा में पगड़ी पर सुन्दर सोने और चाँदी का काम किया जाता था ।

2-इलाहाबाद -

बनारस, जलालाबाद, और मऊ में कपड़े बनाये जाते थे । जौनपुर और जफरावल में ऊँनी साल बनाये जाते थे ।

3-अवध -

अयोध्या के पास से सोना प्राप्त किया जाता था ।

4-बिहार -

गया के पास राजगृह में पत्थर तराश कर आभूषण बनाये जाते थे । इस जिले में अच्छा कागज बनाया जाता था । इस प्रान्त में ग्लास और तरह-तरह के कपड़े बनाये जाते थे ।

1-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड-2, पृ0 754-755,

2-सुजानराय भण्डारी, खुलासत-उत-तवारीख-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 494,

5-<u>बंगाल</u> -

घोराघाट में रेशम जूट के समान कपड़े बनाये जाते थे । ''गंगाजल'' कपड़ा बरबकाबाद में, अच्छे मलमल का कपड़ा सोनारगांव में बनाया जाता था । बंगाल चटाइयों के लिए प्रसिद्ध था ।

6-<u>मालवा</u> -

यहाँ अच्छे कपड़े बनाये जाते थे ।

7- <u>गुजरात</u> -

यहाँ सोने की कढ़ाई, मलमल की बुनाई, होती थी । पाटन में अच्छे कपड़े बनाये जाते थे । सोमनाथ में तलवार, कटार, धनुषबाण बनाये जाते थे । नौसारी में इत्र बनाया जाता था । रान में नमक बनाया जाता था ।

8-<u>मुल्तान</u> -

फूल-पत्तियों वाले कालीन,

9-<u>पंजाब</u> -

बजवारा में वस्त्र उद्योग प्रसिद्ध था । सुल्तानपुर में छींट तथा कढ़े हुये कपड़े बनाये जाते थे । स्यालकोट में कागज, कढ़े हुये कपड़े, मेजपोश, टीकोजी और छोटे तम्बू बनाये जाते थे । समसाबाद में नमक की पहाड़ियों के पास तश्तरी, ट्रे, लैम्प, आदि वस्तुएं बनायी जाती थी ।

10-<u>खानदेश</u> -

खानदेश में अच्छे कपड़े बनाये जाते थे ।

औरंगजेब उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र मे एकाधिकार के विरूद्ध था । उसने एकाधिकार रोकने का प्रयास किया । ''मीरात-ए-अहमदी'' में लिखा है कि अहमदाबाद और अन्य परगनों में चावल की खरीद और बिक्री पर कुछ लोगों ने अपना एकाधिकार जमा लिया था । जो व्यक्ति एकाधिकार जमा लेता था उसकी अनुमति के बिना कोई अन्य व्यक्ति व्यापार में नहीं लग पाता था । इसलिए चावल महंगा हो गया[1]। कुछ वर्षो के पश्चात इस प्रकार के एकाधिकार को निरूद्ध करन

1-अलीमुहम्मद खाँ, मीरात-ए-अहमदी, पृ0 260-62,जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 495-96,

के लिए एक और आदेश औरंगजेब ने दिया । औरंगजेब ने अपने पौत्र अजीमुश्शान को जो बंगाल का सूबेदार था, निजी व्यापार करने पर एक पत्र द्वारा फटकारा था[1]।

जनता की आवश्यकताएं सीमित थी । वे विदेशी वस्तुएं खरीदने की क्षमता नहीं रखते थे । व्यापारी प्रतिष्ठा वाले अनेक नगर जल तथा स्थल मार्गो के किनारे स्थापित थे । इससे आवागमन एवं सामानों के आयात निर्यात में सुविधा होती थी। प्रत्येक सरकार में कम से कम एक प्रधान नगर रहता था । सरकार में कई नगर भी हो सकते थे । परगना में भी नगर या छोटा कस्बा होता था । व्यापार-वाणिज्य का सम्बन्ध नगरीकरण से जोड़ा जा सकता है । मध्यकाल में नगरीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आने से व्यापार-वाणिज्य में वृद्धि हुई लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति के कारण औरंगजेब अपनी ओर से कोई सहयोग न तो नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने में और न ही व्यापार वाणिज्य बढ़ाने में दे पाया । वे पूर्ववत चलते रहे । युद्धों के समय कई वस्तुओं की मांग बढ़ जाती थी । जिसकी आपूर्ति के लिए व्यापारी वर्ग की सक्रियता बनी रहती थी । निम्नलिखित उत्पादन औरंगजेबकालीन मुगल साम्राज्य में भी होते रहे ।

चीनी तथा मिश्री -

चीनी तथा मिश्री बंगाल, गुजरात और पंजाब में गुड़ को साफ करके बनायी जाती थी[2] । चीनी का भाव गुड़ की अपेक्षा और मिश्री का भाव चीनी की अपेक्षा अधिक था । मिश्री का उपयोग धनी वर्ग ही करते थे क्योंकि यह महँगी होती थी । पाँच रूपये सेर मिश्री अकबर के समय में मिलती थी इससे औरंगजेब के समय के मूल्य का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है जो सम्भवत: इससे कुछ अधिक रहा होगा । खाने के साथ-साथ औषधि के रूप में इसका उपयोग किया जाता था ।

अफीम -

अफीम बिहार और मालवा में मुख्यत: तैयार की जाती थी । इसका उपयोग अनेक रूपों में किया जाता था । मादक द्रव्य एवं अनेक औषधियाँ बनायी जाती थी । यह आय का एक अच्छा साधन था । इसका उपभोग धनी वर्ग के

1- जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 496,

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0 98, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 369,

लोग अधिक करते थे । इसका निर्यात भी किया जाता था[1] ।

नील -

मुगलकाल में नील के उत्पादन के लिए बयाना सर्वाधिक प्रसिद्ध था । यहाँ की नील बहुत अच्छी गुणवत्ता वाली होती थी । लाहौर से लेकर अवध तक नील का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होता था । नील की खेती कुछ अन्य स्थानों में भी होती थी । नील का इस्तेमाल घरेलू बाजार एवं निर्यात[2] दोनों के लिए किया जाता था । वस्त्रों के रंगाई-छापाई का जो व्यवसाय भारत में फल-फूल रहा था उसके कारण नील का व्यापार बहुत उन्नतिशील दशा में था ।

मिट्टी के बर्तन एवं खिलौने -

कुम्हार जाति के लोग पुश्तैनी रूप से मिट्टी के बर्तन[3] एवं खिलौने प्राय: हर गांव में बनाते थे उनकी खपत स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति में होती थी । यह वास्तव में उद्योग के रूप में कम था घरेलू उत्पादन के रूप में अधिक था । इससे कोई अधिक आय नहीं होती थी । नियमित रूप से इन वस्तुओं की बिक्री होती रहे यह सम्भव नहीं था । लोग बहुत आवश्यक होने पर इन वस्तुओं को खरीदते थे । शादी विवाह के अवसर पर, त्योहार के अवसर पर तथा मेले एवं साप्ताहिक बाजारों में दिल्ली, काशी, चुनार, आदि स्थानों में बनी हुयी मिट्टी की कलात्मक वस्तुओं की मांग समृद्ध वर्ग में बहुत थी । इन वस्तुओं की गुणवत्ता एवं कलात्मकता प्रशंसनीय थी । मिट्टी के खिलौने भी बनते थे । उनकी खपत अधिक नहीं थी।

लकड़ी के सामान -

बढ़ई साधारण एवं बारीक दोनों ही काम करते थे । वे ही खेती के यन्त्र, चारपाई, सन्दूक, बैलगाड़ी, नाव, तख्त, आदि तथा इमारतों में काम आने वाली सामग्री तैयार करते थे । इनमें से अधिकांश वस्तुएं साधारण होती थी जिनमें कोई कलात्मकता नहीं होती थी । वे स्थानीय इस्तेमाल की वस्तुएं थी । उनका इस्तेमाल गाँव के गरीब अमीर सभी करते थे परन्तु जो सामान धनी वर्ग अथवा राजदरबार के लिए तैयार किया जाता था वह उच्च कोटि के कारीगर ही तैयार कर सकते थे । उच्च कोटि के लकड़ी के कारीगर शाही कारखानों में थे । वे सुन्दर मंजूषायें,

1-अवधविहारी पाण्डय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 574, चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0 58,

2-जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 492,

3-चोपडा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0-98, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 292,

सुन्दर बहलियाँ, काम की हुई चारपाइयाँ, और नौकायें, तैयार करते थे । लकड़ी का आलंकारिक काम कश्मीर और कर्नाटक में अच्छा होता था[1]। तटीय व्यापार हेतु इस काल में अनेक नावें तथा जहाज बनाये गये जो 1000 मन से 6000 मन तक सामान ले जा सकती थी । बड़ी भीमकाय नावें हाजियों के लिए बनाई गयी जिनमें 30,000 मन बोझ जा सकता था किन्तु समुद्र यात्रा तथा युद्ध के लिए जहाज नहीं बने[2] ।

लोहे के सामान-

लोहे से अनेक वस्तुओं का निर्माण होता था । स्थानीय आवश्यकता की वस्तुएं गाँव में लोहार बनाते थे । लोहारों का काम अत्यधिक महत्वपूर्ण था । वे युद्ध सामग्री भी तैयार करते थे । तीर, तलवार, कटार[3], बर्छे, भाले, आदि बनाने में वे दक्ष थे । वे तोप और बन्दूक बनाने में दक्ष नहीं थे क्योंकि उनका निर्माण घरेलू स्तर पर नहीं किया जा सकता था । लोहार पुश्तैनी रूप से अपने धन्धे में लगे हुये थे वे उन्हीं वस्तुओं को बनाने में कुशल थे जिनको उनके परिवार में कई पीढ़ियों से बनाया जाता था । उनसे नयी तकनीक के विकास की आशा नहीं की जा सकती है । राज्य ने अपनी ओर से तकनीकी विकास के लिए कोई सकारात्मक कदम नहीं उठाये । राज्य ने अपनी आवश्यकता की महंगी वस्तुएं शाही कारखानों में बनवायी[4]। राज्य का सम्बन्ध कारखाने के बाहर के लोहारो से सीधे रूप में नहीं था । सम्राटों ने अपने कारखानों में उत्कृष्ट युद्ध सामग्री तैयार करने की समुचित व्यवस्था नहीं की और उन्होने विदेशी तकनीक का आयात करने का समुचित प्रबन्ध नहीं किया । इसी भाँति उन्होने बड़ी-बड़ी कला के निर्माण की ओर भी समुचित ध्यान नहीं दिया । सर्वत्र ही लोहारों का काम पड़ता था परन्तु बड़े नगरों में ही अधिक कुशल कारीगर थे ।

अन्य धातुओं का व्यवसाय -

पीतल, ताँबे, काँसे कस्कुट, आदि के बर्तन कुछ लोग बनाते थे । इसके अनेक केन्द्र थे । ताँबे के अच्छे कारीगर दिल्ली के पास थे । पीतल के अच्छे बर्तन काशी में बनते थे । काँसे के सुन्दर बर्तन बंगाल में तैयार किये जाते थे ।

1-चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 98,

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 575,

3- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 94, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 293,

4- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 576,

धातु के बर्तनो का प्रयोग प्रायः हर घर में होता था । धातु के शौकीन बर्तन तथा चीनी मिट्टी के कलापूर्ण बर्तन[1] उच्च वर्गो में काम आते थे बाहर से भी चीनी मिट्टी के बर्तन मंगाये जाते थे ।

आभूषण-

स्वर्ण रजत हीरे जवाहरात तथा अन्य बहुमूल्य धातुओं के कीमती आभूषण सजावटी सामान, सोने-चाँदी के बर्तन आदि भी बनाये जाते थे इनके निर्माण में लगे हुये स्वर्णकार बहुत दक्ष होते थे । वे बहुत धनी होते थे । उनका सामान देश के अन्दर और बाहर महंगे दामों पर बिकता था[2]।

शासक वर्ग तथा धनी वर्ग के लोग सोने-चाँदी के बर्तन इस्तेमाल करते थे । कुछ वस्तुएं सजावटी भी होती थी जैसे मूर्तियों के आभूषण तथा स्वर्ण-रजत आच्छादन मुकुट इत्यादि । इसी प्रकार मोती, हाथी दांत, मूंगा, सींग, चन्दन, आदि की भी बहुमूल्य वस्तुएं तैयार की जाती थी ।

खाद्य पदार्थ-

विदेशी यात्रियों तथा भारतीय इतिहासकारों ने भी भारत के नगरों तथा कस्बों में प्रचुर मात्रा में तथा सस्तें सामानों के उपलब्ध रहने का उल्लेख किया है। भारत के उत्तरी प्रान्त में अपरिमित प्राकृतिक सम्पदा थी । जमीन इतनी उपजाऊँ थी कि उसमें प्रतिवर्ष दो फसलें उगायी जाती थी । सात प्रकार की फसले एक ही मौसम में होती थी । सिरसा के अति उत्तम प्रकार के चावल, कन्नौज में चीनी, गेहूँ, और पान मालवा में तथा श्रेष्ठ कोटि का गेहूँ ग्वालियर में उपजाये जाते थे। कारा तथा इलाहाबाद क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में चावल, ईख तथा गेहूँ की उपज होती थी जिसे दिल्ली तथा अन्य स्थानों को भेजा जाता था । उड़ीसा फलवाले बागों तथा सस्ते भाज्य पदार्थो के लिए मशहूर था । मालाबार विभिन्न प्रकार के मसालों के लिए मशहूर था । टेवर्नियर ने 1631 से लेकर 1664 ई0 तक छः बार-भारत की यात्रा की इस बात का उल्लेख किया है कि मुगल प्रदेश में खेतों को अच्छी खाद,

---

1- चापड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 99,

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 286, चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 95, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 292

और सिंचाई की अच्छी सुविधा प्राप्त थी और काफी मात्रा में गेहूँ और चावल की उपज होती थी[1] ।

यातायात तथा संचार के साधन दुर्लभ थे अतः अनाज तथा अन्य कृषि उत्पादनों का व्यापार सीमित था । विभिन्न स्थानों पर कीमतों में काफी भिन्नता पायी जाती थी । जैसा कि सारणी से स्पष्ट है[2] ।

खाद्य पदार्थ	आगरा 1670	लाहौर 1702
गेहूँ	1.14	1.14
चावल	2.86	2.00
चना	0.95	--
घी	1000	--
मूंग	--	1.00
मोंठ	--	1.00

गेहूँ का प्रत्येक परगना में मूल्य प्रतिवर्ष 100 रूपया था तो 1677 ई0 में जौ की कीमत आवेर में 67, चना 67, बाजरा 45, ज्वार 74, मसूर 71, उर्द 84, और मूंग 92 थी । बहत्तर परगना में 1665 ई0 में इन अनाजों की कीमत इस प्रकार थी- जौ 66, चना 70, बाजरा 65, ज्वार 56, मसूर 59, उर्द 72, और मूंग 59 । इस प्रकार मूल्यों में प्रतिवर्ष और प्रत्येक क्षेत्र में भिन्नता नहीं होती थी बल्कि प्रत्येक स्थान में भिन्नता आ जाती थी ।

तम्बाकू -

मध्यकालीन समय में प्रयोग की जाने वाली मुख्य मादक वस्तुओं में तम्बाकू का प्रमुख स्थान था । पुर्तगालियों द्वारा 1605 ई0 में तम्बाकू भारत लाया गया, इसके बाद से तम्बाकू भारत के जनसामान्य में बहुत लोकप्रिय हुआ । इटालवी यात्री

1- चोपड़ा, पुरी दास, भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 123-124, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 369, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 290-291,

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 131,

मनूची ने 1655-1708 ई0 के समय का वर्णन करते हुए लिखा है कि अकेले दिल्ली में तम्बाकू पर लगायी गयी चुंगी से प्रतिदिन 5,000 रूपया प्राप्त होते थे[1]।

मादक पेय -

उस समय काफी मादक वस्तुओं का प्रयोग बढ़ा हुआ था । इसलिए अनेक लोग शराब तथा ताड़ी तैयार करने के व्यवसाय में भी लगे थे । औरंगजेब ने शराब पर प्रतिवन्ध मुसलमान अमीरों के सन्दर्भ में लगाने का असफल प्रयास किया वह मद्यपान का सेवन इस्लाम के विरूद्ध मानता था । उसकी स्वयं की रूचि मद्यपान में नहीं थी । अमीर वर्ग में मद्यपान का प्रचलन बहुत था । इसलिए यह व्यवसाय पूर्ववत् फलता-फूलता रहा । उच्च कोटि की शराब भारतवर्ष में नहीं बनती थी । महुआ और शीरे से ही साधारणत: शराब बनती थी । ईरान तथा यूरोप से सुन्दर अंगूरी शराब मंगायी जाती थी । ताड़ी का प्रयोग भी काफी किया जाता था ।

चमड़े का व्यवसाय-

चमड़े का व्यवसाय विशेष उन्नत दशा में था । जूता उच्च वर्ग के लोगों द्वारा पहना जाता था । मशक और कूओं से सिंचाई के लिए पुर "डोल" चमड़े से तैयार किये जाते थे[2] । चमड़े का उपयोग ऊँट एवं घोड़े के काठी[3] में भी होता था । चमडे की डोरियाँ भी बनती थी । ग्राम स्तर पर पुश्तैनी रूप से चर्मकार इस कार्य में लगे हुये थे उनकी आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी उन्हें अपनी वस्तु का पर्याप्त मूल्य नहीं मिलता था । धनी वर्ग, प्रशासनिक वर्ग, गाँव के दबंग वर्ग, सभी लोग उनका शोषण करते थे अत: इस व्यवसाय में लगे हुये लोगों की गिनती सबसे गरीब वर्ग में की जाती थी ।

रेशमी कपड़े का व्यवसाय -

मुगलकाल का सर्वाधिक उन्नत व्यवसाय कपड़े का था । ऊँनी , सूती, रेशमी वस्त्रो, के उत्पादन एवं निर्यात के क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा सुस्थापित थी। रेशमी कपड़े का व्यवसाय विकसित था । कश्मीर, बंगाल, गुजरात, रेशम उत्पादन के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध थे । अच्छे रेशम का आयात विदेशों से किया जाता

1- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 293, चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 53.

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 576,

3 चोपड़ा. पुरी दास. भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास. भाग-2, पृ0 98.

था । सम्राट प्रायः अपने कारखानों में ही अपनी आवश्यकता के कपड़े को तैयार कराता था । ये कारखाने, लाहौर, आगरा, ढाका, अहमदाबाद में स्थित थे । इस काल में सर्वोत्कृष्ट रेशम के कपड़े गुजरात में बनते थे । रेशमी कपड़ों को सोने-चाँदी की कढ़ाई से भी अलंकृत किया जाता था । यह सामान अधिकांशतः उच्च वर्ग में ही खपता था । रेशमी वस्त्रों की मांग अमीर वर्ग में अधिक थी । इस उद्योग की दशा उन्नत थी । दक्षिण मे कोयंबटूर के समीप रेशम उत्पादन का एक बड़ा केन्द्र था । कर्घे के लिए कच्चा रेशम तैयार[1] कर उसे अनेक रंगों में रंगा जाता था तथा विभिन्न प्रकार के फूलदार वस्त्र तैयार किये जाते थे ।

ऊँनी कपड़े का व्यवसाय-

कश्मीर, पंजाब, तथा पहाड़ी क्षेत्रों में ऊँनी कपड़े का व्यवसाय मुख्य रूप से होता था । पहाड़ी क्षेत्रों में ऊँनी कपड़े के व्यवसाय में अनेक लोग लगे हुए थे । कुछ लोग भेड़ पालन करते थे । कुछ लोग सूत कातते थे । कुछ लोग कपड़ा बुनते थे । कुछ लोग कपड़े के विक्रय के कार्य में लगे हुये थे । विदेशी यात्रियों और व्यापारियों के वर्णन से ज्ञात होता है कि कारीगर बहुत होशियार थे और वे किसी भी विदेशी डिजाइन से मिलता जुलता हुआ सामान तैयार करने में दक्ष[2] थे। ऊँनी गलीचे भी बनते थे ।

सूती कपड़े का व्यवसाय-

सूती वस्त्रों के उत्पादन में भारत का विशेष स्थान था । प्राचीनकाल से यह उद्योग विकसित स्थिति में था । मध्यकाल में इस उद्योग में इतनी अधिक वृद्धि हुई [3] की इसे भारत का मुख्य उद्योग माना जाता है। जुलाहे और बुनकर घरेलू उद्योग के रूप में वस्त्र बुनने के व्यवसाय में लगे हुये थे । कृषकों का वर्ग पूरे देश में फैला हुआ था लेकिन बड़े-बड़े नगरों में स्थित बुनकर अधिक वस्त्र बनाते थे। महाराष्ट्र गुजरात की मिट्टी कपास के उत्पादन के लिए बहुत प्रसिद्ध थी । अत्यधिक मात्रा में कपास का उत्पादन होने से कपास का भी निर्यात होता था । धागे तथा बुने एवं रंगे-छपे वस्त्रों का भी निर्यात होता था । भारत का सूती कपड़े

1- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 92,

2- अवधबिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ0 577, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 371,

3- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 91, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग -2, पृ0 283-284,

का व्यवसाय बहुत उन्नत दशा में था । बंगाल में सोनारगाँव, उत्तर प्रदेश में मऊँ, काशी, और आगरा, अहमदाबाद, पाटन, बड़ौदा, भड़ौच, सूरत, खानदेश, तथा दक्षिण में गोलकुण्डा इस व्यवसाय के प्रधान केन्द्र थे । बंगाल में तैयार होने वाली बारीक मलमल अत्यन्त उत्कृष्ट होती थी और वह देशभर में विख्यात थी । उसकी मांग बाहर भी बहुत अधिक थी । पूर्व में चीन-जापान तक तथा पश्चिम में ईरान, अरब, अफ्रीका, आदि देशों में भारत का कपड़ा जाता था । विदेशों में भारत की छींट और मोटे कपड़े की खपत अधिक थी । यहाँ के कपड़े के लिए विदेशी व्यापारी सदैव लालायित रहते थे । यूरोप के व्यापारी कम्पनियों ने भारत का कपड़ा यूरोप तक पहुँचाया[1] परन्तु जब इंग्लैण्ड में भारतीय कपड़े के विरूद्ध आन्दोलन हुआ और वहाँ व्यवसायिक क्रान्ति के कारण अच्छा कपड़ा बनने लगा तथा भारत में अराजकता फैल गयी तब अंग्रेज कम्पनी के प्रतिनिधियों ने नियमित ढंग से भारतीय सूती कपड़े के व्यापार को समाप्त किया ।

कागज उद्योग-

इस समय कागज उद्योग उन्नतावस्था में था । कागज उद्योग के प्रमुख केन्द्र पटना, दिल्ली, राजगीरि, अवध, अहमदाबाद, गया और शहजातपुर, थे । लाहौर तथा आगरा में स्थापित शाही कारखानों में भी कागज बनाया जाता था । कागज चिकने तथा सुन्दर बनते थे । सर्वोत्तम कागज कश्मीर से उपलब्ध होता था । कश्मीरी कागज की रेशमी बनावट और चिकने तथा चमकीले रूप से लुगदी कला का[2] विकास हुआ । इस पर मुगल शैली में निर्मित विशिष्ट तथा सुन्दर चित्र है ।

शीशा उद्योग-

मुगल काल में शीशा उद्योग विकसित हो गया था । शीशे से निर्मित विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे मीनाकारी की गयी । बोतल, हुक्के के प्याले, तश्तरी, ढक्कन, गुलदस्ते, दर्पण, चश्मा, आदि शीशे के ही बनते थे[3]। शीशा उद्योग के प्रमुख केन्द्रों में आगरा, गुजरात, बिहार, चित्तौड़, पूर्वी और पश्चिमी गोदावरी, बेलारी तथा बालाघाट, आदि विशेष महत्वपूर्ण थे ।

1- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 292,

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग-2, पृ0 98, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 370, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0-284 ।

3 चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 96 ।

हाथी दाँत की वस्तुएं-

दिल्ली तथा मुल्तान में हाथी दाँत की भी जड़ाऊँ वस्तुएं बनायी जाती थी। जैसे-कड़ा, कंगन, शतरंज, के पट्टे तथा मुहरें आदि[1] । इन पर सोने की पच्चीकारी की जाती थी । हाथी दाँत की बनी हुयी वस्तुएं उन्नतावस्था में थी ।

जहाज निर्माण उद्योग-

"जहाज निर्माण उद्योग" एक विशेष उद्योग था । इस काल में बड़ी संख्या में छोटे तथा बड़े जहाजों का उल्लेख मिलता है । सूरत जहाज निर्माण उद्योग का प्रमुख केन्द्र था । इसके अतिरिक्त लाहौर तथा वजीराबाद में भी जहाज तथा छोटे नाव बनते थे । भारतीय जहाजरानी उद्योग सत्रहवीं शताब्दी में विकसित होता रहा यद्यपि मुगल सम्राटों के पास नियमित नौ सेना नहीं थी फिर भी औरंगजेब के "गंज-ए-सवाय" की भाँति कई जहाज थे[2] जिनमें अस्सी-अस्सी तोपें लगी थी और 400-400 तोड़ेदार बन्दूकें होती थी[3] । मनूची ने (1653-1708) गुजरात के सूरत बन्दरगाह की सम्पन्नता को देखा । उसने लिखा है कि अरब तथा फारस के जहाज खजूर, फल, घोड़ो, समुद्री मोतियों तथा रत्नों का पर्याप्त मात्रा में आयात करते थे बदले में गुड़ चीनी, मक्खन, जैतू के फल नारियल ले जाते थे[4] ।

व्यापार एवं वाणिज्य में अमीरों की भूमिका-

मुगल अमीर वर्ग समकालीन यूरोपीय अमीर वर्ग की भाँति भूमि से अनुबन्धित नहीं था । नियमित रूप से उनकी जागीरों का स्थानान्तरण होता था उन्हें राजकोष से नकद वेतन प्राप्त होता था । मुगल अमीर का जीवन में मुख्य उद्देश्य वेतन अर्जित करना था, न कि किसी प्रकार का

1- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2,पृ0 100

2- राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति, पृ0 293 । जदुनाथ सरकार, औरगजेब, पृ0 371, तपनरायचौधरी इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 322, खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 250,

3- चोपड़ा पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0-97 ।

4-मनूची, स्टोरिया डू मोगार,—चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग-2, पृ0 100 ।

व्यापारिक लाभ उठाना, किन्तु मीर जुमला एक ऐसा उदाहरण है जो कि एक व्यापारी से प्रशासक बन गया । मनूची ने पठानों के सन्दर्भ में कहा है कि उन्होनें व्यापारियों एवं योद्धाओं से पेशा पर सम्पत्ति कर लिया था और वे दरबारियों की श्रेणी में प्रवेश पाना व्यापार में पूँजी निवेश के समान समझते थे[1]। नुरूल्लाह[2] खाँ एक अन्य अमीर था जो मूलतः एक व्यापारी था तथा जिसने औरंगजेब के शासनकाल के दौरान ख्याति प्राप्त की । कोई अमीर अपने को व्यापारिक संसार से अलग नहीं रख सका इसका कारण उनका प्रशासक वर्ग का सदस्य होना था । जागीरदारों की आमदनी नकदी में होती थी चाहे उनके पास जागीरे हो या उन्हें राजकोष से वेतन प्राप्त हो रहा हो । लेन-देन पूर्णतः नकद में प्रचलित था, जागीरदारों से राजस्व नगद में वसूल किया जाता था । जो अमीर अत्यधिक धनवान थे उनके लिए स्वाभाविक था कि वे स्वयं प्रत्यक्ष रूप से व्यापार करें या व्यापारियों को धन देकर उस धन में वृद्धि करने की इच्छा करें । मुगल अभिजात वर्ग समुद्री व्यापार के लिए धन का सबसे बड़ा स्रोत था । टैवर्नियर के अनुसार सूरत पहुँचने पर तुम्हें अत्यधिक धन दिखायी पड़ेगा क्योंकि हिन्दुस्तान के अमीरों का यह मुख्य धन्धा है कि वे अपने धन को उन जहाजों पर सट्टे में लगायें जो हरमुज, बसरा और मोरबा तथा बंटाम अचिन या फिलीपीन जा रहे हो[3] ।

इस प्रकार की व्यापारिक लागत का सबसे अच्छा उदाहरण व्यापारिक क्षेत्र में मीर जुमला प्रस्तुत करता है[4] । यह अंग्रेजों से लगातार व्यापारिक सौदे करता रहा और कभी-कभी अंग्रेज व्यापारियों को उसने धन भी दिया[5] । मीरजुमला अन्य व्यक्तियों को भी धन दिया करता था वास्तविक रूप से वह एक "व्यापारी शहजादा" था । अराकन, दक्खनी भारत[6] और फारस के मध्य उसके जहाज, व्यापार किया करते थे । इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया के निम्नलिखित उद्धरण से

1- एम0 अतहरअली, औरंगजेबकालीन मुगल अमीरवर्ग, पृ0 217-218 ।
   निकोलो मनूची. स्टोरिया डू मोगोर, खण्ड-11. पृ0 453 ।
2- रियाज-उस-सलातीन, पृ0 244, एम0 अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीरवर्ग. पृ0 217 218 ।
3- जिन बैपटिस्ट टैवर्नियर, ट्रैवेल्स इन इण्डिया, खण्ड-1, पृ0 31 ।
4- तपनरायचौधरी. इरफान हवीव. द कैम्ब्रिज इनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया 1. पृ0 182-183 ।
5 द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1661-64, पृ0 153, 165-167, पृ0 135 और 145 ।
6- डा0 युसुफ हुसैन. वाकया-ए-दक्खन. सम्पादित संख्या-2. (मुहर्रम. 1702 हिजरी)

भली-भाँति ज्ञात होता है कि फारस से समुद्री व्यापार करने में उसकी रूचि थी ।

"तुम्हें हमारी आम सलाह-मशविरा की प्रतिलिपि द्वारा ज्ञात होगा कि हमने नवाब से मित्रता बनाये रखना स्वीकार किया है क्योंकि अब उसे जंक जहाज वापस नहीं दिया जा सकता या तो वह ऐन नामक जहाज सैन्य सामान एवं भण्डार सहित ले लें या तुम्हारे नये जहाज को, किन्तु इस वर्ष तुम्हें ऐसा दिखावा करना चाहिए जैसे तुम्हें यह मालूम ही नहीं है कि हमने किसी भी भाँति इस बात का निर्णय कर लिया है, ताकि यह बात उसे मालूम हो सके । तुम्हें उसके हिसाब-किताब से मालूम ही है कि नवाब हमारे प्रति पांचगुना अधिक ऋणी है । इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष, पिछले वर्ष की भाँति 25 टन गोंद-लाख के लिए हमारी सहायता लेता है और जिसके लिए फारस में वह न कोई किराया देता है और न चुंगी ही[1]"। अमीरों का ध्यान बाह्य व्यापार तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि आन्तरिक व्यापार पर भी छाया रहा । औरंगजेब ने गुजरात के अधिकारियों को जो फरमान भेजे उसमें इस प्रकार के व्यापारिक सौदों के सन्दर्भ है, जो अमीरों द्वारा किया गया, जिनसे उन्हें अत्यधिक लाभ हुआ[2] । जिस प्रकार समुद्री व्यापार के सम्बन्ध में मीरजुमला का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है उसी प्रकार आन्तरिक व्यापार के सम्बन्ध में शाइस्ता खाँ का उदाहरण सर्वोत्तम है । इसने बंगाल के आन्तरिक व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करके धन हेतु अपनी असीमित क्षुधा की तृप्ति का रास्ता निकाला ।

शाइस्ता खाँ जहाज द्वारा नमक, सोपारी, तथा अन्य वस्तुएं आयात करता था और उन्हें बंगाल में लाभप्रद दरों पर बेंचा करता था। इसके अतिरिक्त उसने एक स्वर्ण मोहर के बदले दो या तीन तोला स्वर्ण लेकर 17 करोड़ रूपया एकत्र किया। वह ढाका शहर में व्यापारियों तथा सौदागरों को नमक व सुपारी भी बेचा करता था। इस प्रकार वे स्वयं इन वस्तुओं को खरीदने व बेचने से वंचित कर दिये गये[3]।

1- एम0 अतहरअली, औरंगजेबकालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 218, इंगलिश फैक्ट्रीज 1661 64. पृ0 148-149. मीरजुमला की व्यापारिक कार्यवाहियों के लिए जे0 एन0 सरकार, दि लाईफ ऑफ मीर जुमला, पृ0 216-218 ।

2 मीरात ए अहमदी, खण्ड-1, पृ0 286-288, गुजरात सेन्टर ऑफ कामर्शियल एक्टीविटीज, रकायम-ए-करायम पृ0 20 ब ।

3- एम0 अतहर अली. औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग. पृ0 219 । एस0 के0 भुयान, एनल्स आफ देहली बादशाहत, गोहाटी 1947, पृ0 167-168 । तपनराय चौधरी. इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया 1. पृ0 183 ।

उसी स्रोत में हमें जानकारी प्राप्त होती है कि शाइस्ता खाँ ने अनेक स्थानों पर 1,52,000 रूपये के मूल्य के नमक के बड़े-बड़े गोदाम स्थापित कर लिये थे[1]।

अमीरों के सम्बन्ध में इंगलिश रेकार्ड्स में सूचनाएं भरी पड़ी हुयी है। नवाब "शाइस्ता खाँ" के अधिकारी, लोगों को सताते है, सभी वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित करते है। यहाँ तक कि निम्न से निम्न वस्तु जैसे- जानवरों के लिए घास, जलाने वाली लकड़ी, फूस, आदि। न ही वे उन सभी लोगों को सताने में चूकते है जो व्यापार करते है, चाहे वे देशी हो या विदेशी[2] । औरंगजेब ने व्यापार पर किसी अमीर के एकाधिकार को रोकने का प्रयास किया। उसने गुजरात के अमीरों को सस्ता अनाज खरीदकर महंगा बेचने की मनाही किया। इससे यह आशय निकलता है कि बाजार के साथ हस्तक्षेप की नीति से औरंगजेब सर्वथा उदासीन नहीं रहा[3] ।

पटना से लिखते हुये चारनॉक ने (3 जुलाई 1664) कहा कि शाइस्ता खाँ की इच्छा थी कि शोरे का पूर्ण व्यापार अपने हाथों मे ले लें और फिर उसे हमारे तथा डचों के हाथों अपनी दरों पर बेचे, चूँकि वह जानता है कि खाड़ी में जहाज खाली वापस नहीं जा सकते है लेकिन इस वर्ष उसे 4,000 या 5,000 मन से अधिक शोरा नहीं मिल सकेगा । उसके दरोगा ने सौदागरों को इतनी बुरी तरह से परेशान किया है कि वे लगभग वहाँ से भाग खड़े हुये है । वह इस बात का दिखावा करता है कि वह सारा शोरा सम्राट के लिए खरीद रहा है कुल मिलाकर युद्धों के लिए उसे कभी भी प्रतिवर्ष 1,000 या 1,500 मन से अधिक आवश्यकता नहीं पड़ी[4]।

1- अपनी जागीर में मिर्जाराजा जयसिंह ने नमक बनाना शुरू किया, परिणामस्वरूप परगना सॉभर में नमक बनाने वाले शाही कारखाने को 1 लाख रूपये प्रतिवर्ष नुकसान होने लगा । शाहजहाँ ने तुरन्त जयसिंह को आदेश दिया कि वह नमक बनाना बन्द करे अन्यथा उसकी जागीर स्थानान्तरित कर दी जायेगी । जयपुर डाइक्यूमेन्टस, संख्या 68, 5 शव्वाल 1053 हिजरी।

2- डायरीज ऑफ स्ट्रिनशान मास्ट, 1 पृष्ठ 80, बंगाल में अधिकारियों द्वारा वस्तुओं को एकाधिकृत करने की प्रवृष्टि के लिए फतह-ए-इब्रिया प0 127 अ ।

3- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1, पृ0 183 ।

4- इंगलिश फैक्ट्रीज 1661-64, पृ0 395-96 । एम0 अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 220 ।

1703 ई0 के लगभग सम्राट को यह सूचना दी गयी कि शहजादा अजीम-उश-शान अपने व्यक्तिगत व्यापार हेतु जिसे उसने सौदा-ए-खास कहा, जबरदस्ती सामान खरीद रहा था । औरंगजेब ने शहजादे की कठोर भर्त्सना की और उसके कार्य को व्यंग्यात्मक रूप से सौदा-ए-खाम कहा उसने शहजादे को बेवकूफ एवं अत्याचारी बताया जो लोगों को लूटता है[1] । मुगल अमीर विलासी वस्तुओं मुख्यत: जवाहरात का व्यापार करने मे रूचि रखते थे । टैवर्नियर से शाइस्ता खाँ की खरीददारी इस बात का दृष्टान्त है । यह फ्रांसीसी सौदागर, शाइस्ता खाँ के द्वारा 1654 ई0 मे जवाहरात खरीदने हेतु यूरोप भेजा गया[2] ।

सम्राट स्वयं भी कभी-कभी अमीरों के माध्यम से जवाहरात खरीदता था। शाइस्ता खाँ ने 109 मोती औरंगजेब को भेजे । शाही विशेषज्ञों का कहना है कि खान ने उस मोती के जो मूल्य मांगे वह अत्यधिक थे अत: सम्राट औरंगजेब ने उसे वापस कर दिया[3]। इससे पहले एक बार शाइस्ता खाँ ने जब औरंगजेब राजकुमार था उस समय किसी विशेष अवसर पर उसके पास एक जवाहरात और कुछ मोती भेजे किन्तु औरंगजेब ने उससे मोतीयों के मूल्य के विषय में जानकारी की ताकि उसका मूल्य दिया जा सके[4] ।

अमीर वर्ग को बर्तन, हथियार, सज्जा सामग्री, आदि बनवाने के लिए अपने कारखानों[5] की स्थापना करनी पड़ी जहाँ अत्यधिक संख्या में कारीगर रखे जाते थे।

1- रियाज-उस-सलातीन पृ0 243-44 । तपनराय चौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1, पृ0 183 ।

2 टैवर्नियर, ट्रैवेल्स इन इण्डिया, खण्ड 1, पृ0 320-322, टैवनिर्यर के अनुसार व्यापार के मामले में भारतीय बहुत ही दक्ष थे और बिना किसी विलम्ब के ऋण का भुगतान कर देते थ । ट्रैवेल्स इन इण्डिया, खण्ड 1, पृ0 326, 1652 में शाइस्ता खाँ ने टैवनिर्यर से 16,000 हजार रूपये की वस्तुएं खरीदी, 1660 में उसने दूसरी बार टैवर्नियर से कुछ खरीदा, ट्रैवेल्स इन इण्डिया, खण्ड 1 पृ0 15-16, शाइस्ता खाँ ने टैवर्नियर से खूबसूरत जवाहरात उसे लाकर देने के लिए कहा और उसे आश्वासन दिया कि वह सम्राट की भांति ही उदारतापूर्वक उनकी कीमत देगा, खण्ड 1, पृ0 245 ।

3- आदाब-ए-आलमगीरी, पृ0 113 अ ।

4- आदाब ए आलमगीरी, पृ0 113 अ-ब ।

5- आजकल आमतौर से विद्वान "कारखाना" शब्द को केवल सम्राट राजकुमारों और अमीरों द्वारा कायम की गयी कर्मशाला से संलग्न करते है लेकिन यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि सत्रहवी शताब्दी में विदेशी व्यापारी कम्पनियों के भी कारखाने होते थे । द इंगलिश फैक्ट्रीज, 1618-21, पृ0 198 ।

इन कारखानों की प्रकृति एवं अमीरों का इन कारखानों में भर्ती किये गये कारीगरों के प्रति दृष्टिकोण का वर्णन बर्नियर के एक सुप्रसिद्ध उद्धरण में प्राप्त होता है उसके अनुसार "कुशल कारीगरों की गर्व कर सकने योग्य एक कर्मशाला दिल्ली में ढूढ़ना बेकार होगा । ऐसा केवल इसलिए नहीं था कि लोगों में कला उपार्जित करने की क्षमता नहीं है वरन् भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति उपलब्ध है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिनके पास औजार तक नहीं है और जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कभी भी किसी से प्रशिक्षण भी प्राप्त नहीं किया । कारीगरी के बनाये गये सुन्दर नमूनों के उदाहरण अत्यधिक संख्या में उपलब्ध है। धनी व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु सस्ते दामों में मिल जाती है । जब कभी किसी अमीर या मनसबदार को एक कारीगर की सेवाओं की आवश्यकता होती तो वह उसे बाजार से बुलवा लेता है, यदि आवश्यकता होती तो वह शक्ति का प्रयोग भी करता, ताकि उस गरीब आदमी को कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सके और जब कार्य समाप्त हो जाता था तो बेरहम मालिक उसके श्रम के अनुसार नहीं वरन् अपने हिसाब से मामूली पारिश्रमिक दे देता है, कारीगर अपने को इस बात के लिए भाग्यशाली समझता है कि भुगतान के रूप में उसे कोड़ खाने को नहीं मिले। इस प्रकार केवल वे ही कलाकार अपनी कला में ख्याति प्राप्त कर पाते है जो सम्राट या किसी शक्तिशाली अमीर की सेवा में होते है तथा जो केवल अपने संरक्षक के लिए ही कार्य करते है[2]।

बख्तावर खॉं का दावा है कि उसने विभिन्न शहरो[3] में अनेक कारखाने स्थापित किये है इसी के साथ शुजाअत खॉं के कारखानों की इतिहासकारों ने प्रशंसा की है । औरंगजेब ने शुजाअत खॉं के कारखानों मे बने कप, प्लेटो, बर्तनों, आदि की बहुत प्रशंसा की है । शुजाअत खॉं ने सम्राट औरंगजेब तथा अन्य अमीरों को उपहार स्वरूप वस्तुएं भेजी[4] ।

1- दिल्ली आगरा, लाहौर, और बुरहानपुर, में बख्तावर खॉं के कारखानों, उसके मकानो एवं भवनों के सन्दर्भ के लिए मीरात-ए-आलम, प0 253ब ।

2- एम0 अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 221
फ्रांकोंइस बर्नियर, ट्रैवेल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 254-56 ।

3- बख्तावर खॉं, मीरात-ए-आलम, पृ0 253 ।

4- एम0 अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 221 ।
साकी मुस्तैद खॉं, मआसिर-ए-आलमगीरी, पृ0 405-406 ।

सम्राट राजकुमारों, राजकुमारियों, एवं अमीरों के भी कारखाने अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु हुआ करते थे । उदाहरणार्थ औरंगजेब द्वारा शाहजहाँ को भेजे गये एक पत्र मे कुशल कारीगरों के अभाव में शाही कारखानों और राजकुमारी जहाँआरों के कारखानों का उत्पादन बहुत कम हो गया। इस प्रकार का उल्लेख है।

औरंगजेब ने उन कारीगरों के कार्य की प्रशंसा[1] नहीं की जो उसके व्यक्तिगत कारखानों में कार्य करते थे । औरंगजेब ने जहाँआरों को पत्र लिखा कि कारखाने की व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जायेगा । जिन वस्तुओं की आवश्यकता उसे होगी उनका उत्पादन होता रहेगा[2] ।

अमीरों द्वारा व्यापारिक कार्यो में धन लगने का प्रमाण है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि व्यापारिक लाभ कमाने में उनकी रूचि थी । अमीरों द्वारा कभी-कभी व्यापार में बाँधा उत्पन्न किया जाता था जिससे वे अपनी आमदनी, सम्पत्ति का प्रयोग करके नहीं बल्कि अपनी शक्ति का दुरूपयोग करके बढ़ा सके। सौदागरों एवं व्यापारियों को आवश्यक विशेषाधिकार प्राप्त करने से पहले अमीरों को घूस देना पड़ता था । फ्रांसीसी व्यापारियों ने व्यापार हेतु 1667 ई0 में जब फरमान लेना चाहा तो उन्हें सम्राट को वस्तुओं के रूप में 30,000 रूपये, जाफर खाँ को 10,000 रूपये और इतनी ही राशि अमीरों को देना पड़ा । फ्रांसीसी व्यापारियों द्वारा इस प्रकार की राशि भुगतान करने पर उन्हें व्यापार हेतु परवाना दिया गया साथ ही इस बात की भी अनुमति दी गयी कि वे सूरत मे एक मकान किराये पर ले लें और अपने माल पर उचित मूल्य[3] पर दो प्रतिशत चुंगी दें ।

मीर जुमला ने 1659 ई0 में अंग्रेजों द्वारा उपहार प्राप्त करने पर ही कासिम वाजार में अंग्रेजों को व्यापार करने की अनुमति दी[4] । 1660 ई0 में मीर जुमला ने 50,000 पगोडा अंग्रेज व्यापारियों से मांगे और उसने उनसे जो कम्पनी को 32,000 पगोड़ा देने थे, छोड़ देने की मांग की[5] जब मीरजुमला बंगाल का सूबेदार था तो उसने अंग्रेज व्यापारियों से प्रतिवर्ष 3,000 रूपये प्राप्त किये[6] । सभी जगह

1- आदाब-ए-आलमगीरी, पृ0 25 अ । आदाब-ए-आलमगीरी, पृ0 196 अ ।
2- द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1665-66, पृ0 281 ।
3- एम0 अतहरअली, औरंगजेब कालीन अमीर वर्ग, पृ0 281 ।
4- द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, पृ0 292-93 ।
5- द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्टिया, पृ0 391-92 ।
6- द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, पृ0 393-94 ।

व्यापार और विनिमय में भ्रष्टाचार था अधिकारी तब तक कोई सहायता नहीं करते थे जब तक उन्हें कुछ रकम नहीं मिल जाती थी ।

टैवर्नियर के अनुसार "यह बिल्कुल सत्य है कि जो तुर्की, फारस, तथा भारतवर्ष में राजकुमारों के दरबार में व्यापार करना चाहते है, वे तब तक किसी वस्तु का व्यापार नहीं कर सकते, जब तक कि उनके पास अत्यधिक मात्रा में उपहार तैयार न हो और विभिन्न प्रकार के विश्वस्त अधिकारियों के लिए जिनकी सेवा की उनको आवश्यकता हो, सदैव खुली हुयी रकम की थैली न हो[1]। सम्राट व सूबेदार के बदलने पर व्यापारियों को, फरमान व परवानों के नवीनीकरण के लिए कुछ-कुछ रकम खर्च करनी पड़ती थी[2] ।

शाइस्ता खाँ के समय बंगाल में अंग्रेज व्यापारी घबराये क्योंकि शाइस्ता खाँ ने अंग्रेजों पर 3,000 रूपये मूल्य का उपहार देने के लिए दबाव डाला । "यद्यपि इस समय हमारा या हमारे स्वामियों का व्यापार बहुत कम है बल्कि नहीं के बराबर हैं फिर भी नवाब के शासन में हम परेशानी से मुक्त नहीं है । इस बात की विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुयी है कि सम्राट के आदेशानुसार बालासोर और पिपली को विजित कर बंगाल के सूबे के अन्तर्गत रख दिया गया है, जिसके लिए विशेषकर इस समय, सिवाय पश्चाताप करने के हम कुछ भी नहीं कर सकते है, क्योंकि दोनों ही स्थान एक ऐसे व्यक्ति के हाथों में आ गये है, जो अन्यायी एवं अत्यन्त लोभी है, चाहे कोई भी जहाज आये या न आये, हमें भय है कि प्रतिवर्ष इस स्थान पर हमसे 3,000 रूपये उपहार के रूप में लिये जायेगें क्योंकि इस शहर (हुगली) का लगान एवं चुंगी उसकी जागीर है[3]।

औरंगजेब का एक फरमान "मीरात-ए-अहमदी" में सुरक्षित है । जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि किस तरह मुगल अमीर गैर कानूनी कर एवं शुल्क

1- टैवर्नियर, ट्रैवेल्स इन इण्डिया, खण्ड 1, पृ0 115 ।
2- द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1665-66, पृ0 197-98 । मीर जुमला की मृत्यु के पश्चात नये सूबेदार दाउद खाँ से अपने-अपने परवानों के नवीनीकरण के लिए अंग्रेज व्यापारियों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इंगलिश फैक्ट्रीज 1661-64, पृ0 288 ।
3- एम0 अतहरअली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 223 ।
द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1665-66, पृ0 258-59 ।

लगाकर व्यापार और विनिमय को निचोड़ते थे ।

गुजरात प्रान्त के जागीरदारों को औरंगजेब ने आदेश दिये कि वे इन शुल्कों को जैसे "राहदारी", "तरकारी", "तहबाजारी" आदि को जो ममाप्त कर दिये गये थे सौदागरों और व्यापारियों से वसूल न करें । उनके लिए अनाज वगैरह सामग्री कम दामों पर खरीद कर ऊँचे दामों पर बेचना मना था । इसके साथ ही उनको यह भी मना था कि वे अनाज व्यापारियों तथा अन्य व्यापरियों एवं सौदागरों से भेंट अथवा पेशकश स्वीकार करें । सम्राट द्वारा उन्हें आदेश दिया गया कि वे व्यापारियों पर गैरकानूनी शुल्क न लगाये[1] ।

इस काल में अमीरों की आमदनी का मुख्य भाग भूमि से प्राप्त राजस्व ही रहा । उच्च वर्ग के अमीर शहजादे तथा शाही परिवार के सदस्य, व्यापारिक सट्टेवाजी से लाभ प्राप्त करते थे[2] । अमीर कभी-कभी व्यक्तिगत लाभ हेतु अपने सरकारी पद का अनुचित प्रयोग करते थे । आर्थिक मामलों में सरकार का हस्तक्षेप था । इस समय घूस, व उपहार देना, विशेष कृपा प्राप्त करना प्रचलित हो गया था । व्यापारी इन सब का प्रयोग करके सम्राट से अनुमति प्राप्त करके व्यापार क्षेत्र में एकाधिकार स्थापित कर लेते थे ।

औरंगजेब के समय जागीरों से आमदनी की अनिश्चितता के बावजूद अधिकाश अमीरों की आय के साधन अत्यधिक थे । वसूल किये गये लगान को या तो पूँजी के रूप में लगा देते थे या अपने परिवार के सदस्यों एवं अनुचरों के उपभोग में व्यय कर देते थे । सम्पन्न वर्ग की विलासितामय जीवनशैली की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ महंगी वस्तुओं का उत्पादन या निर्माण करने के लिए कारखाने लगाए गए । अमीरों ने इसी तरह की वस्तुओं के उत्पादन में पूँजी

1-एम0 अतहरअली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 223 ।
अलीमुहम्मद खाँ, मीरात-ए-अहमदी, खण्ड 1, पृ0 286-88 ।
राहदारी-राहशुल्क, माही-मछुआरे द्वारा बाजार में लाकर बेचने के ऊपर कर ।
मल्लाही-दुकानदारों, व्यापारियों, तथा राहगीरों के ऊपर घटा कर ।
तरकारी-काश्तकारों द्वारा बाजार में हरी सब्जी के ऊपर कर ।
तहवाजारी-दुकानदारों के ऊपर भूमिकर ।
2-एम0 चन्द्र, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, जुलाई-दिसम्बर 1959, पृ0 92-97 ।

लगाई लेकिन सार्वजनिक उपभोग की सस्ती वस्तुएं बनाने की ओर इनका ध्यान नहीं गया अत: व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में कोई व्यापक प्रगति के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुए । व्यापार के क्षेत्र में अमीरों के योगदान का सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा । डा0 अतहर अली ने लिखा है कि उल्टे इससे व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में बाधा पहुँची । यह सर्वविदित तथ्य है कि जिस वस्तु का क्रय केवल चन्द गिने चुने लोग ही करने वाले हो उस वस्तु के उत्पादन के तौर तरीकों में न तो कोई तकनीकी या शोधपरक विकास दिखेगा और न ही उसे विशाल बाजार उपलब्ध होगा । औरंगजेबकालीन जन समुदाय की क्रय शक्ति की दुर्बलता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । ऐसी स्थिति में कोई अतिशय व्यवसायिक प्रगति हो ही नहीं सकती थी ।

इस प्रकार ये कहा जा सकता है कि चाहे उन्होंने कुशल कारीगरों को कितना ही संरक्षण क्यों न प्रदान किया हो किन्तु ज्यादातर उनके पूँजी निवेशों की प्रकृति इस प्रकार की नहीं थी, जिससे सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन की तकनीक में किसी प्रकार का सुधार हो सकता ।

1- एम0 अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 223 ।

अध्याय 5

प्रान्तीय आर्थिक नीति की विशेषताएं

बंगाल -

मध्यकाल में बंगाल एवं गुजरात व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में अग्रणी थे। बन्दरगाह की उपलब्धता, प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता एवं विदेशी व्यापारियों के आवागमन के कारण इन प्रान्तों की व्यापारिक गतिविधियाँ तीव्र रहती थीं[1]। ये दोनो प्रान्त आन्तरिक क्षेत्र में अन्य प्रान्तो को अनेक वस्तुओं की आपूर्ति करते थे तथा उनकी वस्तुओं को विदेशी बाजारों तक पहुँचाने का माध्यम बनते थे। बंगाल में पर्याप्त वर्षा होती थी । यहाँ अनाज का उत्पादन काफी होता था । मछलियों से भरपूर नदियों और तालाबों से तथा फलों से लदे हुये उपवनो से भी प्रान्त के निवासियों को खाद्य सामग्री प्राप्त होती थी । इस प्रान्त की जलवायु अच्छी नहीं थी । औरंगजेब इस प्रान्त को "रोटी से परिपूर्ण नरक" कहता था[2]। इस प्रान्त में समृद्धि एवं आबादी की वृद्धि हेतु केवल शान्ति स्थापना की ही आवश्यकता थी । बंगाल में शाहजहाँ तथा औरंगजेब के काल में अकाल पड़े और मूल्य वृद्धि हुई [3]।

सत्रहवीं शताब्दी तक बंगाल में आन्तरिक शान्ति स्थापित हो गयी थी । सोलहवीं शताब्दी की उथल-पुथल का अब समापन हो गया था । जिससे उस प्रान्त की आबादी एवं समृद्धि पुनः बढ़ने लगी । वहाँ का व्यापार तीव्रता से फैलने लगा। उद्योग-धन्धे बढ़ने लगे । 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजों और डचों का व्यापार बंगाल में दिनोदिन बढ़ने लगा । वे भारतीय माल मोल लेते रहते थे और उनकी स्थानीय कोठियाँ भी व्यापार को बढ़ावा देती थी, जिससे प्रान्त में माल का उत्पादन और उसके साथ वहाँ की समृद्धि भी दिनोदिन बढ़ते[4] ही गये ।

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 178-180, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 369 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 375, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 291 ।

3- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 78 ।

4 जदुनाथ सरकार, औरंगजेव, पृ0 376 ।
मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 284 ।

शाइस्ता खाँ 1664 ई0 में पहली बार बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ था[1] । वह चौदह वर्ष तक इसी पद पर रहा । प्रतिदिन उसका आम दरबार लगता था और वहाँ बड़ी ही तत्परता के साथ वह न्याय करता था तथा पीड़ितों की शिकायतें दूर करने का प्रयत्न करता था । माल खरीदने और बेचने की उसने पूरी स्वतन्त्रता दे दी । दो कर उसके पूर्वाधिकारी ने लगाये थे । व्यापारियों तथा यात्रियों की आमदनी का चालीसवाँ भाग 'जकात' नामक कर के रूप में वसूल होता था । 'हासिल' नामक कर उद्योग-धन्धे वालों तथा व्यापारियों से लिया जाता था, जिससे केवल शाइस्ता खाँ की निजी जागीर में ही कोई 15 लाख रूपयों की आमदनी होती थी। इन दोनों ही अवैधानिक करों को शाइस्ता खाँ ने छोड़ दिया । उसने बंगाल में बहुत लम्बे समय तक अपनी सैनिक शक्ति द्वारा शान्ति बनाये रखी ।उसी समय उसने ढाका में जो उसकी राजधानी थी, सुन्दर मकान बनाकर सजाया तथा समस्त प्रदेशों में स्थान-स्थान पर सरायें बनवायी । बंगाल में उसकी सूबेदारी के समय में चावल एक रूपये का आठ मन बिकता था[2] । मोरलैण्ड ने 1658 ई0 से 1660 ई0 के बीच अनाज के दाम खूब बढ़ जाने का उल्लेख किया है[3] । यह क्रम आगे भी जारी रहा तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।

1689 ई0 में इब्राहिम खाँ बंगाल का सूबेदार बना । उसने खेती-बाड़ी तथा व्यापार की बड़ी उन्नति की । बंगाल पहुँचते ही सबसे पहले उसने अंग्रेजों के साथ सन्धि की, और उसने समझा-बुझाकर पुनः बंगाल में बसने के लिए उनहें प्रेरित किया । इब्राहीम खाँ के ढीले-ढाले नरम शासन तथा उसके आलसी, युद्ध-विरत स्वभाव से उन प्रान्त के उपद्रवकारियों ने पूरा लाभ उठाया । मेदिनीपुर जिले के चटवा-बर्दा स्थान के जमींदार शोभासिंह ने विद्रोह किया और उड़ीसा के अफगानों के मुखिया रहीम खाँ के साथ मिलकर वह वर्धमान जिले के बड़े तहसीलदार राजा कृष्णराम की जमींदारी को लूटने लगा । कृष्णराम थोड़ी सेना के साथ उनका सामना करने को आगे बढ़ा किन्तु उसकी हार हुयी और वह मारा गया । पश्चिमी बंगाल का फौजदार नूरूल्लाखाँ डरवश दरवाजा बन्द करके हुगली के किले में ही घुसा बैठा रहा । विद्रोहियों ने उस किले को जा

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 209 ।
एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 402 ।

2 एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 402 ।
जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 377 ।

3- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू मोरलैण्ड, पृ0 178-179 ।

घेरा[1] तब एक रात वह बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाकर उस किले से निकल भागा, किन्तु उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं वह किला शोभासिंह के हाथ लगे ।

वहाँ विद्रोह आरम्भ होने पर बंगाल में रहने वाले तीनों यूरोपीय राष्ट्रों के व्यापारियों ने अपनी-अपनी सम्पत्ति की रक्षा हेतु देशी सैनिक नौकर रख लिए थे और कलकत्ता, चन्द्रनगर, चिनसुरा, की अपनी-अपनी कोठियों के चारों ओर आवश्यक किलेबन्दी करने के लिए भी उन्होने सूबेदार से आज्ञा ले ली थी । जब बंगाल में उपद्रव और अराजकता फैली हुयी थी, तब विदेशी व्यापारियों के इन किलों में शान्ति बनी हुयी थी और वहाँ सुरक्षा के साधन भी थे जिससे वहाँ सभी शरण लेने के इच्छुक थे । डचों ने हुगली का किला जीतकर उसे वापस मुगलों को सौंप दिया।

1700 ई0 में औरंगजेब ने मुहम्मद हादी उर्फ कारतल खाँ को मुर्शिदकुली खाँ[2] का खिताब देकर बंगाल का दीवान बनाया । नये दीवान के चतुराईपूर्ण सुप्रबन्ध के कारण जल्दी ही बंगाल बहुत ही सुसमृद्ध प्रान्त बन गया । उसने अत्यधिक सावधानीपूर्वक अपने कर्मचारियों को चुना । उनके द्वारा उसने भूमि की पैदावार एवं चुंगी की आमदनी में वृद्धि कर सकने की पूरी-पूरी गुंजाइश का पता लगाया । उसने अपने हाथ में इनकी वसूली का काम लिया और जमींदार एवं जागीरदार जो कुछ भी बीच में ही गबन कर लेते थे उसको बिल्कुल बन्द कर दिया, जिससे शाही वार्षिक आय बहुत बढ़ गयी । शहजादे अजीमुश्शान को मुर्शिद कुली खाँ माल सम्बन्धी मामलों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करने देता था। शहजादे ने दीवान की हत्या करने के लिए षडयन्त्र रचा, परन्तु मुर्शिदकुली खाँ की बुद्धिमता एवं साहस के कारण वह विफल हुआ फलतः मुर्शिदकुली खाँ शाहजादा सूबेदार के निवास स्थान ढाका को छोड़कर अपना माली दफ्तर मकसूदाबाद नामक अधिक केन्द्रीत गांव में ले गया, जिसका नाम उसने बदल दिया और अपने ही नाम पर मुर्शिदाबाद रखा[3]। 18 वीं शताब्दी के प्रारंम्भिक 50 वर्षो तक बंगाल की राजधानी इसी नगर में बनी रही । औरंगजेब इस प्रकार का षडयन्त्र सुनकर अत्यधिक क्रुद्ध हुआ । उसने शहजादे को बिहार चले जाने का आदेश दिया । तीन वर्ष तक अजीमुश्शान पटना (बिहार) में रहा । उसके निवेदन करने पर पटना नगर का नाम शहजादे के नाम पर अजीमाबाद रखने की स्वीकृति औरंगजेब ने दे दी ।

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 378 ।

2-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 252 ।

3-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 380 ।

मुर्शीदकुली खॉं प्रतिवर्ष बंगाल प्रान्त की आय में से बचे हुए करोड़ों रूपये औरंगजेब की सेवा मे भेजता रहता था[1]। मराठों के साथ होने वाले युद्धों मे अन्य साधनों से प्राप्त सारी आमदनी व्यय हो जाती थी एवं बंगाल से प्राप्त होने वाले इस द्रव्य से औरंगजेब को बहुत ही समयोचित सहायता मिलती थी। मुर्शिदकुली खॉं के शासनकाल में सबको यह अनुभव हुआ कि प्रान्त का शासन सुदृढ़ सुयोग्य हाथों में है । वह सारी वसूली अपने ही आदमियों द्वारा सीधे कर लेता था और दलालों या जमींदारों के अपने निजी लाभ की सम्पूर्ण रकम बची रहती थी । मुर्शिदकुली खॉं की आज्ञाएं इतनी सख्त होती थी कि विद्रोही भी उसके सामने कॉंप जाते थे, और तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन करते थे[2] ।

औरंगजेब की मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद दिनोंदिन शिथिल होकर जब दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता का पूर्ण पतन होने लगा तब मुर्शिदकुली खॉं बंगाल का स्वाधीन शासक बन बैठा । उसके शासनकाल में बंगाल में पूर्ण शान्ति छा गयी और वहॉं की समृद्धि अधिकाधिक बढ़ने लगी ।

मालवा -

मालवा का मुगलकालीन प्रान्त उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था । राजपूताना उसके पश्चिम में चम्बल के दूसरे पार था[3] तथा पूर्व में स्थित बुन्देलखण्ड की मालवा से लगी हुयी पश्चिमी सीमा को बेतवा नदी निर्धारित करती थी । राजपूत मालवा में बसने वाले प्रमुख थे जो अनगिनत छोटी छोटी जातियों या सुविख्यात जातियों के उपविभागों में बंटे हुये थे, किन्तु यहॉं विभिन्न घरानों के अपने ही सुसंगठित राज्य राजपूताने के समान नहीं थे। मालवा में राजपूतो की संख्या अधिक नहीं थी और न ही उनका अत्यधिक महत्व था । मालवा में अन्य जातियों की संख्या सर्वथा नगण्य रही । जाटों की संख्या यहॉं सर्वाधिक थी ।

मालवा में खेती-बाड़ी से पैदा होने वाली सम्पदा बहुतायत से पायी जाती थी। अफीम, अंगूर, गन्ना, पान, खरबूजे, आदि बहुमूल्य वस्तुओं की पैदावार अत्यधिक मात्रा में होती थी । उद्योग-धन्धों वाले मुगल सूबों में गुजरात के बाद

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 252 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 380 ।

3- सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत, पृ0 181 ।

मालवा की ही गणना होती थी[1]। मुगल साम्राज्य की उत्तरी राजधानियाँ आगरा, और दिल्ली से दक्षिण भारत को जाने वाले सारे सैनिक मार्ग इसी प्रान्त में होकर गुजरते थे, जिससे मालवा का विशेष महत्व था ।

औरंगजेब के शासनकाल के पूर्वार्द्ध में मालवा में विद्रोह बहुत ही कम हुए और वे भी कुछ क्षेत्रों तक सीमित रहें । छत्रसाल बुन्देला और बख्तबुलन्द गोण्ड के आक्रमणों के अतिरिक्त मालवा में 17 वीं शताब्दी के अन्त तक शान्ति बनी रही और वहाँ का शासकीय इतिहास महत्वपूर्ण घटनाओं से विहीन रहा किन्तु राजाराम के जिन्जी से लौटकर महाराष्ट्र वापस आने के बाद वहाँ एक ऐसा नया दौर प्रारम्भ हुआ जिससे अगले पचास वर्षो में मालवा के राजनैतिक इतिहास में युगान्तकारी उलट-फेर हो गये ।

1704 ई0 तक ''मराठे बुन्देला और अफगान प्रान्त में सर्वत्र उपद्रव मचा रहे थे ।'' औरंगजेब के ही शब्दों में नतीजा यह हुआ कि ''खानदेश का सूबा बिल्कुल ही उजड़ गया । मालवा भी बरबाद हो गया और वहाँ बहुत ही कम आबादी शेष रही है''[2] ।

गोण्ड राज्य -

16वीं शताब्दी मे गढ़ा के गोण्ड राजा ने अपना एक बहुत बड़ा राज्य स्थापित किया था किन्तु इस राज्य को अकबर के सेनापतियों ने छिन्न-भिन्न कर डाला, जिससे पिछले गोण्ड राजा चौरागढ़ के आस-पास ही शासन करते रहे तथा 17 वीं शताब्दी के मध्य तक वे सर्वथा नगण्य हो गये थे ।

देवगढ़ का शासक[3] ही गोण्डों में सर्वाधिक प्रमुख माना जाता था । चाँदा में एक दूसरा गोण्ड राजा शासन करता था, जो देवगढ के गोण्ड राजघराने का कट्टर प्रतिद्वन्द्वी था । इन गोण्ड राजओं के पास अत्यधिक धन संचित था । उसी प्रदेश में से खोदकर निकाले गये रत्न भी उनके पास बहुतायत से थे और साथ

1- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368, सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत, पृ0 181 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 384 ।

3- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 402 ।

ही उनके पास हाथियों के बड़े-बड़े झुण्ड भी थे । इन सबको प्राप्त करने के लिए मुगल लालायित हो उठे । एक मुगल सेना ने 1637 ई0 में उस प्रदेश में पहुँचकर वहाँ के उन शासकों को टंका देते रहने की शर्त मानने के लिए बाध्य किया था किन्तु सही समय पर यह टंका नहीं चुकाया जा सका और यों बाकी रहे टंके की रकम बढ़ते-बढ़ते 1666 ई0 के अन्त तक 15 लाख रूपये[1] हो गयी।

1667 ई0 में जब मुगल सेना लेकर दिलेर खाँ गोंडवाना में पहुँचा, तब चाँदा के राजा ने मुगलों की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर ली और कुल मिलाकर 9 करोड रूपये देने का वादा किया । दिलेर खाँ ने दो महीने तक वहाँ ठहरकर चाँदा के राजा से कोई 77 लाख रूपये वसूल किये । देवगढ़ के राजा कुक सिंह ने भी अधीनता स्वीकार कर ली और निश्चित समय में 18 लाख रूपये देने के सिवाय जुर्माने के रूप में 6 लाख रूपये और देने को वह राजी हो गया किन्तु वह सब रूपया वादे के अनुसार नहीं चुका सका तब मुगलों ने देवगढ़ पर चढ़ाई कर वहाँ आधिपत्य कर लिया और राजा बख्त बुलन्द को देवगढ़ की गद्दी पर बैठाया ।

बख्त बुलन्द के शासनकाल में वैनगंगा और कन्हन नदी के बीच उपजाऊ प्रदेश को धीरे-धीरे आबाद किया गया जिससे कुछ ही समय में यह भाग बहुत समृद्ध हो गया[2] । मेहनती किसान और उद्योग-धन्धे वाले गोण्डवाना में आ पहुँचे, वहाँ कई नगर बस गये और नये गाँव आबाद हो गये किन्तु बख्त बुलन्द के मृत्यु हो जाने पर देवगढ़ का सारा गौरव विलीन हो गया और तब नागपुर के मराठा राजघराने ने उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया ।

कश्मीर -

कश्मीर को मुगल सम्राट अपने आमोद-प्रमोद के लिए एक सुन्दर स्थान से अधिक कुछ नहीं समझते थे । वहाँ के निवासियों की स्थिति एवं वहाँ की भूमि को सुधारने के लिए उन्होने यत्किंचित भी प्रयत्न नहीं किया ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 386,

2- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 402,

कश्मीर की जनता पूर्ण अज्ञान तथा अत्यधिक दारिद्रय के गहरे गर्त में डूबी हुयी थी । अधिकांश लोग जो गाँव मे रहते थे वे आदिवासियों सा बिल्कुल सादा जीवन विताते थे और आवश्यक कपड़ों के अभाव में प्रायः नंगे ही घूमते-फिरते थे तथा सर्दी से अपना बचाव करने के लिए अपने शरीर पर केवल कम्बल लपेट लेते थे[1] । कश्मीर प्रदेश की सारी वस्तियाँ बहुत दूर-दूर बसी हुयी थी और उन बस्तियों को एक दूसरे से मिलाने वाली सड़कों का भी अभाव था । जिससे बाहरी देशों से कुछ भी अनाज[2] वहाँ ले जाना सर्वथा असम्भव था, प्रत्येक घाटी वालों को अपनी आवश्यक खाद्यसामग्री अपने यहाँ ही उत्पन्न करनी होती थी । बाढ़ अथवा अत्यधिक बर्फ पड़ जाने के तुल्य प्राकृतिक दैवी आपत्तियों के कारण जब कभी वहाँ से आना-जाना बिल्कुल बन्द हो जाता था तब हजारों कश्मीर निवासी बेवस हो अकाल के कारण मर जाते थे । यह प्रान्त बहुत दूर पड़ता था। कश्मीर मे पैदा होने वाली या बनायी जाने वाली वस्तुओं का मूल्य ले जाने की कठिनाइयों के कारण बाजार में पहुँचते-पहुँचते बहुत बढ़ जाता था । इस प्रान्त का अपना कोई विशेष उद्योग-धन्धा नहीं था और वहाँ बनने वाले शालों के धन्धे पर भी शाही अधिकार था और वह काम करने वाले मजदूर भी शाही कारखानों[3] से अपना नियुक्त दैनिक वेतन मात्र पाते थे । शाही दरबार में काम आने वाला सुन्दर कागज केवल कश्मीर में ही वनता था ।

कश्मीर के निवासियों में जो उच्च श्रेणी के थे उनको भी औरंगजेब के शासनकाल के अन्त तक शाही मनसब पाने के योग्य नहीं समझा जाता था । 1699 ई0 में प्रथम बार कश्मीर के सूबेदार की विशेष सिफारिश पर औरंगजेब ने कश्मीर निवासियों को शाही मनसब देने की बड़ी कठिनाई से स्वीकृति दी थी । कश्मीर का शासन सामन्तशाही था ।

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 388-89, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग-2, पृ0 314,

2-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 299,

3-राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 286, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368 ।

गाँव के निवासी बहुत ही दरिद्र थे । वे जंगलियों के समान रहते थे । वे अज्ञान के अन्धकार में रहते थे तथा स्वच्छता की भावना से उनका तनिक मात्र सम्बन्ध नहीं था । यहाँ की झील में यदा-कदा आकस्मिक हानिकारक बाढ़ भी आ जाती थी । भूकम्प भी कभी-कभी आ जाता था एवं मकान हल की लकड़ी के ही बनाये जाते थे । यहाँ इतनी अधिक सर्दी पड़ती थी कि प्रत्येक घर में दिन-रात आग जलाये रखना आवश्यक हो जाता था । जिससे नगरों में आग लगना साधारण सी बात थी । जब कभी यहाँ आग लगती थी तो लकड़ी और घास के बने हुये मनुष्यों के सारे छोटे-छोटे घर एक साथ जल कर साफ हो जाते थे[1]।

औरंगजेब के शासन काल के 48 वर्षो में कश्मीर पर बारह सूबेदारों ने शासन किया । इस प्रकार प्रत्येक सूबेदारों के समय प्रान्त के जीवन में परिवर्तन होता रहता था । सैफ खाँ के समान कई सूबेदारों ने अधिकाधिक धन एकत्र करने के लिए लगातार नये-नये अवैधानिक कर लगाकर कड़ाई के साथ उन्हें वसूल करते रहते थे ।

औरंगजेब के शासनकाल में कश्मीर में कई बार प्राकृतिक विपत्तियाँ भी आयी[2]। जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है- जून 1669 ई0 और 1681 के दो भूकम्प, 1673 और 1678 में दो बार राजधानी में आग लगना, 1681 में बाढ़ का आना और 1688 ई0 में अकाल पड़ना । औरंगजेब स्वयं 1663 ई0 में कश्मीर गया था । इस कश्मीर यात्रा का आँखों देखा विस्तृत विवरण बर्नियर ने लिखा है, 1666 ई0 मे पुनः तिब्बत के बाहरी भाग को भी जीत लिया गया था । फारसी इतिहास ग्रन्थों में यहाँ के शासक का नाम दलदल नजमल दिया है जिसने औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली थी । कश्मीर के तत्कालीन इतिहास की यहाँ महत्वपूर्ण घटनायें थीं[2] ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 390, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग-2, पृ0 443 ।

2- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 283 ।

गुजरात -

गुजरात घरेलू धन्धों और व्यापार के कारण समृद्ध प्रान्त[1] था । गुजरात के सभी निवासी हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वभावत: भारत के अन्य सभी प्रान्तवासियों से कहीं अधिक व्यापार[2] कुशल थे यहाँ अनेक उद्योग थे । जिनमें वस्त्र उद्योग विशेष उन्नति पर था । गुजरात को अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण भी व्यापार सम्बन्धी अनेकानेक लाभ और सुविधाएं प्राप्त थी । खानदेश, मालवा, बरार, जैसे समृद्धिपूर्ण प्रान्तों तथा उत्तरी भारत के अन्य भागों का भी व्यापार का सारा माल विदेशों में भेजने के लिए जहाजों पर लादने हेतु गुजरात ही पहुँचाया जाता था । भारत के बड़े-बड़े बन्दरगाह जैसे- हिन्दू काल में भड़ौच और मुस्लिमकाल में सूरत, गुजरात प्रान्त के ही समुद्री तट पर थे । मुगल काल में बाह्य मुसलमान देशों से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए गुजरात ही भारत का प्रमुख द्वार था । यात्री, व्यापारी, विद्वान, तथा ईरान, अरब, तुर्की, मिश्र, जंजीबार, और खुरासान तथा बर्बरी तक के राजनैतिक शरणार्थी समुद्री रास्ते से गुजरात बन्दरगाहों के द्वारा भारत में प्रवेश करते थे । इस समुद्री रास्ते द्वारा भारत में आने के लिए कम रूपया लगता था, साथ ही यह अत्यधिक सुरक्षित मार्ग था ।

इस प्रान्त की आबादी में विभिन्न जातियों का अनोखा सम्मिश्रण हो गया था । गुजरात के हिन्दुओं में भी अत्यधिक आन्तरिक विभिन्नता थी । 17 वी शताब्दी में इस प्रान्त की भीतरी सीमाओं वाले प्रदेश में कई आदिवासी तथा लुटेरा जातियाँ बसती थी । जिनका सभ्यता से कोई सम्बन्ध ही नहीं था तथा शान्तिपूर्ण जीवन बिताना उनके लिए सर्वथा असम्भव था[3] । पूर्वी सीमा पर जंगली राजपूत या राजपूत- मिश्रित अन्य जातियों का जोर था । दक्षिणी गुजरात में कोली[4] थे, बगलाने के दक्षिण-पूर्वी प्रदेश में भील बसे हुये थे, पश्चिम में काठी थे । इनके अतिरिक्त गिरसिया जाति सम्पूर्ण प्रान्त में फैली थी । ये प्रदेश की शान्ति को भंग करने हेतु सदैव तत्पर रहते थे । औरंगजेब के शासनकाल में गुजरात में उपद्रव करने के लिए

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 281-282।
एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 369 ।
2- जे0 एच0 विलिमोरिया, रूक्कात-ए-आलमगीरी, पृ0 29 ।
3- सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 176-177 ।
4- सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 177 ।

इन गिरासियों के साथ मराठे भी जा मिले, जिससे आगे चलकर मराठों ने इस प्रान्त में मुगल शासन का अन्त कर दिया ।

मध्यकाल में गुजरात प्रान्त में प्रायः अकाल[1] पड़ते रहते थे किन्तु औरंगजेब के शासन काल तक इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आयी और इस प्रकार अकाल पड़ने की निरन्तरता कायम रही । सन् 1681 ई0, 1684, 1690-91, 1695-96, और 1698 ई0 में गुजरात में अकाल पड़ने का विवरण मिलता है । सन् 1696 ई0 में तो ऐसा भयंकर अकाल पड़ा था कि 'पाटल से लेकर जोधपुर तक कहीं भी पानी की बूंद या घास का एक तिनका देखने को नहीं मिल सकता था[2] । इस प्रकार की दैवी विपत्तियों के परिणामस्वरूप नगरों में महामारी कई वर्षों तक निरन्तर बनी रही, फलस्वरूप नगर वीरान हो गये । 1680 में जब मुगल राजपूत युद्ध चल रहा था तब महाराजा राजसिंह के पुत्र भीमसिंह ने गुजरात पर भी हमला किया और बड़नगर, विशालनगर, तथा अन्य समृद्ध नगरों को लूटा । गुजरात प्रान्त की शान्ति को भंग करने वाली यह एक महत्वपूर्ण घटना थी ।

मारवाड़ एवं मेवाड़ -

ये सूबा अजमेर के अन्तर्गत आते थे । मारवाड़ एक मरूभूमि थी किन्तु मुगलकाल में इसका सैनिक एवं आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्व था । मुगल राजधानी से समृद्ध उद्योग-धन्धों वाले शहर अहमदाबाद और खम्भात के काम धन्धेवाले बन्दरगाह को जाने वाला सबसे सीधा व नजदीक व्यापारिक मार्ग मारवाड़ की सीमा में से होकर गुजरता था । औरंगजेब का कहना था कि यदि इस प्रदेश को मिला लिया जाय तो उदयपुर के अभिमानी गौरवपूर्ण राजा को पूरी तरह घेर लिया जायेगा और राजपूताना के ठीक बीचो-बीच में ऐसे लम्बे प्रदेश की स्थापना हो जायेगी जिस पर मुगलों का एकाधिपत्य होगा[3] । उस समय की उत्तरी भारत की सारी हिन्दू रियासतों में मारवाड़ ही सबसे अग्रगण्य और महत्वपूर्ण था ।

1- मुहम्मद अमीन कजवीनी, बादशाहनामा-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तमखण्ड, पृ0 19, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 283, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 368 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 394 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 164 ।
मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 216, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 339 ।

इस समय वहाँ जसवन्त सिंह राज्य कर रहा था । 1678 ई0 में जसवन्त सिंह की मृत्यु हुयी यह समाचार सुनते ही औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को एकदम मुगल शासन में ले लिया[1]।

जसवन्त की मृत्यु[2] से राठौर जाति बड़ी ही व्याकुल एवं अस्त व्यस्त हो गयी तथा वहाँ सर्वत्र गड़बड़ी मच गयी । राज्य पर कोई भी शासक नहीं रह गया था एवं राज्य में बढ़ी-चढ़ी आती हुयी सुसंचालित सशक्त मुगल सेना का सामना करने की शक्ति मारवाड़ राज्य में नहीं रह गयी थी ।

मारवाड़ को मुगल राज्य में मिलाने से मेवाड़ को जीतना सरल हो गया था । महाराणा के पास जजिया कर को फिर लगाने का शाही हुकुम गया कि मेवाड़ के सम्पूर्ण राज्य में इसे लागू किया जाये । औरंगजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया । अपनी सेना लेकर हसनअली पुर से आगे बढ़ा, राणा के प्रदेशों में लूट-पाट करता हुआ वह प्रधान मुगल सेना के लिए रास्ता साफ करता जा रहा था । राणा और उसकी प्रजा तलहटी के मैदानों को छोड़कर पहाड़ों में जा पहुँचे । जब मुगल सेना उदयपुर पहुँची तब वह शहर निर्जन हो गया था । मुगलों ने उदयपुर पर अधिकार कर लिया[3] । औरंगजेब का जाल जब मारवाड़ पर मुगल अधिपत्य स्थापित करने के लिए फैल गया तब ही शहजादा अकबर का विद्रोह हो गया[4] । जिससे मारवाड़ में युद्ध सम्बन्धी औरंगजेब की सारी योजनाओं में गड़बड़ी हो गयी । इस सबके फलस्वरूप अब मारवाड़ राज्य पर पहले जैसा सैनिक दबाव नहीं रहा । इसी समय महाराणा जयसिंह के वीर भाई भीमसिंह और अर्थमन्त्री दयालदास ने गुजरात तथा मालवा के शाही इलाकों पर आक्रमण कर वहाँ बहुत लूट पाट की थी ।

वास्तविक युद्ध की दृष्टि से राजपूत-युद्ध में दोनों पक्ष बराबर ही रहे किसी भी एक की हार या जीत नहीं हुई परन्तु आर्थिक दृष्टि से यह युद्ध महाराणा की

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 216-217, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 641, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 339 ।

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 211 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 167-168 ।

4- खाफी खाँ, मुन्खब-उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड पृ0 213, 216,220,224, । एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 343

प्रजा के लिए ही अहितकर तथा हानिकारक साबित हुआ । मैदानों में खड़े हुये उनके खेत के खेत शत्रुओं ने नष्ट कर दिये । मेवाड़ के लोग हार को टाल सकते थे परन्तु अनाज की कमी को दूर करना उनके लिए सम्भव नहीं था । दोनों पक्ष सन्धि के लिए उत्सुक हो उठे । महाराणा जयसिंह 1681 ई0 को शहजादा मुअज्जम से मिला और मुगलों के साथ सन्धि कर ली । जिसकी दो शर्त थी[1]।

1-मेवाड राज्य से वसूल की जाने वाली जजिया कर की रकम के बदले में महाराणा ने माण्डलपुर और बदनौर के परगने मुगल साम्राज्य को दे दिये ।

2-मुगलों ने मेवाड़ राज्य को छोड़ देने का वादा किया । मेवाड़ राज्य जयसिंह को वापस दे दिया गया उसे राणा की उपाधि देकर औरंगजेब ने पंचहजारी का मनसबदार बना दिया ।

इस प्रकार अन्त में मेवाड़ राज्य को अपनी शक्ति एवं स्वतन्त्रता प्राप्त हुयी किन्तु मारवाड़ के भाग्य में तो यह भी न लिखा था । अगले तीस वर्षो तक मारवाड़ में निरन्तर युद्ध चलता ही रहा, जिससे वह सारा प्रदेश उजड़ गया । अशान्ति, अकाल तथा बीमारी ने एक साथ ही उस प्रदेश को निर्जन भी बना दिया। उधर अकबर का शत्रुओं के साथ जा मिलने से मुगल साम्राज्य के लिए खतरा हो गया । अब औरंगजेब के लिए अपनी सारी सेनाएं दक्षिण में ही केन्द्रित करना अत्यावश्यक हो गया । औरंगजेब को स्वयं दक्षिण जाना पड़ा[2] अत: मारवाड़ पर मुगलों का अधिकार ढीला पड़ने लगा और इस तरह राठौर की मुक्ति हुयी । दक्षिणी युद्ध क्षेत्र की सैनिक परिस्थिति में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव मारवाड़ पर मुगलों के अधिपत्य की दृढ़ता एवं ढिलाई में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता था ।

दुर्गादास के समान सुयोग्य मार्ग प्रदर्शक की देख रेख में धीरे-धीरे राठौरों की युद्ध प्रणाली बदलने लगी । मराठों ने जिस प्रणली को अपनाया था उसी को अपनाकर राठौर वीर शाही फौजों को थका देने लगे । उस उजाड़ मरू भूमि

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 174, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 219, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 644, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 346, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 15 ।
2- एस0 आर शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 346 ।

में शाही सेनानायक असहाय होकर राठौरों को चौथ देने को तैयार हो जाते थे कि कम से कम उन्हें ऐसा करने से शान्ति प्राप्त हो[1] । तीस वर्ष तक युद्ध कई चरणों मे चलता ही गया । 1709 ई0 में जब विजयी अजीत सिंह ने अन्तिम बार पुनः जोधपुर में प्रवेश किया और जब दिल्ली के मुगल सम्राट ने भी उसे जोधपुर का शासक स्वीकार कर लिया तब जाकर कहीं युद्ध का अन्त हुआ[2] ।

आगरा -

आगरा बड़ा शहर था । यह लन्दन की तरह बड़ा एवं ज्यादा आबादी का था[3] । सम्पूर्ण राह में रसद एवं अन्य वस्तुओं का बाजार था । यह बाजार इतना भरा हुआ था मानो कोई आदमी बाजार में ही हो । आगरा से होने वाली आय 82,25,00,000 दाम थी[4] । शाहजहाँ के प्रतिदिन पहनने तथा आगरा के किले में सुरक्षित रखे जाने वाला हीरा, मोती आदि जवाहरातों को लेकर पिता-पुत्र में मतभेद हुआ । शाहजहाँ कभी नहीं भूल सका कि ये उसकी निजी सम्पत्ति थे और न्याय की दृष्टि से औरंगजेब का राज्य, और साथ ही राज्य के खजाने तथा माल पर कोई अधिकार नहीं था । उसके जवाब में औरंगजेब का कहना था कि शाही खजाना तथा माल जनता के हित एवं कल्याण के लिए है यही कारण है कि उन पर कोई भी कर नहीं लगाया गया । बादशाह खुदा का चुना हुआ उसका रक्षक-मात्र है, जो उसकी इस अमानत को अपने अधिकार में रखकर उसे लोगों के उपकार में लगाये। इस प्रकार सिंहासनारूढ़ होने पर अब आगरे की सारी सम्पत्ति उसकी हो चुकी है। आगरे से भागते समय दारा भी अपनी स्त्रियों और लड़कियों के 27 लाख के जवाहरात आगरे के किले में छोड़ गया था । औरंगजेब ने उसे भी मांगा। किले पर अधिकार करते ही औरंगजेब 1658 ई0 में वहाँ के सारे शाही जेवर, कपड़े, सामान और किले के कमरों तक पर अपनी मुहर लगवा[5] दी थी। सम्पूर्ण माल को बड़ी सख्ती के साथ जब्त कर उसे पूरी सावधानीपूर्वक निगरानी में रखने की आज्ञा दी थी। बहुत ही कठिनाइयों से औरंगजेब को राज्य सिंहासन प्राप्त करने में सफलता

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 175 ।
   आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 644 ।
2- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 645 ।
   एस0 आर.0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 348 ।
3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, पृ0 281 ।
4- मुहम्मद शरीफ हनफी, मजालिस-उस-सलातीन-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड पृ0 97 ।
5-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 108-109 ।

मिली । उसका विवरण करते हुये वह गौरव के साथ कहा करता था कि उसकी यह सफलता भी स्पष्टतया साबित करती थी कि उसका पक्ष सच्चा था जिससे ईश्वर ने भी उसका ही साथ दिया ।

उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश-

भारत से कश्मीर और अफगानिस्तान जाने वाली घाटियों और उनके आस-पास की पहाड़ियों में सम्मिश्रित तुर्की और ईरानी जातियों के अनेकों घराने रहते थे जो उत्तर में पठान और दक्षिण में बलूच कहलाती थी । इस्लाम धर्म[1] में दीक्षित हो जाने पर भी अपने प्राचीन जातीय संगठन, बोल-चाल और लूटमार करने के अपने पेशे को नहीं छोड़ा[2] ।

मैदान मे रहने वाली दूसरी जातियों से अधिक वीर और साहसी होते हुये भी अपने जातीय और कई बार कुटुम्बी झगड़ों के कारण ही उनमें कभी एकता नहीं हुयी । यही कारण है कि सारे इतिहास में कहीं भी अधिक समय तक बने रहने वाले उनके किसी सुसंगठित राज्य की स्थापना का वर्णन नहीं मिलता है ।

वे किसी प्रकार का कोई राष्ट्र निर्माण नहीं कर सके । उनका संगठन जातीय संगठन से अधिक नहीं हुआ और उनके इस जातीय संगठन में राजपूतों के समान ही कड़े अनुशासन की कमी थी । अफरीदी या यूसूफजाई जाति वाले केवल अपने मुखिया की ही बात सुनते थे और वह भी केवल उस समय जब उनका उनसे कोई स्वार्थ हो । कुटुम्बों के निरन्तर बनने और टूटने वाले इन दलों के अतिरिक्त किसी भी अफगान जाति की सुरक्षा तथा उनकी ओर से आक्रमण करने के लिए किसी भी प्रकार की कोई दूसरी सेना नहीं होती थी । अफगान समाज में सारी शक्ति विभिन्न परिवारों में ही सीमित थी । जातीय संगठन भी उनमें नहीं था[3]। अफगान मेहनती, साहसी, तथा चालाक होते थे । उनका एकमात्र वंश-परंपरागत व्यवसाय पहाड़ी मार्गो पर लूटमार करना था । उनकी निरन्तर बढ़ती हुयी आबादी के लिए खेती से होने वाली थोड़ी सी आमदनी किसी भी प्रकार पूरी नहीं पड़ती थी । पहाड़ों में बसने वाली अफरीदी यूसूफजाई और खटिक जातियों को भारत से

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 228-229 । जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 127
2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 209 ।
3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 127-128 ।
आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 633 ।

कावुल आने जाने वालों से कर वसूल करने का अधिकार था यह बात मुगलों ने भी स्वीकार कर ली थी । मुगलों ने यह अनुभव किया कि उस प्रदेश में शान्ति बनाये रखने के लिए सैनिक शक्ति द्वारा इन जातियों को नियन्त्रण में रखने की अपेक्षा उन्हें आर्थिक प्रलोभन देकर वश में करना अधिक सरल था । कभी-कभी इनमें से कोई झूठ कहकर कि वह पवित्र घराने का वंशज है मुखिया बन जाता था। अपने ही खर्च से नवयुवाओं के दलों को खिला-पिलाकर वह उन्हें संगठित करता और फिर अचानक विपक्षी कुनबों के खेतों पर आक्रमण कर बैठता या कभी शाही इलाकों में भी लूटमार करता था । जब तक यह लूटमार का ताँता न टूटता तब तक उस दल का संगठन टूटने नहीं पाता था । लूटमार की सामग्री के बँटवारे को लेकर उनमें मतभेद हो जाता था तो वे आपस में लड़ जाते थे जिससे दल बिखर जाता था[1] । मुगल बादशाह अपनी प्रजा की सुरक्षा के लिए जहाँ ये जातियाँ बसती थी उन घाटियों में अपनी बड़ी-बड़ी सेनाएं भेजकर उन जातियों के दलों के संगठित विद्रोह दबाकर उनके घरों को बरबाद करवा देता था । मैदानों पर सैनिक थानों को स्थापित कर वहाँ अधिकार स्थायी बनाने का प्रयत्न किया जाता था । अफगानों की खेती उजाड़ दी जाती और तलवार के घाट उतारकर संख्या कम कर दी जाती थी। कभी-कभी कमजोर थानों पर आकमण करके ये अफगान वहाँ के मुगल सैनिकों को मार[2] डालते थे । कुछ वर्षो में अफगानों की आबादी फिर बढ़ जाती थी । जिससे मुगलों द्वारा मारे गये अफगानों की संख्या पूरी हो जाती तब पुनः अफगानों के दल के पास-पड़ोस के प्रदेशों या व्यापारियों के कारवाँ पर भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़ते ।

1676 ई0 में युसुफजाइयों ने आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया । भगू[3] नामक व्यक्ति उनके महान व्यक्तियों में था । वह झूठ बोलकर एक व्यक्ति को राजघराने का वंशज बताकर मुहम्मद बादशाह के नाम से गद्दी पर बैठाया । स्वयं उसका वजीर बनकर एक फौज का संगठन किया । वह हजारा जिले

1- यूसुफजाई जाति के एक सन्त ने अपनी जाति को एक साथ ही वरदान और अभिशाप देते हुये कहा था कि तुम हमेशा स्वतन्त्र रहो, और कभी संगठित न हो, (एलफस्टन, पृ0 338) जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 129 ।
मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 210 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 129 ।

3- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 633 ।
एस0 आर शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 323 ।

को जीतकर उस प्रदेश के किसानों से लगान वसूल किया । युसूफजाइयों के एक दूसरे दल ने पश्चिमी पेशावर के शाही इलाकों और अटक जिले में लूटमार करना आरम्भ कर दिया । औरंगजेब सीमान्त प्रदेश को सुरक्षित रखने हेतु घूस के रूप में छः लाख रूपया वार्षिक देता था ।

बादशाह ने शाही इलाकों की रक्षा के लिए पूरा-पूरा प्रवन्ध किया और हुक्म दिया कि शाही सेना के तीन दल आक्रमणकारियों के प्रदेश पर आक्रमण करें। 1 अप्रैल 1667 ई0 को अटक के फौजदार कामिल खाँ ने शत्रुओं पर आक्रमण कर उन्हें नदी तक मार भगया । इस प्रकार सिन्धु नदी के आस-पास वाले शाही इलाके में शत्रु न रहें[1] । जदुनाथ सरकार के अनुसार, अफगानिस्तान से शाही सेना के एक दल को लेकर शमशेर खाँ ने सिन्धु को पार किया । युसूफजाइयों के प्रदेश में पहुँचकर उसने शाही सेना के प्रधान सेनापति का काम सँभाल लिया। उसने उनसे कई लड़ाइयाँ लड़ी तथा कई में उसे विजय भी प्राप्त हुई। मंदौर के प्रदेश में खेती करके यूसूफजाई यहाँ धान पैदा करते थे । शमशेर खाँ ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया और युसूफजाइयों की सारी खेती, मकान, तथा अन्य जायदाद नष्ट कर दी । पंचशिर नदी के तट पर मंसूर नामक स्थान तक उसने शत्रुओं को भगा दिया । इसके कुछ ही समय बाद मुहम्मद अमीन खाँ को यहाँ की शाही सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया । अन्त में शमशीर खाँ[2] के "सारे अधिकार मुहम्मद अमीन खाँ ने सँभाल लिय । इस तरह अनेकानेक बार हार खाने और इतनी हानि उठाने के बाद इस समय तो युसूफजाई कुछ समय के लिए दब गये । इस प्रकार पशिमोत्तर इलाके में 1672 ई0 तक फिर कोई विद्रोह न हुआ[3] ।

पंजाब -

जब औरंगजेब बादशाह बना तब हरराय सिखों के गुरू थे । गुरू हरराय का दाराशिकोह से मेल-जोल था इस कारण औरंगजेब ने गुरू को दरबार में आने का आदेश दिया । गुरू हरराय ने अपने पुत्र रामराय को दरबार में भेजा जिसे औरंगजेब ने अपने साथ मिला लिया । इस कारण गुरू हरराय ने गद्दी अपने दूसरे

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 130 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 210 ।
आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 634 ।
एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 324 ।

3- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 634-635 ।
जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 131-132 ।

पुत्र हरकिशन को सौपी । रामराय ने औरंगजेब की सहायता लेकर गद्दी पर अधिकार करने का प्रयत्न किया जिसके कारण गुरू हरकिशन को दरबार में बुलाया गया । आठवें गुरू हरकिशन की 1664 ई0 में मृत्यु हो गयी[1] ।उनके पश्चात सिख समुदाय ने हरगोविन्द के पुत्र तेगवहादुर को अपना गुरू माना । गुरू तेगबहादुर 1664ई0 से 1675 ई0 तक गुरू के पद पर रहे । उनके शहीद होने के पश्चात उनके पुत्र गुरू गोविन्द सिंह नें सिक्खों का नेतृत्व संभाला[2] । गुरूओं की परम्परा में गुरू गोविन्द सिंह अन्तिम गुरू थे । उनके समय सिख मुगल संघर्ष चलता रहा। औरंगजेब ने गुरूगोविन्द सिंह के विरूद्ध अनेक सेनाएं भेजी स्थानीय मुगल अधिकारियों ने निरन्तर उनसे युद्ध किये और पॉच बार उनके आनन्दपुर के घर को घेरा गया[3] । गुरू एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर लड़ते रहे, उनके दो पुत्र युद्ध में मारे गये । अन्य दो पुत्रों को जीवित दीवार में चिनवा दिया गया और स्वयं वह भी विभिन्न कठिनाइयों में रहे । अन्त में वे दक्षिण भारत चले गये ।

उन्होंने पंजाब में सिखों को एक शक्तिशाली सम्प्रदाय बनाने में सफलता पायी जिसके कारण आगे आने वाले समय में पंजाब की राजनीति में सिखों का महत्वपूर्ण स्थान हो गया । उनके बारे में कहा जाता है कि ''सिखों के अन्तिम गुरू अपने लक्ष्य की पूर्ति अपने जीवन में न देख सके, परन्तु उन्होंने एक पराजित व्यक्ति समूह की सोई हुई शक्तियों को जागृत कर दिया और उन्हें सामाजिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय महत्ता की उत्कृष्ट अभिलाषा के श्रेष्ठ और उपर्युक्त आदर्श से प्रेरित किया[4]''। पंजाब अत्यधिक परिश्रमी कृषकों के कारण अपनी समृद्धि के मार्ग पर चलता रहा । टेरी पंजाब के विषय में कहता है कि ''यह एक बड़ा प्रान्त है तथा अत्यन्त उपजाऊँ है । लाहौर इसका प्रधान नगर है । यह वहुत बड़ा वना हुआ है इसमें मनुष्य और धन दोनों की प्रचुरता है यह सम्पूर्ण भारत में व्यापार की दृष्टि

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 215 ।
एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 333 ।

2- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 182, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 335 ।

3- एल0पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 182-183, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 640 ।

4- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग- 2, पृ0 216, एस0 आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 336, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 183 ।

से प्रधान नगरों में एक है[5]।

बुन्देलखण्ड -

बुन्देलखण्ड के ओरछा में केन्द्रित बुन्देलों का विद्रोह, मुगलों द्वारा अधिक से अधिक संभावित राज्यों को अपने अधीन करने की कोशिश और दूसरी तरफ स्थानीय शासक गुट का अपनी संप्रभुता को बचाने के प्रयास है । मुगल प्रशासनिक विभाजन में, अधिकांश बुन्देलखण्ड इलाहाबाद के सूबा में आता था । जब कि कुछ अन्य क्षेत्र जैसे कालपी, चंदेरी, आगरा तथा मालवा सूबा में पड़ते थे। बुन्देलों के उद्‌भव से पहले इस क्षेत्र में चंदेलों का प्रभुत्व था ।

औरंगजेब जब अपने प्रतिद्वन्दियों से निपटकर दिल्ली की गद्‌दी पर बैठा तो उसने अपने शासनकाल के चौथें वर्ष में चंदेरी के देवी सिंह को आज्ञा दी कि चम्पतराय को मालवा और बुन्देलखण्ड के जागीरदारों और जमींदारों की मदद से कुचल दिया[1] जाये । चम्पतराय के लिए भारी मुश्किल पैदा हो गयी उसके अपने सहयोगी और सम्बन्धी उसके खिलाफ हो गये थे । चम्पतराय सहरा की ओर भागा ताकि इन्द्रमणि धंदेरा के यहाँ शरण ली जा सके। मुगल सहरा की ओर बढ़े परिणामस्वरूप धंदेरा ने चम्पतराय को मार डालने की योजना बनायी। धंदेरा की इस विश्वासघाती चाल को देखकर चम्पतराय ने खुद अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली[2]

चम्पतराय का दुखद अन्त[3] यद्यपि मुगलों के खिलाफ बुन्देलों के प्रतिरोध के एक अध्याय को बन्द कर देता है लेकिन उसके प्रसिद्ध पुत्र छत्रसाल बुन्देला ने वीरतापूर्ण कारनामों से अगला अध्याय प्रारम्भ किया और सदा मुगलों के लिए एक कॉंटा बनकर जिन्दा रहा । छत्रसाल शिवाजी के पास भाग गया । शिवाजी ने उसे वापस बुन्देलखण्ड जाने को कहा । छत्रसाल ओरछा के शासक सुजान सिंह[4] बाकी

5-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 281, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368 ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 383 ।

2- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड-2, पृ0 638-640, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास पृ0 647 ।

3-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 213, मुहम्मद अमीन कजवीनी, बादशाहनामा - ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 46 ।

4- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 384 ।

खान और दूसरों का समर्थन प्राप्त करने में सफल रहा । छत्रसाल के साथ मिलकर सभी लोग मुगलों को चुनौती देना चाहते थे । चम्पतराय के पुराने सिपाही और सेनापति, जो अपने प्रिय नेता की मृत्यु के बाद बहुत दयनीय स्थिति में रह रहे थे, उसके पुत्र की छाया में पुनः संगठित होने लगे । वे छोटे-छोटे जमींदार और जागीरदार जो छत्रसाल का मुकाबला नहीं कर सके या जो अपने भविष्य को तलवार की बदौलत बनाना चाहते थे उन्होंने अपने को छत्रसाल के साथ जोड़ा । इसप्रकार छत्रसाल ने अपने पूर्वजों की जमीन पर मुगलों के शासन को चुनौती देने के लिए पर्याप्त शक्ति जुटा ली । उसने कई जमींदारों को भी कब्जे में कर लिया एवं 1675 ई0 में उसने पन्ना को भी अधिकारों में किया तथा उसे अपनी राजधानी बनाया[1] । उसका भाई अंगद, रतनशाह, अमर दीवान, पृथ्वीराज, जामशाह, कहरा के ताज सिंह, तथा संगरूर का राजा, अन्य कई लोग छत्रसाल के इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गये । करीब सत्तर मुख्य राजकुमार छत्रसाल के साथ जुड़ गये ।

छत्रसाल के तीव्र गति से बढ़ते हुए यश और शक्ति को देखकर मुगलों ने छत्रसाल के खिलाफ कई चढ़ाइयाँ की जिनके परिणामस्वरूप वह पाँच बार हारा-1678, 1679, 1681, 1682 और 1707 । उसका बार-बार आत्मसमर्पण करना उसकी कूटनीति का द्योतक है जिसमें उसने इस बात को अच्छी तरह से समझा कि मुगलों के साथ लम्बी लड़ाई सम्भव नहीं है । इस संघर्ष में मुगलों के पास उनके सारे साम्राज्य की शक्ति एक इशारे पर हाजिर थी जबकि छत्रसाल बुन्देलखण्ड के केवल एक हिस्से और वह भी अधिकांशत: कम उपजाऊ हिस्से पर अधिकार रखता था[2] । इसके साथ ही दतिया, ओरछा, और चंदेरी के राजओं के शत्रुतापूर्ण व्यवहार पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । अगर समय के साथ छत्रसाल अपनी नीति नहीं बदलता तो मुगलों के हाथ उसकी बहुत ही बुरी पराजय होती ।

उसके अन्तिम आत्मसमर्पण के बाद छत्रसाल को 4,000 का मनसब दिया गया और राजा घोषित किया गया[3] । छत्रसाल के नेतृत्व में हुए बुन्देलखण्ड विद्रोह की एक बहुत महत्वपूर्ण विशेषता उसकी शक्ति और लोकप्रियता में बहुत तेजी से वृद्धि होना था । प्रारम्भिक चरण में छत्रसाल को मध्यम जमींदारों से समर्थन

1-मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, खण्ड-2, पृ0 213 ।

2-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 385, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड-2, पृ0 640-41 ।

3-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 384, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 647 ।

मिला[1] तथा बाद में छोटे जमींदारों का । ये जमींदार उसी शक्ति के साथ मिले जहाँ उनके हितों की रक्षा हो सकती थी । जब भी उन जमींदारों को यह आभास होता था कि छत्रसाल उन पर आक्रमण करेगा[2] तब ये आत्मसमर्पण कर देते थे किन्तु जैसी ही परिस्थितियाँ पूर्व की भाँति हो जाती वे बादशाह से माफी की दरख्वास्त देने में संकोच नहीं करते थे । इसके अलावा सेना में भर्ती के लिए किसी विशेष नियम या किसी कुल विशेष को कोई प्राथमिकता नहीं दी गयी । छत्रसाल ने अपनी सेना में बुन्देलों तथा दूसरी राजपूत जातियों जैसे संगर, परिहार, पनवार, मोंड के धंदेरा और वनिया जातियों, हिन्दू समाज के पिछड़े एवं कुचले वर्गो के हिस्से तथा मुसलमानों को भी अपनी सेना में भर्ती किया । जिस क्षेत्र में छत्रसाल का राज्य था किसानों को बहुत कम आकर्षित करता था यहाँ की राजनीतिक अस्थिरता के कारण वातावरण व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के लिए समुचित नहीं था । इसलिए अधिकांश लोगों ने लूट और खजानों के माल में हिस्सा बांटने के लिए छत्रसाल का साथ दिया । वे बड़ी संख्या में बुन्देली सेना में भर्ती हुए और लूट के माल में हिस्से की आशा में ही प्रायः वे कम वेतन पर भी तैयार हो गये । यही कारण था कि छत्रसाल इतनी बड़ी सेना आसानी से संगठित कर सका[3]।

मराठा राज्य -

खानदेश और बरार वास्तव में दो प्रान्त है परन्तु इनको एक सूबा माना जाता था[4] शिवाजी ने मुगलों के साथ सन्धि की शर्तानुसार 1668 ई0 में प्रतापराव और नीराजी राव जी की अधीनता में एक मराठा सेना औरंगाबाद भेजा । शम्भूजी को पुनः पंचहजारी मनसब दे दिया गया । मनसब की जागीरें उसे बरार में दी गयी। 1667 ई0 से लेकर 1669 ई0 तक के तीन वर्षो में शिवाजी मुगलों के आश्रित राजा बनकर बिल्कुल ही शान्त रहे वास्तव में इन तीन वर्षो तक शिवाजी बहुत ही व्यस्त थे । इसकाल में उन्होने बड़ी ही बुद्धिमानी के साथ सारी व्यवस्था बनाकर अपने राज्य के शासन-संगठन की नींव बहुत गहरी और सुदृढ़ बना दी ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 385, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड-2, पृ0 641-42 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 213 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 385, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग-2, पृ0 649,

4-मुहम्मद शरीफ हनफी, मजालिस-उस-सलातीन-ईलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 98 ।

औरंगजेब को सदैव अपने पुत्रो के प्रति सन्देह बना रहता था । शिवाजी और मुअज्जम की इस मित्रता को भी उसने अपने राज्य सिंहासन के लिए एक भावी खतरे का प्रारम्भ ही समझा । 1666 ई0 में औरंगजेब ने शाही दरबार में जाने के लिए शिवाजी को उधार दिये गये एक लाख रूपये वसूल करने के लिए वरार में[1] दी गयी शिवाजी की नयी जागीर का कुछ भाग कुर्क करने में पूरी कंजूसी दिखायी। अपनी जागीर की इस जब्ती का समाचार मिलने पर 1669 ई0 के अन्त में शिवाजी पुनः बागी बनकर मुगलों से लड़ने को तत्पर हुए ।

इन लड़ाइयों के कारण मुगलों की सैनिक शक्ति बहुत ही कुंठित हो गयी थी । इस सुवर्ण अवसर से शिवाजी ने पूरा-पूरा लाभ उठाया । मार्च 1670 ई0 में सूरत के अग्रेज व्यापारियों ने लिखा[2] ''पहले शिवाजी चोर की तरह चुप-चाप जल्दी जल्दी चलते थे परन्तु अब उनकी हालत बदल गयी है । तीस हजार सैनिकों की एक बड़ी फौज को साथ लिये वे देश पर देश जीतते हुए आगे बढ़ते जाते है और शहजादे के इतने नजदीक होते हुये भी वे उसकी कोई परवाह नहीं करते है'' 3 अक्टूबर 1670 ई0 को शिवाजी ने दूसरी बार सूरत लूटा[3] ।

सरकारी जांच द्वारा निश्चित हुआ कि शिवाजी कुल मिलाकर 66 लाख रूपये का माल सूरत से लूट ले गये थे परन्तु मराठों द्वारा लूटे गये माल के मूल्य से ही सूरत की वास्तविक हानि का पूरा पता नहीं लग सकता था । भारत के इस सबसे धनवान बन्दरगाह का सारा व्यापार ही इस लूट के फलस्वरूप बहुत कुछ चौपट हो गया । शिवाजी के वापस लौट जाने के कई वर्ष बाद तक मराठा सेना के आक्रमण की सम्भावना मात्र से ही सूरत नगर भय से आतंकित हो उठता था। ऐसे समय व्यापारी जल्दी-जल्दी अपना सामान जहाजों पर रख आते थे नागरिक गाँवों में भाग जाते थे और यूरोपीय व्यापारी शीघ्रता के साथ सुवाली पहुँचकर वहाँ आश्रय लेते थे । मराठों के आक्रमण तथा लूट के आतंक और त्रास के कारण सूरत से सारा विदेशी व्यापार पूर्णतया लुप्त हो गया । सूरत की लूट के पश्चात शिवाजी के नेतृत्व में मराठा सेना ने रास्ते में अहिवन्त तथा बगलाना के तीन और किलों

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 212 । एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 364-365

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 214 ।

3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 231, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 366 ।

को जीतने के बाद खानदेश पर आक्रमण कर दिया । तीव्रता के साथ शिवाजी ने बुरहानपुर से दो मील दूरी पर स्थित बहादुरपुरा गाँव को लूटा । इसके बाद शिवाजी ने बरार में पहुँचकर धन-धान्यपूर्ण सुसमृद्ध नगर को बुरी तरह लूटा । महीन कपड़ा, सोना, चांदी, आदि कुल मिलाकर कोई एक करोड़ रूपये का माल वहाँ लूट में मराठों के हाथ लगा[1] जिसे चार हजार बैलों और गधों पर लादकर ले गये । जदुनाथ सरकार के अनुसार, "जिस समय शिवाजी बरार में लूट रहे थे उसी समय मोरे त्रिम्बक पिंगले की अधीनता में मराठों का एक दल पश्चिमी खानदेश और बगलाना लूट रहा था । शिवाजी के बरार से लौटने पर मराठों का यह दूसरा दल भी साल्हेर के पास उनके साथ आ मिला तब मराठों की इस सम्मिलित सेना ने साल्हेर के किले का घेरा डाला । दाऊँद खाँ ससैन्य मुल्हेर तक जा पहुँचा था परन्तु वहाँ से आगे वह नहीं बढ़ सका क्योंकि तब तक रात हो गयी थी और दाऊँद खाँ की सेना भी बहुत पिछड़ गयी थी उधर समय पर दाउद खाँ के आवश्यक सहायता न दे सकने के फलस्वरूप 1671 ई० में साल्हेर किले पर शिवाजी का अधिकार हो गया[2] "मराठों के हाथों इन पराजयों और विफलताओं का विवरण सुनकर औरंगजेब ने पूर्णतया जान लिया कि दक्षिण की परिस्थिति बहुत गम्भीर हो गयी है। उसने महावत खाँ को दक्षिण की मुगल सेना का सेनापति नियुक्त किया किन्तु महावत खाँ को विशेष सफलता नहीं मिली जिससे औरंगजेब महावत खाँ से असन्तुष्ट हो गया और यह सन्देह होने लगा कि यह शिवाजी से गुप्त समझौता तो नहीं किया है अतः औरंगजेब ने बहादुर खाँ व दिलेर खाँ को भेजा । वे गुजरात से बगलाना आये तथा साल्हेर के किले का घेरा डाला । मुगल सेना ने डटकर मराठों का सामना किया किन्तु सफलता मराठों को मिली तथा शिवाजी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी[3]।

उत्तर में सूरत के अन्तर्गत रामनगर से लेकर दक्षिण में बम्बई प्रान्त के कनारा जिले में गंगावती नदी तक के इस भू-भाग में पुर्तगालियों द्वारा अधिकृत परगनों को छोड़ते हुये बाकी सारा प्रदेश शिवाजी के मृत्यु के समय तक शिवाजी के ही राज्य में था । उनके राज्य की पूर्वी सीमा उत्तर में बगलाना को सम्मिलित करती हुयी दक्षिण मे नासिक, और पूना के परगनों के बीच दक्षिण की ओर बढ़ती थी और सतारा का सारा परगना तथा कोल्हापुर परगने का बहुत सा हिस्सा शिवाजी के राज्य में था । उन्हीं से लगा बेलगाँव से लेकर मद्रास प्रान्त के बेलारी परगने

1- एस० आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 366 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ० 216, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ० 232 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ० 216-217 ।

के सामने वाले तुंगभद्रा के तट तक फैला[1] हुआ कर्नाटक देश का पश्चिमी भाग था, जिसे कुछ समय पहले जीतकर शिवाजी ने स्थायी रूप से अपने राज्य में मिला लिया था ।

वर्तमान मैसूर राज्य का उत्तरी, मध्य एवं पूर्वी भाग तथा मद्रास प्रान्त के बेलारी, चित्तूर, और अर्काट के परगने पड़ते थे । शिवाजी ने इसे कुछ समय पहले जीता था परन्तु अब तक वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी थी इसी कारण 1680 ई0 में वहाँ मराठा सेना नियुक्त थी ।

अपने राज्य के इन सुव्यवस्थित प्रदेशों के अतिरिक्त निरन्तर घटने-बढ़ने वाली एक बहुत चौडी पट्टी इस प्रदेश की भी थी । यहाँ शिवाजी की आज्ञा मान्य होती थी । प्रत्येक वर्ष जब मराठा सेना यहाँ पहुँच जाती थी तब वहाँ निश्चित 'कर' जिसे मराठी भाषा में 'खण्डणी' कहते थे वसूल हो जाता था । उस प्रदेश के निश्चित लगान का चौथाई भाग ही मराठा वसूल करते थे ।मराठों को दिया जाने वाला यह कर साधारण बोलचाल में 'चौथ' भी कहलाने लगा[2] । चौथ देने से मात्र मराठा कर्मचारियों से छुटकारा प्राप्त होता था और किसी प्रकार का लाभ नहीं होता था । शिवाजी के दरबारी सभासद के अनुसार उनकी आय कुल मिलाकर एक करोड़ हूण के लगभग होती थी और यदि पूरी-पूरी चौथ वसूल हो जाती थी तो उससे 80 लाख हूण और प्राप्त हो जाते थे ।

अपने उपयोग की सारी आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए शिवाजी नियमित रूप से प्रतिवर्ष अपनी सेना शत्रु राज्यों में भेजते थे । वर्षा ऋतु में सारी मराठा सेना अपने राज्य के ही सैनिक पड़ावों में विश्राम करती थी । अगले आठ महीनों तक दूसरे राज्यों के प्रदेशों में ही रहकर अपना भरण-पोषण करना तथा वहाँ से कर वसूल करना उसका प्रधान कार्य होता था । ब्राहमणों के साथ न तो कोई अत्याचार किया जाता था और न ही किसी प्रकार की कर वसूली की जाती थी । अपने घर लौटने पर प्रत्येक सैनिक को अपनी लूट का माल राज्य को दे देना पड़ता था[3]। इरफान हवीब ने लिखा है कि मराठा राज्य में मुख्यत: चार प्रकार की जमीने थी। मिरास, इनाम, राजकीय, और बंजर । शिवाजी ने 1/3 से लेकर 2/5 तक उत्पादन

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 227 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 228, सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 174

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 228-29 ।

पर भूराजस्व कर लगाया[1]।

जब मुगलों ने दक्षिण को जीत लिया तब उन्हें राजस्व की वसूली में मराठा आक्रमणों के कारण कठिनाई आती थी । इसलिए दक्षिण के राज्यों में वसूली का कार्य कठिन हो जाता था[2]। मराठा आन्दोलन जो मुगल साम्राज्य के केन्द्रीयकरण के विरूद्ध क्षेत्रीय प्रतिक्रिया के रूप में आरम्भ हुआ था इसकी परिणति शिवाजी द्वारा दक्षिण-मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों को अपनाये जाने में हुई [3]। मुगलों और मराठों के संघर्ष का चौथ और सरदेशमुखी मुख्य कारण था । विजित स्थानों से चौथ वसूल करना गुजरात के जमींदारों की पुरानी प्रथा थी । गुजरात की विजय के बाद अकबर ने गुजरात के जमींदारों को एक चौथाई भूमि जिसे वाँठ कहते थे, छोड़ दी थी । पोरबन्दर की आय का एक-चौथाई भाग मुगल स्थानीय जमींदारों को देते थें । चौथ[4] की वसूली विजित क्षेत्रों से ही की जाती थी । शिवाजी ने मुगल क्षेत्रों में लूट-मार करके इसे वसूल करना प्रारम्भ किया और इस प्रकार मुगल साम्राज्य का सामना करने के लिए अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने के लिए साधन जुटाये। ऐसी चौथ को मान्यता प्रदान करना मुगल साम्राज्य के लिए बहुत कठिन था । सरदेशमुखी भी देशमुखी अथवा जमींदारी अधिकारों का एक स्वरूप था । निम्बालकर, घाटडों, इत्यादि पुराने मराठी घरानों को बीजापुर राज्य की ओर से नियमित क्षेत्रों से सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त था । यह विशेष अधिकार विशिष्ट सेवाओं के फलस्वरूप ही दिया जाता था[5] । सारे दक्षिण से सरदेशमुखी वसूल करने की मांग का यह भी अर्थ था कि मुगल बादशाह शिवाजी जी को सारे दक्षिण का सर्वोपरि जमींदार मानें, और पुराने मराठा घरानों को आदिलशाही राज्य में जो विशेष अधिकार प्राप्त थे वह सब शिवाजी को प्रदान कर दें । शिवाजी की इस मांग का प्रभाव केवल मुगल बादशाह पर ही नहीं, पुराने

1- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 256-257

2- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 258 ।

3- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग-2, पृ0 243 ।

4- अलीमुहम्मद, मीराते-अहमदी, पृ0 279, इरफान हबीब, पृ0 148-149 ।
सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 19 ।

5- रानाडे, राइज ऑफ दी मराठा पावर, पृ0 219-38 । सेन, मराठा एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 97-99, बालकृष्ण, नेचर ऑफ देशमुखी, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1931, पृ0 89-93। सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 19-20

मराठा दशमुख घरानों पर भी पड़ता । मराठा आन्दोलन के स्वरूप और उनके साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के महत्व को औरंगजेब कभी भी पूरी तरह नहीं समझ पाया । वह शिवाजी के साथ समझौता करने के लिए कई बार तैयार हुआ किन्तु जो रियायतें वह देना चाहता था वह शिवाजी की आकांक्षा से कहीं कम थी। 1674 ई0 में शिवाजी ने धूमधाम से अपना राज्याभिषेक किया[1] । शिवाजी जानते थें कि मुगल साम्राज्य के अधीन न होकर एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना ही अधिक लाभप्रद है ।

1676 ई0 के बाद औरंगजेब ने अधिकाधिक ध्यान दक्षिण की रियासतों पर विजय प्राप्त करने पर दिया । वह 1681 ई0 में शहजादा अकबर का पीछा करने हेतु दक्षिण गया । 1698 ई0 तक औरंगजब जिजीं तक के विशाल क्षेत्र के ऊपर अपना अधिकार जमाने में जुटा रहा । औरंगजेब समझता था कि सम्पूर्ण दक्षिण पर मराठ कब्जा करके रूक जायेगे किन्तु ऐसा नहीं हुआ । 1689ई0 में शम्भाजी को पकड़ने के बाद उसका बध कराना भी उसकी एक राजनीतिक भूल थी क्योंकि मराठा आन्दोलन किसी एक व्यक्ति पर आधारित नहीं था । उस समय उसमें जमींदार, सरदार, व किसान बड़ी संख्या में सम्मिलित थे । शम्भाजी के वध के बाद नवम्बर 1690 ई0 में शम्भाजी की माँ और उनके सम्बन्धियों को सम्मानपूर्वक बादशाह के डेरे के पास उपयुक्त स्थान दिया गया और उसके पुत्र शाहू को जिसकी आयु 9 वर्ष थी उसको 7000/7000 मनसब व राजा की उपाधि प्रदान की गयी। इस प्रकार औरंगजेब व मराठे दोनों की दृष्टि में शाहू, शम्भाजी का उत्तराधिकारी था । मराठा सरदारों को उसके पास आने-जाने की अनुमति थी । 1703 ई0 में उसका विवाह जादव व सिन्धिया वंश के मराठा मंसबदारों की दो कन्याओं के साथ किया गया[2] । औरगजब ने शाहू को शिवाजी की तलवार भवानी, जो 1689 ई0 मे उसे प्राप्त हुई थी, प्रदान की, और अकलकोट, इन्द्रापुर, सूपा, बारामती, और नेवासा के परगने उसे जागीर में दिये[3] ।

औरंगजेब शाहू को ही शिवाजी के स्वराज्य व गद्दी पर आसीन करना चाहता था । राजाराम ने भी अपने को उत्तराधिकारी के रूप में शाहू का नायब

1- सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 20 ।

2- रकाइम, कराइम 23, मआसिरे 483, सरदेमाई,न्यू-हिस्ट्री ऑफ दी मराठा पीपुल, पृ0 331 । सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 21 ।

3- सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 21 ।

घोषित किया । 1700 ई0 में राजाराम की मृत्यु के बाद उसकी रानी ताराबाई ने औरंगजेब के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वह मुगलों का अधिपत्य स्वीकार करना, मुगल सेवा के लिए 5,000 हजार सवार का दस्ता रखना और सात किले मुगलों को सौंप देने के लिये तैयार है किन्तु इसके बदले में उसके पुत्र शिवाजी द्वितीय को 7,000 मनसब दी जाये व उसे शम्भा जी की गद्दी का वारिस माना जाये । उसने दक्षिण से केवल सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मांगा । औरंगजेब ने इस प्रस्ताव को मन्जूर नहीं किया[1] ।

1703 ई0 में सैनिक शक्ति द्वारा मराठों को कुचलने के प्रयास में विफल हो जाने के बाद औरंगजेब ने मराठों के साथ सन्धि करने का विचार किया और इसके लिए शाहू को प्रयोग करना चाहा। कामबख्श के माध्यम से धानाजी जादव के साथ बातचीत प्रारम्भ की गयी । धना ने दक्षिण की चौथ व सरदेशमुखी की और सब मराठा सरदारों के नाम माफी के फरमानों की मांग की[1]। उसका प्रस्ताव यह था कि कामबख्श शाही शिविर से 10 मील दूर शाहू को लाये जहाँ मराठा सरदार उसका अभिवादन करें और उसके बाद शाही दरबार में आकर मंसब व खिलअत स्वीकार करें । तदनुसार, 70 मराठा सरदारों के नाम फरमान लिखे गये । मराठों को दक्षिण की सरदेशमुखी देने का प्रस्ताव भी औरंगजेब ने स्वीकार कर लिया इसकी सनद अहसन खाँ मीर मलंग को सौंप दी गयी जिससे वह मराठों को दे दी जाँय। जब मराठे सरदार दल-बल के साथ इकट्ठा हुये तो औरंगजेब को डर लगा कि कहीं वह शाहू को उड़ाकर पहाड़ों में न ले जाये[2] अत: उसने सन्धि की बातचीत को समाप्त कर दिया और मीरमलंग को वापस बुला लिया ।

अन्त में औरंगजेब मराठों के साथ सन्धि करने के लिये तैयार हो गया था। मनसब व राज्य के विषय पर कोई मतभेद नहीं था । मराठे भी मुगल बादशाह का आधिपत्य मानने को तैयार थे । मुख्य प्रश्न चौथ का था ।

1- अखबारात, मार्च 12, 1700, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स इन्ट्रोडक्शन, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 21 ।

2- खाफी खाँ, 520, मआसिर, 473, पारसनीस, ब्रजेन्द्र स्वामीचे चरित्र 111-12, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स इन्ट्रोडक्शन, सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 22 ।

1706 ई0 में औरंगजेब ने जुल्फिकार खाँ के माध्यम से पुनः सन्धि की बातचीत प्रारम्भ की किन्तु विफल रहीं । इस प्रकार मराठों को कुचलते या उनके साथ सन्धि करने, दोनों में से किसी में भी औरंगजेब को सफलता प्राप्त नहीं हुयी । मुगल साम्राज्य जिन्जी तक फैल गया और शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा राज्य छिन्न-भिन्न हो गया किन्तु मुगल साम्राज्य में मराठों की लूटमार और उनके विरूद्ध मुगलों के सैनिक अभियानों के विफल होने का दूर-दूर तक प्रभाव पड़ा । दूसरे क्षेत्रों में भी मुगल साम्राज्य के विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन मिला । भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में औरंगजेब के राज्यकाल में ऐसे तत्व उभरे जिनकी आकांक्षा पूर्णरूप से एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने और केन्द्रीय सत्ता को दुर्बल बनाने की थी । केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने और मुगल सम्राट का दबाव कम होने का प्रभाव अमीरों पर भी पड़ा । बहुत से अमीरों ने अपनी जागीरों की सुरक्षा के लिए मराठों के साथ गुप्त समझौते कर लिये[1] । इस प्रकार राजनीतिक संघर्ष के कारण मुगल साम्राज्य की सभी आन्तरिक कमजोरियाँ सम्मुख आने लगी ।

बीजापुर -

बीजापुर के सुल्तान मोहम्मद आदिल शाह की नवम्बर 1656 ई0 में मृत्यु हो गयी उसके राज्यकाल में आदिलशाही राज्य की सबसे अधिक शक्ति बढ़ी । स्वर्गीय सुल्तान के एकमात्र पुत्र अली आदिलशाह द्वितीय को राजगद्दी पर बैठाया गया । औरंगजेब उस समय मुगलों का दक्षिण में वायसराय था । उसने यह बहाना बनाया कि अली मृत सुल्तान का असली पुत्र नहीं था इसलिए उसने आदिलशाह पर आक्रमण कर दिया परन्तु पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर सका । दाराशिकोह ने द्वेषवश उसका विरोध किया था[1] और बीदर के किले की घेराबन्दी कर दी। 1657 ई0 में बीदर का पतन हुआ । बीजापुर बढ़ती हुई सेना को नहीं रोक सका । मुगल सेना ने बड़े पैमाने[2] पर विनाश किया और कल्याणी की घेराबन्दी की । आदिलशाह ने बीदर, कल्याणी और परेन्दा देने का वादा किया और मुगलों को एक करोड़ रूपये हर्जाना देना भी स्वीकार किया ।

1- अबुल फजल मामूरी, तारीखे औरंगजेब, 157 अ एवं ब ।
 सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 22 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 188, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 210, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 288 ।

इसी बीच शाहजहाँ की बीमारी और औरंगजेब की उत्तर की ओर रवानगी के बाद दक्कन में मराठों का वर्चस्व हो गया । शिवाजी ने बड़े क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया था और जब औरंगजेब ने अफजल खाँ को भेजा तो उसे धोखे से मार दिया गया[1]। बीजापुर की सेना को भारी नुकसान हुआ यद्यपि उन्होनें शीघ्र ही अपनी स्थिति सुधार ली और बाद में शिवाजी को हरा दिया ।

इसके बाद अली द्वितीय मदुरा और तंजौर के मामलों में व्यस्त हो गया लेकिन बीजापुर को जयसिंह के नेतृत्व में मुगलों के एक और आक्रमण का सामना 1665-66 में करना पड़ा लेकिन मुगलों को कुछ हासिल नहीं हो सका मुगलों से 1672 ई0 में सूरत से चौथ लिया गया । सुल्तान की 1672 ई0 में मृत्यु हो गयी[2]। सिकन्दर अन्तिम आदिल शाही सुल्तान था । वह नाबालिग था । 1672ई0 से 1686 ई0 तक का बीजापुर का इतिहास वास्तव में उसके वजीरों का इतिहास था। उस काल में विभिन्न गुटों के बीच बराबर गृहयुद्ध चलता रहा । प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र हो गये । प्रशासन, राजधानी में भी निष्क्रिय हो गया । बीजापुर में इस गड़बड़ी भरे समय में मुगल बराबर आक्रमण करते रहे और बीजापरु के क्षेत्रों पर कब्जा करके वहाँ अपनी चौकियाँ कायम करते रहे । 1685 ई0 में मुगलों ने बीजापुर के किले की घेराबन्दी की ।

बीजापुर का घेरा डाले पन्द्रह माह पूरे होने को आये फिर भी कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला[3]। अत: औरंगजेब ने महसूस किया कि जब तक वह स्वयं घेरे का संचालन अपने हाथ में न लेगा तब तक जीतना सम्भव नहीं है[4]।

इस वर्ष वर्षा के अभाव के कारण दक्षिण में जो दुर्भिक्ष पड़ा उससे घेरा डालने वालों के कष्ट बहुत बढ़ गये थे । खाफी खाँ ने अकाल की भयावह स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस वर्ष फसल को बड़ी हानि हो चुकी थी। अन्न बहुत महंगा था । चारों ओर प्रदेश पर दक्षिणी सेनाओं ने अधिकार कर रखा

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 192, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड, 2, पृ0 211 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 232, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 350 ।

3- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 351 ।

4- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब - ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 230 ।

था । बीजापुर तक कोई नहीं पहुँचने दिया जाता था इसलिए शाही सेना में खाद्य सामग्री दुर्लभ हो गयी थी । एक रोटी भी मुश्किल से मिलती थी[1] परन्तु बीजापुर नगर में घिरे हुये लोगों के कष्ट तो उनसे भी कहीं दस गुना अधिक थे । "किले में अनगिनत मुनष्य और घोड़े मरे" घोड़ों की कमी के कारण ही शत्रु के चारों ओर मंडराने और भटक जानेवालों तथा यातायात के साधनों को छिन्न-भिन्न कर देने की अपनी परम्परागत प्रिय शैली का प्रयोग दक्षिणी इस बार नहीं कर सके[2] ।

एक महीने के दौरान तीन घमासान युद्ध हुए । सितम्बर 1686 ई0 में सिकन्दर ने मुगल सम्राट के आगे आत्मसमर्पण कर दिया । इस प्रकार आदिलशाह राज्य की स्वतन्त्रता छिन गयी उसका अस्तित्व समाप्त हो गया और उसे मुगल क्षेत्र में शामिल कर लिया गया । मुगल विजेता औरंगजेब एक पालकीनुमा सिंहासन पर बैठकर सफशिकन खाँ की खाइयों के पास होते हुए मंगली दरवाजे नामक दक्षिणी दरवाजे से बीजापुर में प्रवेश किया । तब सारी राह अपने दायें-बायें सोने चाँदी लुटाता हुआ औरंगजेब नगर के विभिन्न मार्गो से गुजरा तथा राजमहल का निरीक्षण किया । अपनी विजय के उपलक्ष में सिकन्दर के राजदरबारियों की अभिनन्दक भेंट स्वीकार की ।

स्वतन्त्र राज्य तथा राजघराने के पतन के बाद बीजापुर नगर पूर्णतया उजड़ गया और सर्वत्र भयंकर नीरवता तथा उदासीनता छा गयी[3] ।

गोलकुण्डा -

गोलकुण्डा की अर्थव्यवस्था का विस्तार होने के साथ ही केन्द्रीय सरकार समाज के प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र में प्रभावी भूमिका निभाती थी । कर और राजस्व व्यवस्था में समानताएं थी । प्रथम- राजस्व की वसूली विकेन्द्रीकृत थी इसलिए दक्ष थी । द्वितीय- वसूली कड़ाई से की जाती थी । तृतीय- उस व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकाधिक वसूली की जाती थी ।

1- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव,-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 230, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 352 ।
2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 251, -आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास पृ0 648, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 211 ।
3- एस0 आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 352 ।

कुतुबशाही शासकों की शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी यद्यपि उन्हें कभी-कभी मुगलों की ओर से कठिनाई का सामना करना पडता था । मोहम्मद आदिलशाह के शासनकाल में शाहजहाँ गोलकुण्डा को मुगलों के प्रभाव में लाया । 23 मई 1636 ई0 को जो करारनामा तैयार किया गया उसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि गोलकुण्डा द्वारा प्रतिवर्ष 200,000 सोने की मोहरें या 800,000 चाँदी के रूपये कर के रूप में आगरा भेजे जायेंगे, गोलकुण्डा की विदेश नीति का निर्देशन मुगल सम्राट करेगा और गोलकुण्डा का सुल्तान सोने की मोहरे और चाँदी के रूपये उस साँचे में बनवायेगा जो शाही टकसाल से भेजा जायेगा[1] । इसके साथ ही शुक्रवार को होने वाली नमाज में चार खलीफाओं के नाम पढ़वायेगा और खुतबा में मुगल सम्राट को राज्य का वैध शासक बताया जायेगा लेकिन यह सन्धि अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी क्योंकि औरंगजेब जो कि दक्षिण में मुगलों का वायसराय नियुक्त किया गया था, गोलकुण्डा को जीतने के लिए बेचैन था और किसी बहाने की तलाश में था । यह बहाना उसे उस समय मिला जब अब्दुल्ला ने अपने वजीर मीर जुमला को हटाना चाहा क्योंकि उसकी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी । अब्दुल्ला ने 1655 ई0 में मीरजुमला को उसके परिवार सहित गिरफ्तार करवा दिया ।

औरंगजेब ने उस स्थिति का लाभ उठाया और उसने अपने पिता से यह आदेश प्राप्त कर लिया कि अब्दुल्ला से मीरजुमला के परिवार को स्वतन्त्र करने को कहा जाये और यदि वह आज्ञा का पालन न करें तो गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया जाये । औरंगजेब ने अपने सबसे बड़े पुत्र मोहम्मद सुल्तान को 1655 ई0 में उसके खिलाफ भेजा । हैदराबाद[2] पर आक्रमण किया गया और उस पर कब्जा[3] कर लिया गया । औरंगजेब स्वयं वहाँ गया और गोलकुण्डा के किले पर घेरा डाल दिया लेकिन दाराशिकोह के हस्तक्षेप के कारण गोलकुण्डा बच गया पिता का निर्देश मिलने पर औरंगजेब को 1656 ई0 में घेरा उठाने पर विवश होना पड़ा ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 256, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 212-213,

2- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 213, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 89 ।

3- इनायत खाँ, शाहजहाँनामा-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 79 ।

अब्दुल्ला के उत्तराधिकारी अबुलहसन कुतुबशाह के शासन के समय औरंगजेब को फिर मौका मिला । कुतुवशाह विलासपूर्ण जीवन विता रहा था[1] और उसने शासन का काम दो काफिरों मदन्ना और आक्कन्ना के हाथ में सौंप रखा था । वह शिवाजी से भी मिल गया था और बाद में उसने शिवाजी के उत्तराधिकारी से भी मेल कर लिया था इसलिए औरंगजेब को गोलकुण्डा पर आक्रमण की योजना वनाने का अच्छा अवसर मिल गया था । 1687 ई0 में औरंगजेब गोलकुण्डा के किले तक पहुँच गया और किले को घेर लिया । 71 मास तक घेराबन्दी के बाद 1687 ई0 में औरंगजेब का गोलकुण्डा पर कब्जा हो गया और अबुलहसन को कैद कर लिया गया । अबुलहसन को राज्य के बन्दी के रूप में 50,000 रूपये की सलाना पेन्शन पर दौलतावाद के किले में रखा गया और गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया[2] ।

एक क्षेत्रीय राज्य के स्थान पर साम्राज्य का एक प्रान्त बन जाने पर गोलकुण्डा में अनेक परिवर्तन आये जो कि अस्थायी महत्व के नहीं थे जब औरंगजेब अबुलहसन[3] को बन्दी बनाकर देश से बाहर भेज दिया तो गोलकुण्डा की राजनीतिक व्यवस्था का आधार नहीं रहा क्योंकि स्वयं सुल्तान ही अधिकार, वैधता और शक्ति का श्रोत था । कुतुबशाह बड़ी सम्पदा का स्वामी था जो उसे गोलकुण्डा की प्रणाली से उपलब्ध हुयी थी और राजधानी में रखी गयी थी । गोलकुण्डा की संस्कृति का संरक्षक भी सुल्तान ही था क्योंकि उसके और उसके दरबार के कारण हैदराबाद के नागरिक जीवन को प्रोत्साहन मिलता था । हैदराबाद अपने निर्माण काल से ही राजनीतिक केन्द्र था।जिसका आकार और महत्व बहुत था।

औरंगजेब ने कृष्णा और गुंडलेम्मा नदियों के दक्षिणी क्षेत्र को हैदराबाद से अलग कर दिया यद्यपि हैदराबाद, कर्नाटक के फौजदार का पदनाम हैदराबाद के सूबेदार स नीचा था लेकिन वास्तव में उसके हाथों में एक प्रान्तीय गर्वनर से अधिक शक्ति थी । इस प्रशासनिक व्यवस्था के द्वारा हैदराबाद का गोलकुण्डा से और दक्षिण के क्षेत्र से सम्बन्ध टूट गया । जो पहले प्रशासनिक सीमा थी वह

1- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 647 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 260, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, खण्ड 2, पृ0 213-214, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 354 ।

3- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 654, एस0 आर0 शर्मा, भारत मे मुगल साम्राज्य, पृ0 355 ।

अब अर्धस्वतन्त्र राजनीतिक सीमा बन गयी । सत्ता और नियन्त्रण में हुये इस परिवर्तन के फलस्वरूप संसाधनों की दिशा भी बदल गयी[1] ।

साम्राज्य में मिलाये जाने से पूर्वी दकन[2] और विशेषकर हैदराबाद नगर के लिए गम्भीर आर्थिक परिणाम निकले । हैदराबाद अभी तक गोलकुण्डा की पुनः वितरण व्यवस्था का केन्द्र था । राज्य की उत्तरी और दक्षिणी प्रशासनिक इकाइयों से मुगल प्रशासन अधिशेष का बड़ा भाग औरंगाबाद में स्थित केन्द्रीय कोष या एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाले साम्राज्य के कैम्पों को भेजने लगा । इस प्रकार गोलकुण्डा की सम्पदा, जिसमें हीरे शामिल थ, राज्य के बाहर जाने लगी । गोलकुण्डा को साम्राज्य में मिलाये जाने का एक तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि दकन के तेलगू भाषी उच्च वर्ग का आमूल परिवर्तन हो गया, जबकि राज्य को साम्राज्य में मिलाये जाने से पूर्व ब्राहमण, अफगान और दकन के मुसलमान, राज्य के उच्च वर्ग में थे, अब उत्तरी भारत से आये मुगल साम्राज्य के मनसबदार - अभिजात्य वर्ग में आ गये[3] ।

1686 ई0 में गोलकुण्डा में ब्राहमण दल का अन्त किये जाने पर और डेढ़ साल बाद गोलकुण्डा को साम्राज्य में मिलाये जाने के परिणामस्वरूप मराठों से आकामक गठबन्धन भी टूट गया ।

औरंगगजेब ने अपनी शक्ति का केवल थोड़ा सा ही भाग लगाया और वे संसाधन दिये जो उन नये क्षेत्रों से उपलब्ध हो सकते थ । गोलकुण्डा बहुत ही उपजाऊ और सिंचाई के साधनों से पूरी तरह सुसज्जित देश था यहाँ कि जनसंख्या बहुत अधिक और निवासी बड़े ही परिश्रमी थे । इस राज्य की राजधानी हैदराबाद केवल एशिया ही नहीं सारे संसार में हीरों के व्यापार का प्रधान केन्द्र था । गोलकुण्डा में बहुमूल्य हीरे जवाहरात की प्राप्ति होती थी । उनमें हीरा प्रमुख था[4]।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 260, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन इतिहास, खण्ड 2, पृ0 214 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग 2, पृ0 250-251 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 261, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड 2, पृ0 214 ।

4- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वाल्यूम 1, पृ0 268, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 369 ।

उद्योग धन्धों के लिए प्रसिद्ध होने के कारण यहाँ पर बहुत से विदेशी व्यापारी भी एकत्रित रहते थे । बंगाल की खाड़ी में मछलीपट्टम शहर इस राज्य का प्रधान तथा बहुत ही सुविधापूर्ण बन्दरगाह था । तम्बाकू और ताड़ यहाँ बहुत अधिक मात्रा में होते थें जिससे तम्बाकू और ताड़ी पर लगाये गये करों से राज्य को काफी आमदनी हो जाती थी ।

गोलकुण्डा के सुल्तान से लड़ने के लिए औरंगजेब के पास अनेक कारण थे । दो लाख हूण का वार्षिक कर सदैव उस पर बकाया ही रहता था । प्रत्येक तकाजे के समय मुगल सूबेदारों को वह कुछ कारण बताकर अधिक समय की ही मांग किया करता था[1] ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 28-29 ।

अध्याय 6

जागीरदारी-प्रथा

मुगल साम्राज्य की आर्थिक नीति के अन्तर्गत जागीरदारी प्रथा का महत्वपूर्ण स्थान था । यह प्रथा सम्पूर्ण मुगल प्रशासन मनसबदार जनता के विभिन्न वर्गो, सभी को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती थी । जागीर भूमि का वह भाग था जिसे सम्राट, मनसबदारों को उनकी सेवाओं के बदले अर्थात वेतन के रूप में देता था । यह भूमि वंशानुगत नहीं होती थी । जागीरदार की मृत्यु अथवा सेवा से विलग होने के बाद जागीर उनसे वापस ले ली जाती थी । जागीरदारों का स्थानान्तरण भी होता रहता था । जिससे जागीर पर किसी एक जागीरदार का स्थानीय प्रभाव न स्थापित हो सके ।

इरफान हबीब[1] के अनुसार मुगल साम्राज्य की सैन्य शक्ति का आधार जागीरदारी व्यवस्था थी । उमरावर्ग सैन्य दलों की नियुक्ति, व्यवस्था आदि कार्य पूरी तरह इसी से प्राप्त आय से करते थे । जागीरदारी व्यवस्था मुगल प्रशासन की महत्वपूर्ण संस्था थी । अकबर भी इसे समाप्त नहीं कर सका । जहाँगीर की आत्मकथा तुजुक-ए-जहाँगीरी और विलियम हाकिन्स के विवरण में भी जागीरदारी प्रथा का उल्लेख है[2] । जागीरदारी व्यवस्था ने अपनी आर्थिक आधारशिला को स्वतः ही मजबूत किया था ।

भू-राजस्व में निर्धारण तथा वसूली के सम्बन्ध में जागीरदार पर शासन का कड़ा नियंत्रण था । इसी प्रकार करों के प्रकार भी राज्य द्वारा निश्चित किया जाता था फिर भी जागीरदार कृषक वर्ग के उत्पादन के अधिक से अधिक भाग पर अपना नियन्त्रण जमा लेते थे । उत्पादन पर अधिकाधिक नियन्त्रण का परिणाम यह हुआ कि मुगल प्रशासनिक वर्ग के वैभव में अपरिमित वृद्धि होती गयी[3] । जागीरदारों के वेतन निर्णय का आधार जमा या भूमिकर था । भूमिकर दो प्रकार का होता था।

1- इरफान हबीब, द एग्रोरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 210, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन इतिहास भाग 2, पृ0 387,

2- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 249, तुजुक-ए-जहाँगीरी, वारिस, बादशाहनामा, पृ0 70, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24,

3- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 387 ।

1-जमा रकम कलमी 2- जमा हाल हासिल[1], जब जागीर वेतन के रूप में दी जाती थी तो उसे जागीर-ए-तनख्वाह या "तनख्वाह जागीरी" कही जाती थी । जब जागीर किसी पद के ग्रहण करने के आधार पर दी जाती थी तो उसे 'मशरूत' कहा जाता था । 1672 ई0 में जब मुहम्मद अमीन खाँ[2] गुजरात का सूबेदार नियुक्त हुआ तो पाटन और बेरम ग्राम की जागीर उसके पद के साथ सम्मिलित कर दी गयी । जिस जागीर के साथ किसी प्रकार का शर्त नहीं था उसे 'इनाम' कहा जाता था । जागीर को 'इक्ता' भी कहा जाता था । वह जागीर जो किसी व्यक्ति के अधिकार से ले ली गयी हो किन्तु अन्य को न दी गयी हो उसे 'पैबाकी' कहा जाता था । इसकी मालगुजारी सरकारी खजाने में जमा होती थी ।

जागीरदार राजकीय अधिकारी थे । अपनी पदोन्नति और आर्थिक दृष्टि से वे सम्राट पर निर्भर रहते थे । मुगलकाल में उच्च वंश के लोगों को राजकीय सेवा में रखा जाता था । इस प्रकार सम्राट के सम्बन्धी एवं उच्च वंश के लोग ही जागीरदार होते थे । जागीर की मालगुजारी वसूल करने के लिए जागीरदार अपने गुमाश्ते[2] तथा खालसा भूमि की तरह आमिल, अमीन, पोतदार तथा कारकून नियुक्त करते थे । कभी-कभी जागीरदार अपनी जागीर को अपने सैनिकों में उनके वेतन के अनुसार बाँट देते थे । सैनिक या अधिकारी उस भूमि की मालगुजारी वसूल करते थे जो उनके वेतन के बदले में दी गयी होती थी ।

जागीरदार मालगुजारी की दरें सरकार द्वारा निर्धारित होने पर भी किसानों से अधिक कर[3] लेते थे । सामान्यतया मालगुजारी वसूली के उतार-चढ़ाव का

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 161, नोमान अहमद सिद्धिकी, लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अन्डर दी मुगल्स, पृ0 108-123, इरफान हबीब, द एग्रोरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, अध्याय 7 ।

2- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 324, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 210 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 402, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली पृ0 162, खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव,-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 177, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 287 ।

परिणाम जागीरदार को भुगतना पड़ता था किन्तु कभी-कभी स्थिति के विषय में जानकारी देने पर सरकार से उसे राहत प्राप्त होती थी । उचित समय पर सरकार को भुगतान न करने पर जागीर अस्थाई रूप से जब्त कर ली जाती थी । मनसबदार की पदोन्नति होने पर बड़ी जागीर दी जा सकती थी जागीरदारों का स्थानान्तरण होता रहता था । मोरलैण्ड ने हाकिन्स का उल्लेख करते हुये लिखा है कि कभी-कभी जागीरदार का छः महीने बाद ही स्थानान्तरण कर दिया जाता था, वह क्षेत्र किसी दूसरे जागीरदार को दे दिया जाता था इसलिए शोषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता था । हाकिन्स की यह बात अन्य श्रोतों से भी समर्थित होती है । मोरलैण्ड ने टेरी का उद्धरण देते हुये जल्दी-जल्दी होने वाले स्थानान्तरण का उल्लेख किया[1] । इससे मनसबदार को किसी क्षेत्र में शक्तिशाली होने से रोका जाता था ।

जागीरदारी भूमि पर जागीरदार का पूर्ण अधिकार नहीं था । उस भूमि पर सम्राट का भी नियन्त्रण रहता था । कानूनगो, चौधरी, लगान, सम्बन्धी नियमों के पालन में तथा फौजदार शान्ति सुव्यवस्था के लिए जागीरों में भी कार्य करते थे । इसके अतिरिक्त सम्राट से जागीर दुर्व्यवस्था की शिकायत की जाती थी और सम्बन्धित व्यक्ति दण्डित होता[2] था । जागीरों के स्थानान्तरण के कारण जागीरदार अपनी जागीरों की उन्नति में दिलचस्पी नहीं लेते थे । बर्नियर कहता है कि जागीरदार कहते थे कि हम जागीरों की उन्नति का प्रयत्न क्यों करें जब एक क्षण में हमें वहाँ से स्थानान्तरित कर दिया[3] जायेगा । स्थानान्तरण की प्रथा के कारण जागीरदार किसी स्थान पर स्थायी रूप से निवास नहीं कर सकते थे अतः अपनी जागीर के राजस्व में वृद्धि के लिए, जो काश्तकारी में वृद्धि के द्वारा ही सम्भव थी, वे प्रयास नहीं कर सकते थे । इसके विपरीत वे उस क्षेत्र में अधिक से अधिक वसूली के लिए प्रयत्नशील रहते थे । कभी-कभी तो अपने फायदे के लिए वे उत्पीड़न का भी सहारा लेते थे[4]। भले ही उसकी कर क्षमता सदैव के लिए समाप्त हो जाये। यह केवल दो ही स्थितियों में संभव था या तो जागीरदार को जमा के

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 249-250 ।

2- अतहरअली, दि मुगल नोबिलिटी अण्डर दी औरंगजेब, पृ0 87 ।

3- बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ0 227, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 162 ।

4- तपनरायचौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 173-174 ।

निर्धारण और वसूली करने में काफी छूट मिली हुयी थी या वह शाही नियमों का उल्लंघन करने की कोशिश करता था । इरफान हबीब[1] का कहना है कि जागीरदार किसी न किसी बहाने काश्तकारों व यहाँ तक कि गाँवों का बेच देते थे या उन्हें लूट लेते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि कृषि उत्पादन में कमी आयी क्योंकि जागीरदार के जुल्म के कारण काश्तकार अपनी जोत की जमीन छोड़कर भाग जाते थे ।

जागीरदार को अपनी जागीर में किसानों और जमींदारों दोनों से ही निपटना पड़ता था। जिस जागीरदार का मनसब कम था उसे विद्रोही जमींदारों को नियन्त्रित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था । जागीरदारों का जमींदारों पर अत्यधिक दबाव औरंगजेब के शासनकाल में बढ़ा । जागीरदार का शिकायत किसान या निवासी, सम्राट से दरबार में जाकर कर सकता था[2] । इस प्रकार यदि जागीरदार किसी अत्याचारी कार्य के लिए जिसमें वह दोषी पाया गया हो तो सम्राट हस्तक्षेप करके दण्ड देने का अधिकारी था । रूक्काते आलमगीरी से ज्ञात होता है कि औरगजेब ने मुहम्मद आजम को लिखे गये एक पत्र में यह आदेश दिया है कि चकलकुरा के अत्याचारी अधिकारी हसनबेग (जो कि शहजादे की जागीर के अन्तर्गत था) को हटाकर जनता की दशा के बारे में छान-बीन करे अन्यथा उसकी जागीर उससे छीन ली जायेगी[3]। जागीरदारों के प्रशासन की जाँच-पड़ताल सम्राट द्वारा किया जाता था । औरंगजेब को अपनी जागीर पर सुचारू रूप से प्रशासन न करने के कारण शाहजहाँ की भर्त्सना सुननी पड़ी थी । औरंगजेब को सम्राट के समक्ष सफाई भी देनी पड़ी[4]।

जमींदार मुगल सेवा में प्रवेश हो जाने पर मनसबदार नियुक्त किये जाते थे । उन्हें अपने क्षेत्र की मालगुजारी के बराबर मनसब प्राप्त होता था । उनके क्षेत्र के जमा का निर्णय अनुमान से कर दिया जाता था क्योंकि उन क्षेत्रो के सही आकड़े उपलब्ध नहीं रहते थे । यह जागीर 'वतन जागीर' कहलाती थी । वतन

1-इरफान हबीब, द एग्रारियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, पृ0 217-219, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन इतिहास भाग 2, पृ0 387 ।

2-निगारनामा-ए-मुन्शी, पृ087-88, द इंगलिश फैक्ट्रीज, 1678-84, खण्ड III, (न्यू सिरीज) पृ0 310 ।

3-रूक्कात आलमगीरी, अनुवादक ज0 एच0 विलिमोरिया पृ0 19-20 ।

4-आदाब-ए-आलमगीरी, प0 18 अ, 19ब, -20अ, 40अ-40ब ।

जागीरदार की मृत्यु के पश्चात सम्राट उसके उत्तराधिकारी का निर्णय करता था किन्तु साधारणतया किसी मुगल सम्राट ने वहाँ की जागीर को अपने साम्राज्य में स्थायी रूप में नहीं मिलाया । परंपरानुसार ये जागीर उसी वंश में रहती थी तथा उसके उत्तराधिकारी[1] को प्राप्त हो जाती थी । 1679 ई0 में औरंगजेब ने जब जोधपुर की वतन जागीर को खालसा घोषित किया तो परंपरा के विरूद्ध होने के कारण उसका विरोध हुआ[2] । 1679ई0 मे महाराजा जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गयी । मृतक राजा का कोई पुत्र जीवित नहीं था । ऐसी स्थिति में मारवाड़ की गद्‌दी के दो मुख्य दावेदार थे- एक जसवन्त सिंह के बड़े भाई अमर सिंह का पोता इन्द्रसिंह, जो नागौर का जागीरदार था, दूसरा अमर सिंह का नाती अनूप सिंह । उत्तराधिकार के प्रश्न का निबटारा होने तक के लिए पुरानी मुगल प्रथा के अनुसार मारवाड़ से औरंगजेब ने खालसा कर लिया । जसवन्त सिंह की रानियों और सेवकों के खर्चे के लिए सोजत और जैतारण के परगने उन्हें प्रदान कर दिये गये[3] । जोधपुर पर शाही अधिकार जमाने के बाद जसवन्त सिंह का सामान जब्त कर लिया गया । इसका कारण था कि महाराजा के ऊपर करीब-करीब 50 लाख रूपये जो उन्हें खर्चे के लिए दिये गये थे बकाया था[4] ।

वतन जागीर के मनसबदार अपनी जागीर की आय से अधिक मनसब प्राप्त करते थे । उन्हें अपनी वतन जागीर के अतिरिक्त तनख्वाह जागीर भी दी जाती थी । महाराजा जसवन्त सिंह को मारवाड़, वतन जागीर के रूप में प्राप्त था। इसके अतिरिक्त उनके मनसब के अनुरूप उन्हें हिसार भी जागीर के रूप में प्राप्त था । दूसरी बार गुजरात का सूबेदार नियुक्त होने के पश्चात उनकी जागीर हिसार से गुजरात में स्थानान्तरित कर दी गयी थी।

प्राचीन काल से भूमिकर, मुक्त क्षेत्र के अनुदान की प्रथा, प्रचलित थी । मध्यकाल में भी इसका प्रचलन था । मुगलकाल में इस तरह के अनुदान देने का अधिकार केवल सम्राट को प्राप्त था, किन्तु कभी-कभी जागीरदार भी

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 163 ।

2- एम0 अतहर अली, पृ0 79-80, सतीशचन्द्र, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट दी मुगल कोर्ट, पृ0 31-32 ।

3- वाकए सरकार रणथम्भौर, (अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी) 118, सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 14,-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 403

4- मीरात-ए-अहमदी, 277, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 14, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 403 ।

अपने क्षेत्र में इस तरह के अनुदान देते थें । इस अनुदान को सामान्य रूप से मदद-ए-माश कहते थे । मदद-ए-माश की भूमि एक स्थान[1] से दूसरे स्थान को साधारणतया स्थानान्तरित नहीं की जाती थी । उसकी मृत्यु तक उसके पास रहती थी । उसके मरणोपरान्त यदि उस परिवार में साहित्यिक, धार्मिक, परम्परा कायम रहती तो वह भूमि उस परिवार के लोगों के पास रहने दी जाती थी ।

कालान्तर में यह भूमि वंशानुगत हो गयी तथा अनुदायी के परिवार के उत्तराधिकारियों में बँटने से इसके टुकड़े-टुकड़े हो गये । यह आशा की जाती थी कि अनुदायी के मरणोपरान्त तथा नये सम्राट के राज्यारोहण के पश्चात इसका नवीनीकरण होगा किन्तु यह धीरे-धीरे बन्द हो गया और 18 वीं शताब्दी तक मदद-ए-माश की भूमि भी जमींदारी भूमि के समान हो गयी[2] ।

जमींदार-

मीरात-अल-इस्तिलाह नामक एक नियम पुस्तक में 'जमींदार' शब्द की परिभाषा इस प्रकार है- "इसका शाब्दिक अर्थ जमीन का मालिक है किन्तु अब वह एक गाँव की जमीन या कस्बे का मालिक होता है जो खेती भी करता है[3]।

जमींदारी के लिए विभिन्न प्रदेशों में विविध शब्दों का प्रयोग मुगल काल में होता रहा । अवध में वे जमींदार, विसवी, सतारही, राजस्थान, में भूमि या ग्रासिया तथा उत्तर प्रदेश में मालिक कहे जाते थे । मुगल काल में जमींदारी के स्वरूप में भिन्न[4]-भिन्न प्रदेशों में अन्तर था । राजस्थान में भूमि पर आनुवांशिक भूमि के स्वामी होते थे। उन्हें आंशिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती थी । उत्तर प्रदेश व अवध में जमींदारी का स्वरूप कुछ भिन्न था । इसी भाँति मुगलकाल में जमींदारों की कई श्रेणियाँ होती थी । डा0 नुरूल हसन[5] के अनुसार जमींदारों की तीन श्रेणियाँ थी ।

1- हरिशकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 164-165 ।

2- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 165 ।

3- मीरात-अल-इस्तिलाह, प0 122 ब, मोरलैण्ड ने जमींदार को सरदार भी कहा है । सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 2 ।

4- राधेश्याम मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 167. हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 159 ।

5- राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 167-68, नुरूल हसन, थाट्स आन एग्रेरियन रिलेशन इन मुगल इण्डिया, पृ0 32-33 ।

1- स्वायत्त जमींदार, 2- मध्यस्थ जमींदार, 3- प्राथमिक जमींदार ।

जिन जमींदारों ने मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार की वे स्वायत्त जमींदार या राजा थे । ये पूर्णत: मुगल प्रशासन के प्रति सैनिक व वित्तीय उत्तरदायित्व से मुक्त थे । स्वायत्त जमींदार अपने राज्य से अनेक प्रकार के शुल्क वसूल कर सकते थे, व्यापार पर चुंगी लगा सकते थे । दीवानी, फौजदारी मुकदमों का फैसला कर सकते थे । इनके लिए सरकारी शासन पद्धति का अनुसरण करना अनिवार्य न था । औरंगजेब के शासनकाल में 1000 व उसके ऊपर के मनसबदारों की श्रेणी में 81 स्वायत्त जमींदार थे जो कि कुल मनसबदारों की संख्या[1] का 15 प्रतिशत थे । स्वायत्त जमींदार को जब मनसब प्रदान किया जाता था तो उसे अपने सैनिकों के रखरखाव हेतु बड़ी जागीर प्रदान की जाती थी । इस विशाल जागीर की आय उसकी पैतृक राज्य की आय से अधिक हुआ करती थी । इसी कारण स्वायत्त जमींदार बराबर शासन की सेवा में बने रहते थे । उनके मनसब में निरन्तर वृद्धि होने के कारण उनके वेतन में वृद्धि होती थी । उनके सम्बन्धी भी उमरावर्ग में सम्मिलित कर लिये जाते थे और नौकरशाही का भाग बना लिए जाते थे । इसके अतिरिक्त स्वायत्त जमींदारों को अभियानों के दौरान लूट में प्राप्त सम्पत्ति में अपना हिस्सा मिलने का भी अवसर मिल जाता था । न केवल मनसब वरन् मुगल सम्राट से मिलने वाले उपहार, नकद धन में समय-समय पर वृद्धि, उनकी आय में वृद्धि किया करते थे वरन् उन्हें शक्तिशाली बनाने में सहायक सिद्ध होते थे[2] । वे अपनी पदोन्नति व कल्याण के लिए मुगल सम्राट पर आश्रित रहते थे । स्वायत्त जमींदार[3] मुगल सम्राट की बराबर सैनिक सहायता किया करते थे तथा अन्य प्रकार की सेवा करने में भी रत रहते थे । कभी-कभी ये तत्कालीन राजनीति में भी भूमिका निभाते थे ।

जमींदार कई शर्तो पर जमींदारी के अधिकारी होते थे । उनकी जमींदारी एक गाँव के किसी भाग, पूरे गाँव या उससे अधिक कई गाँवों को अपने सहयोगियों के मध्य भी बाँट सकता था । जमींदारी न केवल एक या उससे अधिक गाँवों वरन् परगनों की भी हो सकती थी । जो जमींदार निर्धारित पेशकश दिया करते थे, उनकी

1-आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 663, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगल-कालीन भारत का इतिहास, पृ0 23 ।

2-राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 168-69, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगल-कालीन भारत का इतिहास, पृ0 6 ।

3-आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 662 ।

जमींदारी में कुछ गाँव, एक या उससे अधिक परगने सरकार या कई सरकारें या उससे अधिक भू-भाग हो सकता था[1]।इस प्रकार से जमींदार का अधिकार क्षेंत्र गाँव के किसी भाग से लेकर सरकार जैसी प्रशासनिक ईकाई तक होता था । मध्यस्थ जमींदार भू-राजस्व देने वाले जमीदारों की श्रेणी में आते थे । इनकी संख्या अत्यधिक थी । इनका भूमि पर स्वामित्व[2] था । ये राजस्व व्यवस्था के सुचारू ढंग से कार्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण समझे जाते थें । भूमि पर मध्यस्थ जमींदारों का स्वामित्व रहने के कारण, राजकीय अधिकारियों द्वारा भू-राजस्व के आकलन किये जाने के उपरान्त न केवल भू-राजस्व वसूल करते थे वरन् व्यक्ति को प्रोत्साहित करते थे और यह देखते थे कि गाँव की सम्पूर्ण भूमि पर निरन्तर खेती होती रहे। भू-राजस्व वसूल करने व भू-राजस्व के आकलन में प्रशासन की सहायता करने से प्रशासन मध्यस्थ जमींदारों को उनकी जमींदारी से वसूल किये गये भू-राजस्व का एक भाग पारिश्रमिक के रूप में दे दिया करता था । जहाँ कृषक लगान का भुगतान अनाज के रूप में करते थे वहाँ जमींदारों को एक बीघा में से बिस्वा की उपज पारिश्रमिक के रूप में मिलती थी, इसलिए उसे बिस्वी जमींदार कहा जाता था । अन्य प्रदेशों में जहाँ कृषक लगान का भुगतान नकद में किया करते थे उन्हें कुल भू-राजस्व का 2.5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तथा 20 प्रतिशत तक पारिश्रमिक के रूप में मिलता था[3] । इन्हें भू-राजस्व की दर बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं था परन्तु अपनी आय वृद्धि करने के उद्देश्य से वे गैर कानून कर जैसे विवाहकर, पैदाइश कर, गृहकर, जलकर, जगल पर कर इत्यादि वसूल[4] कर लिया करते थे । मध्यस्थ जमींदारों में से अधिकांश जमींदार वंशानुगत होते थे । उनमें से कुछ थोड़े समय के लिए ठेकेदारी पर कार्य करते थे । जो चौधरी, देशमुख, देसाई, देशपाण्डे, मुकद्दम कानूनगों, इजारादार प्रशासन के साथ भू-राजस्व वसूल करने का कार्य करते थे वे भी मध्यस्थ जमींदारों की श्रेणी में आते थे ।

1- राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 169, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 274 ।

2- हरिशकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 158, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत पृ0 359, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ02,

3- राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 170, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 360-361 ।

4- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 159, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 276 ।

तालुकेदार[1] भी मध्यस्थ जमींदार कहलाते थे । इस प्रकार सम्पूर्ण साम्राज्य में मध्यस्थ जमींदार फैले हुए थे ।

मध्यस्थ जमींदारों के आनुवांशिक अधिकार होते थे । प्रशासन उनके उत्तराधिकार के विषय, पारस्परिक झगड़ों, उनकी सम्पत्ति के बँटवारे में हस्तक्षेप कर सकता था । प्रशासन को रूष्ट करने पर प्रशासन उन्हें हटा सकता था या उनका स्थानान्तरण भी कर सकता था । उनका कार्य भू-राजस्व के हिसाब को तैयार करना, भू-राजस्व की वसूली में सहायता पहुँचाना, शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना करना व सम्राट की सैनिक सहायता करना था । वे सदैव अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए अधिकारों के लिए संघर्ष किया करते थे और राजस्व में अधिक से अधिक भाग लेने का प्रयास किया करते थे । उनमें से कभी-कभी जोरतलब[1] जमींदार भी हो जाते थे।जिन्हें प्रशासन बलपूर्वक भू-राजस्व का भुगतान करने के लिए बाध्य करता था ।

मध्यस्थ जमींदार बंजर अथवा खेती योग्य भूमि बेंच सकते थे । वे कृषकों का शोषण करते थे व कभी-कभी प्राथमिक जमींदारों को भूमि से वंचित कर दिया करते थे । वे कृषकों से भू-राजस्व वसूल करने देते थे । ऐसी स्थिति में प्राथमिक जमींदारों को भू-राजस्व वसूल करने के अपने अधिकारों को त्याग देना पड़ता था। जागीरदारी प्रथा[3] में संकट तथा मुगल साम्राज्य के पतन का लाभ उठाते हुए कभी-कभी वे स्वतन्त्र जमींदार बनने का प्रयास करने लगते थे । इनके द्वारा स्वतन्त्रता की घोषणा करने पर प्रशासन के लिए इन्हें दबाना दुष्कर हो जाता था। शक्तिशाली शासकों के समय वे दबे एवं नियन्त्रित रहते थे परन्तु दुर्बल शासकों के अन्तर्गत वे विद्रोही व स्वतन्त्र हो जाते थे ।

मुगलकाल की भू-राजस्व व्यवस्था एवं ग्रामीण समाज में जमींदारों का

1- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 160, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 368 ।

2- राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 170, हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 743 ।

3- राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 171, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23-24, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 359 ।

महत्वपूर्ण स्थान था । अपने-अपने प्रदेशों व क्षेत्रों में सभी जमींदारों को राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती थी। मुगल केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासन के अन्तर्गत[1] इनकी महत्वाकाँक्षाए सीमित व नियन्त्रित रहती थी परन्तु इसके विपरीत दुर्बल व शक्तिहीन केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत ये भू-राजस्व वसूल कर उसे अपने पास रख लेते थे और शक्तिशाली हो जाते थे। ये अपनी सेना व आर्थिक साधनों से अपने क्षेत्र में प्रशासन के लिए कठिनाईयाँ भी उत्पन्न कर सकते थे ।

जमींदारों की तीसरी श्रेणी में प्राथमिक जमींदार[2] जो कि कृषक हुआ करते थे, भूमि के वास्तविक स्वामी[3] होने के कारण उनका अधिकार कृषि करना तथा प्रशासन द्वारा निर्धारित भू-राजस्व का भुगतान करना था । ये पूर्णत: जमींदारों के अन्य वर्ग पर आश्रित हुआ करते थे । इन्हें भूमि को बेचने व हस्तान्तरित करने का अधिकार था, किन्तु वे उसे छोड़कर नहीं जा सकते थे ।

प्राथमिक जमीदारों का कृषि योग्य भूमि पर पूर्ण स्वामित्व रहता था । इस श्रेणी में वे कृषक आते थे जो कि या तो स्वयं खेती करते थे या श्रमिकों से खेती करवाते थे । इनके पास एक या अधिक गाँव होते थे । साम्राज्य की सभी कृषि योग्य भूमि प्राथमिक जमींदारों के ही हाथों में होती थी । इनके अधिकार वंशानुगत व हस्तान्तरण योग्य होते थे । मुगलप्रशासन इनके हितों की रक्षा करता था ।

प्राथमिक जमींदारों में कुछ को अपने पूर्वज से भूमि मिलती थी, कुछ भूमि को खरीदते थे । मुगल प्रशासन द्वारा भी उन्हें भूमि मिलती थी जिससे वे कृषि का विस्तार कर सके । उन्हें अधिकांशत: बंजर भूमि व जंगली प्रदेश ही दिये जाते थे । यदि ये भू-राजस्व नहीं दे पाते थे तो इनसे भूमि छीनी नहीं जाती थी बल्कि विभिन्न प्रकार से बकाया भू-राजस्व वसूल किया जाता था । प्राथमिक जमींदारों का कर्तब्य था कि वे साधारण कृषकों के हितो की रक्षा करें, उन्हें कृषि न छोड़ने दे

1- एस0 आर० शर्मा, भारत में मुगलसाम्राज्य, पृ0 189, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 275 ।

2- राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 172, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 369 ।

3- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 158, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगल-कालीन भारत का इतिहास, पृ0 2, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग 2, पृ0 274 ।

तथा उन्हें खेती के लिए प्रोत्साहन दें । साधारण कृषकों से वसूल किये गये भू-राजस्व की कुल राशि में से 10 प्रतिशत तक वे अपना पारिश्रमिक ले लिया करते थे । इन्हें अन्य कर वसूली करने का भी अधिकार था । भू-राजस्व व अन्य करों को वसूल करके वे स्थानीय राजकोष में जमा कर दिया करते थे ।

मुगलकाल में ग्रामीण समाज में जमींदारों का महत्वपूर्ण स्थान था । अपने-अपने प्रदेशों व क्षेंत्रों में सभी जमींदारों को आर्थिक क्षेंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती थी । केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासन के अन्तर्गत उनकी महत्वाकाँक्षाएं सीमित व नियन्त्रित रहती थी किन्तु दुर्बल व शक्तिहीन केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत वे भू-राजस्व वसूल कर उसे अपने पास रख लेते थे व शक्तिशाली हो जाते थे। वे अपनी सेना, आर्थिक साधनों से अपने क्षेत्र में प्रशासन के लिए कठिनाइयाँ भी उत्पन्न कर सकते थे[1] ।

जागीरदारी प्रथा का संकट-

औरंगजेब के काल में दक्षिण योजना के परिणामस्वरूप जागीरदारी प्रथा संकटग्रस्त हो गयी । शाहजहाँ के शासनकाल में कुल जमा 880 करोड़ दाम थी जबकि खालिसा 120 करोड़ दाम था इस आधार पर मोरलैण्ड ने अनुमान लगाया है कि जमा का 7/8 भाग जागीरदारों को आबंटित था और केवल 1/8 भाग खालिसा के लिए बचता था मोरलैण्ड का विचार है कि औरंगजेब के शासन में जागीरदारों को आबंटित जमा में इससे भी अधिक वृद्धि हुई । इस तरह साधारण कृषक आमतौर पर जागीरदार के शोषण का शिकार अधिक होता था । सरकारी 'आमिल' की तुलना में जागीरदार कृषक का अधिक शोषण करते थे[2] । इसका कारण था कि मराठा सरदारों को अपने पक्ष में करने के लिए उन्हें मुक्त हस्त से जागीर प्रदान की गयी । औरंगजेब के पाँच हजार, के तेरह हिन्दू मनसबदारों में से नौ मराठा थे[3] । राज्य में जागीर देने के लिए भूमि की अत्यधिक कमी हो गयी। सतीश चन्द्र के अनुसार' सारा जमाना बेजागीर हो गया' ऐसी स्थिति में जब जागीरों का तबादला होता तो जागीरदार अधिकारियों को घूस देकर उसे रूकवाने का प्रयत्न

1-राधेश्याम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 172 ।

2-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 250, एल0 पी0 शर्मा मुगलकालीन भारत, पृ0 362 ।

3-श्रीराम शर्मा, दि रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ0 133, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, 162 ।

4-सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23 ।

करते क्योंकि एक बार जागीर हाथ से निकल जाने पर पुनः प्राप्त करना सरल नहीं था । खाँफी खाँ और मामूरी का कथन है कि स्वयं औरंगजेब बार-बार कहता था कि जागीर व जागीरों के इच्छुकों की दशा 'एक अनार सौ बीमार' जैसी है । मंसब प्राप्त होने के बाद जागीर मिलने में इतनी देर होती थी कि यह कहा जाने लगा कि जागीर प्राप्त करने में एक नौजवान के बाल सफेद हो जाये । जब कहीं किसी अभियान के समय अमीरों को जागीरें प्रदान करने की आवश्यकता होती थी तो कुछ अन्य अमीरों की जागीरे उनसे छीनकर इन्हें दे दी जाती थी । बेजागीरी का मुख्य कारण था उस काल में अमीरों की संख्या और मनसबों की वृद्धि[1]।

मनसबदारों की कुल संख्या

जहाँगीर	1605	2,069
शाहजहाँ	1637	8,000
औरंगजेब	1690	11,456

अमीरों की संख्या[2]

	1628-58	1658-78	1679-1700
5,000 व ऊपर	49	51	79
3,000 से 4500	88	90	133
1,000 से 2700	300	345	363
	437	486	575

औरंगजेब के शासनकाल में अमीरों की संख्या में विशेष वृद्धि 1678 के

1-अबुलफजल मामूरी, तारीखे औरंगजेब, 157 अ एवं ब, सतीशचन्द्र, उत्तर-मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23, चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग 2, पृ0 117 ।

2-तुजुके जहाँगीरी, वारिस, बादशाहनामा, 70, जवाबिते आलमगीरी, 15अ, एस0 आर0 शर्मा, रीलीज्स पालिसी आफ दी मुगल एम्परर्स, 133, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24 ।

वाद हुई । इसका कारण यह था कि दक्षिण के अमीरों-दक्खिनी व मराठे दोनों को अपनी ओर मिलाने के लिए औरंगजेब ने उन्हें बड़ी-बड़ी मंसबे प्रदान की । अमीरों की पारिवारिक वृद्धि शाही सेवा में उम्मीदवारों का बाहर से बराबर भारत में आना, राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए जमींदारों को मंसबे देना इत्यादि अमीरों की संख्या में वृद्धि के मुख्य कारण थे ।

जागीरों की कमी की समस्या का सुलझान के लिए औरंगजेब ने कागजी तौर पर जागीर की आमदनी बढ़ा दी । इस प्रकार अमीरों को जागीरों से प्राप्त वास्तविक आय कम हो गयी । इसका प्रभाव यह पड़ा कि जागीरों[1] का स्थानान्तरण बहुत शीघ्रता से होने लगा । जागीरदारों को यह भरोसा नहीं रहा कि उसकी जागीर उनके पास साल या छः महीने रहेगी भी या नहीं । जागीरदार कृषि के प्रोत्साहन का कार्य व्यर्थ समझने लगे । समकालीन लेखक भीमसेन का कहना है कि हर जागीरदार सोचता था कि मैं भूमि को धन-धान्य पूर्ण करने का प्रयास करूँ क्योंकि उसका लाभ किसी और को होगा अतः किसानों से जितना वसूल कर सकूँ वसूल करूँ[2]। इसका यह प्रभाव हुआ कि किसानों में खेती के बिगाड़ व असन्तोष उत्पन्न हो गया। किसानों के असन्तोष के कारण बहुत से विरोधी आन्दोलनों को बल मिला। अमीरों के असन्तोष के कारण सभी कार्यो में विध्न व विलम्ब हुआ । अमीर अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए गुट बनाने लगे कुछ तो स्वतन्त्र रियासतों की कल्पना करने लगे।

इस बढ़ते हुये आर्थिक व शासनात्मक संकट का कोई उपाय औरंगजेब नहीं कर पाया, बल्कि दक्षिण में लगातार युद्ध के कारण यह संकट और गम्भीर हो गया। औरंगजेब ने दक्खिनी अमीरों को अत्यधिक संख्या में शत्रु के पक्ष को छोड़कर आने का लालच दिया तथा उन सब को विद्रोही बनने से रोकने हेतु बड़े उदार पैमाने पर मनसब प्रदान किया । शाही सेवा में प्रवेश करने का यह प्रत्यक्ष परिणाम था[3]।

औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम वर्षो में कोई भी पैबाकी शेष नहीं

1- सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24 ।

2- भीमसेन नुस्ख-ए-दिलकुशाँ, पृ0 138ब, 139अ, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24-25, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 359-360 ।

3- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव, पृ0 396 ।

रह गयी । जागीर में देने के लिए शेष न रह गया । औरंगजेब ने आजम को एक पत्र में स्पष्ट लिखा कि "पैबाकी की कमी है और वेतन मांगने वालो की अधिकता'''|1691 ई0 में औरंगजेब न बख्शियों का निर्देश दिया कि व नय व्यक्तियों के लिए मनसव की सिफारिश न कर[2] । जागीरदारी प्रथा का प्रतिदिन का कार्य पैबाकी के अभाव के कारण अत्यन्त कठिन हो गया । मनसब के आधार पर जिन व्यक्तियों की नियुक्तियाँ हुयी, उनके लिए जागीर प्राप्त करना दुष्कर हो गया । बहुत से अधिकारी चार-पाँच वर्षा तक जागीर प्राप्त करन में असफल रह यदि किसी प्रकार से जागीर मनसबदार को प्राप्त हो गयी तो यह निश्चित नहीं था कि उसकी जागीर किसी अन्य व्यक्ति को तब तक हस्तान्तरित नहीं की जायेगी जब तक उसके बदले में उसे कोई अन्य जागीर नहीं दे दी जाती । इस प्रकार जागीर की इतनी कमी हो गयी थी कि कितने व्यक्ति लम्बे समय से शाही सेवा में तत्पर थे किन्तु वे बिना जागीर के रह गये । जागीर प्राप्त करने के लिए किसी व्यक्ति को सर्वप्रथम एक संरक्षक, कठोर परिश्रमी एवं गम्भीर प्रतिनिधि इसके साथ-साथ अत्यधिक घूस देकर कार्य करवाने की क्षमता की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार की व्यवस्था छोट मनसबदार नहीं कर सकते थें । इसलिए इन्हें दयनीय स्थति में रहना पड़ता था।

इस प्रकार की स्थिति ने बहुत विकृत रूप की गुटबन्दी को पनपने का अवसर दिया । मामूरी दक्खिनी अमीरों की कटु आलोचना करता है[3]|जिन्होंनें पुराने अमीर वर्ग को जागीरों से वंचित कर दिया। यह समस्या इतनी गम्भीर हा गयी कि[4] भीमसेन के अनुसार औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने राजपूत राज्यों पर आक्रमण किया| जिससे उनकी भूमि जागीर के रूप में अधिकारियों में बाँटी जा सके।

इस प्रकार जागीर के लिए मुगल सम्राज्य एवं मनसबदारों के मध्य संघर्ष प्रारंभ हो गया किन्तु इसने सैन्य संघर्ष का रूप धारण नहीं किया । यह संघर्ष दरबार में गुटबन्दी एवं अधिकारियों को घूस देने के कारण हुआ किन्तु जागीरदारों

1- दस्तूर-ए-अमल-ए-अगाही, प0 36, रकायम-ए-करायम प0 28ब, ।

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव II, पृ0 411-12, एम0 अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 133-134 ।

3- मामूरी, प0 156ब- 157अ ।

4-सतीशचन्द्र, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, पृ0 29-34, एम0 अतहरअली, औरंगजेव कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृ0 134-135

द्वारा स्थानान्तरण[1] सम्बन्धी आदेशों का वलपूर्वक अवज्ञा नहीं की गयी । 17वीं शताब्दी के अन्त तथा 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उमरा वर्ग पर विभिन्न प्रकार के दबाव पड़ने लगे और इसका असर साम्राज्य के विच्छिन्न होने के रूप में प्रकट हुआ । इस प्रक्रिया का प्रारम्भ जाट विद्रोह[2] से हुआ जो फौजदार के अत्याचार के विरोध में प्रारम्भ हुआ था। इसके पश्चात मतनामी तथा सिक्ख विद्रोह हुए जिनके कारण मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को धक्का लगा । ऐसे कठिन समय में मराठों के साथ मैत्री स्थापित करनी पड़ी । शिवाजी की महत्वाकांक्षा तथा चौथ व सरदेशमुखी करों की वसूली करके मुगलों के अधीनस्थ क्षेत्र की लूटपाट से सुरक्षित रखना था । मुगलों को अपनी अक्षमता के कारण समझौता करना पड़ा । शिवाजी की गतिविधियों[3] से उत्तरी और पश्चिमी भारत के व्यापार में बाधा पड़ी । इससे मराठों के प्रतिरोध के महत्वपूर्ण परिणाम हुए । स्थानीय अधिकारी अपने फायदे की दृष्टि से मराठों से व्यक्तिगत स्तर पर साँठ-गाँठ करने लगे । मराठा सरदारों की अभिलाषा जागीरदारी संकट को और कठिन करना था ।

मूल समस्या यह थी कि इस काल में सामाजिक वैभवपूर्ण जीवनशैली प्रशासन तथा युद्ध सम्बन्धी कार्यो को पूरा करने तथा प्रशासनिक वर्ग की जीवनशैली के कार्यो को पूरा करने के लिए जागीर अपर्याप्त था । उत्पादन में वृद्धि के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिये जाने के बाद भी उत्पादन इस सीमा तक नहीं बढ़ सका कि वैभवपूर्ण जीवनशैली का व्यय वहन करने में सक्षम हो । जहाँगीर के शासनकाल के अन्तिम वर्षो में यह प्रकट होने लगा था । जमा और हासिल[4] के मध्य अन्तर बढ़ने लगा। जिसके कारण हासिल की राशि के मासिक अनुपात के अनुमान पर आधारित जागीरों की व्यवस्था प्रारम्भ हुई किन्तु इन उपायों से समस्या का

1- एम0 अतहरअली, औरंगजबकालीन, मुगल अमीर वर्ग, पृ0 135, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 213, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 178, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 330, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 22,

3- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 390-91, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 357-366, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत पृ0 304-305 ।

4- हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 161, नोमान अहमद सिद्धिकी, लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अण्डर दी मुगल्स, पृ0 108-123, इरफान हवीब, दी एग्रोरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, अध्याय 7 ।

समाधान न हो पाया तथा शासन में मितव्ययता बरतने के अन्य उपायों के बावजूद औरंगजेब को राजस्व में घाटे का सामना करना पड़ा ।

जागीरों के लिए संघर्ष तथा दरबार में नियुक्ति के कारण जाति तथा धर्म एकता की प्रच्छन्न भावना उग्र होने लगी तथा उमरा वर्ग से हिन्दुओं को अलग करने की इच्छा प्रबल होने लगी । दकन यद्यपि राजस्व की दृष्टि से घाटे का क्षेत्र था फिर भी वहाँ दकनी अमीरों को अपने पक्ष में करने तथा युद्ध आदि में भारी मात्रा में सोना खर्च किया गया । प्रत्येक अमीर उत्तर के शान्तिपूर्ण इलाके में जागीर हासिल करना चाहता था । इसी कारण जागीरों के अनुदान[1] में देरी हो जाती थी । इन जागीरों से नियत आय का कुछ भाग ही प्राप्त होता था । जागीरदारों के एसे क्षेत्रों से, जहाँ की आय आंशिक थी, जमा की वसूली करन के प्रयासों के कारण काश्तकार ने खेती छोड़कर भाग जाना प्रारम्भ कर दिया । इनके कारण सशस्त्र विद्रोह भी हुए । आय में अनिश्चितता के कारण मनसबदारों की शक्ति भी क्षीण हुई । बहुत से मनसवदारों ने अपनी जागीरों को इजारे पर देना प्रारम्भ कर दिया या नकद अदायगी को लेना उचित समझा ।

इस प्रकार 1707 ई0 के काल में जागीरदारी व्यवस्था शक्तिहीन[2] हो चुकी थी । ऐसी दशा में उपचार केवल यही था कि इसकी बुराइयों को समाप्त करके इस कर प्रणाली में नय सिरे से सुधार किय जायें और ऐसी बातों को स्वीकृति दिये जाए जो अब तक सम्भव नहीं थी । इस प्रकार यह संकट वस्तुतः एक ''सामाजिक समस्या'' थी जिसका समाधान केवल व्यापार में तीव्र विस्तार करने या तकनीक परिवर्तनों के द्वारा ही संभव था । इसके लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में अवरोधों का भी समाप्त करना था इस प्रकार इस संकट का मध्यकालीन भारत की अर्थव्यवस्था के सामाजिक सम्बन्धों में विशेष महत्व हैं । कृषि व्यवस्था तथा प्रशासनिक तन्त्र इनकी बुनियाद पर आधारित थी ।

जाति तथा ग्राम समाज की संरचना ने मुगलों से जमींदारों के साथ

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 391, सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली पृ0 163 ।

2- सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 391-392 ।

सम्बन्ध निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । खुदकाश्त, स्थानीय अधिकारी तथा मध्यस्थ जमींदार इसी वर्ग के थे । गाँवों में इन्हीं का प्रभाव था । मुगल प्रशासन ने इनके तथा फौजदार के माध्यम से जमींदारों के विशेष अधिकारों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया था ।

मुगलों की सत्ता, प्रतिष्ठा तथा किसी एक वर्ग द्वारा दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण न करने के कारण समाज में एक संतुलन स्थापित हो गया था । यहाँ काश्तकार अपने संरक्षण के लिए केन्द्रीय प्रशासन के प्रति उत्तरदायी था न कि जमींदार के प्रति । खुदकाश्त[1], केन्द्रीय सत्ता तथा जमींदार के मध्य संतुलन बने रहने पर ही समाज मे स्थायित्व की स्थिति संभव थी ।

फौजदार[2] जागीरदार की लगान की वसूली करने में मदद करता था, साथ ही जागीरदार के विरूद्ध काश्तकार की समस्याओं का प्रतिकार करने का माध्यम भी था । वाकयानवीस इन दोनों पर निगरानी भी करता था । नियन्त्रण व संतुलन की यह व्यवस्था मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का अभिन्न अंग थी किन्तु यह संतुलन नष्ट हो गया । भूमिहीन तथा निम्न वर्ग के लोगों को बिना खेती की गयी भूमि पर स्वामित्व स्थापित करने के अधिकार नहीं थे । मुगल काश्तकारी भूमि में वृद्धि करने के लिए मुख्यत: जागीरदार तथा प्रमुख भूपति वर्ग पर ही अधिकाधिक आश्रित थे, जिसके कारण मंकट और भी बढ़ गया । प्राय: छोटे मनसबदारों का स्थानान्तरण होता था[3] । मनसबदार अधिकांशत: जमींदारों से ही लगान की वसूली करते थे जिन पर सरलता से बल प्रयोग नहीं किया जा सकता था । इस प्रकार काश्तकार प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं होता था ।

जमींदार की शक्ति पहले की अपेक्षा बढ़ गयी थी । 17 वीं शताब्दी

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 392, राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, पृ0 137 ।
2- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 191, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-2, पृ0 275, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली पृ0 114-115 ।
3- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 392, सतीशचन्द्र वर्मा, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास पृ0 24 ।

में वे राजस्व की वसूली से सम्बन्धित व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गये तथा जमा में उनका हिस्सा शामिल होता था । जमींदारों के इस प्रकार से बढ़ते हुये प्रभाव के कारण काश्तकार प्रशासन के प्रभाव से अलग होते गये । दकन की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के कारण काश्तकारों की दशा खराब हुई जबकि जमींदार की स्थिति सुदृढ़ हुई । जमींदार मराठा सरदार के साथ मिल गये। इस प्रकार जागीरदार को भू-राजस्व का अंश भी नहीं मिल पाता था । 17 वीं शताब्दी के बाद मुगल उस सामाजिक संतुलन को बनाये रखने में असमर्थ रहे जिस पर मुगल साम्राज्य की बुनियाद थी । इस प्रकार प्रशासनिक संकट भी उठ खड़ा हुआ । इनकी परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया में जागीरदारी संकट का कारण बनी । जागीरदारी संकट वस्तुतः मुगलों की उस सामाजिक संतुलन को बनाये रखने की असमर्थतता के कारण हुआ जिस पर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था आधारित थी तथा जो साम्राज्य की आधारशिला थी[1] ।

इस बढ़ते हुये आर्थिक व शासनात्मक संकट को राजनीतिक व धार्मिक नीतियों ने और विषम बना दिया । इस संकट का मूल कारण मध्यकालीन सामाजिक विषमताएं थी । मध्यकालीन समाज में यह द्वन्द्व था कि देश के उत्पादक साधन के अधिकांश भाग का उपयोग ऐसे सामाजिक व राजनीतिक तत्वों द्वारा होता था जो उनका अपव्यय भोग विलास तथा ऐश्वर्य में अधिक करते थे और उत्पादक साधनों की वृद्धि के प्रति प्रायः उदासीन रहते थे इसके अलावा उनका मुख्य ध्यान लड़ाई के कार्यो में रहता था । मध्ययुग में मुगल शासको ने कृषि के विस्तार व प्रगति में योगदान दिया किन्तु आवश्यकताओं की दृष्टि से कम था । दूसरी ओर शासक वर्ग की शान शौकत[2] की आकांक्षाओं में कोई कमी नहीं हुयी । इन सबका भार मुख्यतः कृषक वर्ग के कन्धे पर पड़ा । जमींदारों की शक्ति भी मूल रूप से कम नहीं हुयी क्योंकि शासनात्मक दृष्टि से मुगल उनके सहयोग के बिना शासन नहीं चला सकते थे ।

इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के समय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,

---

1-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 392-393 ।

2-सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 25, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 367 ।

व शासनात्मक[1] सभी दृष्टियों से मुगल राज्य में एक विषम स्थिति पैदा हो गयी थी । इसके निवारण के लिए किसी असाधारण व्यक्ति या व्यक्तियों की अपेक्षा नयी गतिविधियों की आवश्यकता थी। यद्यपि मुगल साम्राज्य आन्तरिक रूप से जर्जरित हो चुका था किन्तु उसके शासनात्मक ढाँचे में इतनी सामर्थ्य थी कि बिना किसी सुधार के वह औरंगजेब की मृत्यु के बाद आधे शतक तक टिक सका ।

1-हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग-2, पृ0 392, सतीशचन्द्र उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24,

अध्याय 7

मुगल साम्राज्य एवं यूरोपीय व्यापारिक गतिविधियाँ

प्राचीनकाल से ही भारत का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध रहा है । यह सम्बन्ध मुख्यतः भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा से स्थल मार्ग द्वारा दक्षिण के समुद्री मार्ग द्वारा कायम किया गया । मुगलों ने सीमा पर स्थल मार्ग की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था किया था । सामुद्रिक मार्ग की सुरक्षा की ओर उचित ध्यान नहीं दिया । यही कारण है कि यूरोपीय जातियों को भारत आने और यहाँ अपने व्यापार फैलाने की प्रेरणा मिली । भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना इसलिए भी आवश्यक हो गया क्योंकि अरबों के व्यापारिक प्रभुत्व से यूरोपीयों को आर्थिक क्षति हो रही थी । अरब व्यापारी भारतीय और यूरोपीय व्यापारियों के बीच मध्यस्थता का कार्य करके स्वयं लाभ प्राप्त करते थे । परिणामस्वरूप यूरोपीय व्यापारियों ने भारत के साथ सीधा व्यापारिक सम्बन्ध कायम करने के लिए[1] नवीन मार्गो की खोज प्रारम्भ कर दी जिससे अरबों का व्यापारिक प्रभुत्व कम किया जा सके । इस इच्छा से प्रेरित होकर नाविकों ने नये जलमार्गो की खोज की ओर ध्यान दिया । इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण घटना 17 मई 1498 ई0 को वास्कोडिगामा नामक पुर्तगाली नाविक का उत्तमाशा अंतरीय होते हुये कालीकट पहुँचना[2] था । कालीकट के शासक जमोरिन ने इस उत्साही नाविक का स्वागत किया तथा उसे व्यापारिक सुविधाएं प्रदान की । एस0 आर0 शर्मा [3] के अनुसार "भारत की भूमि पर वास्कोडिगामा का आगमन यूरोपीय इतिहास की दृष्टि से निःसन्देह एक युगान्तकारी घटना है क्योंकि इसने यूरोपीयवासियों को सबसे पहले व्यापारियों के रूप में प्रवेश करवाया उसके बाद उपनिवेश स्थापित करने वाले के रूप में उन्हें भारत-भूमि में बसाया और अन्ततः अंग्रेजों को यहाँ के शासक के रूप में प्रतिष्ठित किया"। अतः मध्यकालीन यूरोप में सामन्तवाद के पतन के साथ ही 'आधुनिक युग' का उदय हुआ । इस युग में पूँजीवाद और वाणिज्यवाद का विकास हुआ ।

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 67, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन इतिहास भाग 2, पृ0 678, कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 199 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 370, चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास भाग 2, पृ0 106 ।

3- एस0 आर0 शर्मा0, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 380 ।

1498 ई0 में कालीकट में वास्कोडिगामा के आगमन के पश्चात हिन्दमहासागर पर पुर्तगालियों का नियन्त्रण क्रमशः बढ़ता गया । राज्य संरक्षण सुदृढ़ नौसेना और चतुर कूटनीति की सहायता से पुर्तगालियों ने शीघ्र ही इस क्षेत्र के समुद्री व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया । इस प्रकार भारतीय समुद्र व्यापार के इतिहास में पुर्तगालियों के नियन्त्रण के दूरगामी परिणाम हुए और उनका यह प्रभुत्व तब तक बना रहा जब तक की सत्रहवीं शताब्दी में डचों और अंग्रेजों ने आकर उन्हें विस्थापित नहीं कर दिया[1]।

16वीं शताब्दी के आरम्भिक चरण तक पुर्तगाल को ही पूर्वी समुद्रों द्वारा व्यापार करने का एकाधिकार प्राप्त था । अत: 16वीं शताब्दी तक सिर्फ पुर्तगाली ही भारत से अपना व्यापरिक सम्बन्ध स्थापित कर सके[2] परन्तु कालान्तर में जब धर्म-सुधार आन्दोलन ने पोप की सत्ता कमजोर कर दी तो भारत के साथ होने वाले व्यापारिक लाभ को देखकर यूरोप की अन्य शक्तियाँ भी भारतीय व्यापार में दिलचस्पी लेने लगी । अपने-अपने देशों की सरकार के सहयोग और संरक्षण के आधार पर डचों, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों इत्यादि ने व्यापारिक कम्पनियाँ स्थापित की तथा भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये। परिणामस्वरूप 17-18वीं शताब्दी में पुर्तगालियों के अतिरिक्त अंग्रेज और फ्रांसीसी भी भारत में व्यापारी के रूप में जम गये[3]। भारत के विभिन्न भागों में इन्होंनें अपनी कोठियाँ एवं बस्तियाँ स्थापित की। भारतीय राजनीति की दुर्बलता का लाभ उठाकर इन लोगों ने व्यापार के अतिरिक्त राजनीति में भी हस्तक्षेप किया । परिणामस्वरूप इनमें आपसी प्रतिस्पर्द्धा भी आरम्भ हुई जिसमें अंतत: अंग्रेज सफल हुये और भारत पर उनका राजनीतिक प्रभाव स्थापित हो गया[4] ।

1-मुगल साम्राज्य में पुर्तगाली व्यापारी -

भारत में जो यूरोपीय जातियाँ व्यापार करने के उद्देश्य से आयी उनमें सबसे पहला स्थान पुर्तगालियों का था । इन लोगों ने यहाँ के व्यापार पर अधिकार करने और यहाँ की राजनीति में हिस्सा लेकर अपने

1- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 380 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 370 ।

3- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 81 ।

4- कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 199-200 ।

लिये सुविधाएं प्राप्त करने की चेष्टा की । आरम्भ में पुर्तगालियों ने 'सशस्त्र व्यापार' की नीति अपनाई । 1505 ई0 तक इसी नीति का अनुसरण करते रहे । इस नीति के अनुसार प्रतिवर्ष एक सशस्त्र पुर्तगाली व्यापारिक बेड़ा भारत आता था और यहाँ से माल लेकर पुर्तगाल चला जाता था । इसके साथ-साथ पुर्तगालियों ने भारत में अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास भी किया । अरबों के विरोध के बावजूद पुर्तगालियों ने कालीकट, कोचीन तथा कन्नानोर में व्यापारिक केन्द्र कायम कर लिया । कालीकट की पुर्तगाली बस्ती की किलेबन्दी कर दिया । कालीकट के शासक जमोरिन[1] की अरब व्यापारियों से अच्छी घनिष्ठता थी, क्योंकि अरब व्यापारियों के बल पर ही उसकी आर्थिक सम्पन्नता टिकी थी । अत: अरबों का विश्वास जीतने के लिए उसने पुर्तगालियों को सेना के बल पर दबाने का प्रयास किया, परन्तु इस प्रयास मे वह असफल रहा । जमोरिन की असफलता से पुर्तगालियों को प्रोत्साहन मिला और अपनी शक्ति-विस्तार के प्रयास में लग गये ।

इसी समय डी अल्मेडा[2] भारत में पुर्तगाली गर्वनर नियुक्त होकर आया । यह महत्वाकांक्षी व्यक्ति था भारत में पुर्तगाली शक्ति का विस्तार करना चाहता था। उसने 'सशस्त्र व्यापार' की नीति त्यागकर 'नीले पानी की नीति' का अनुसरण किया जिसका उद्देश्य हिन्दमहासागर में पुर्तगालियों का प्रभुत्व स्थापित करना था । इसनें पुर्तगाली सम्राट से कहा था ''यह निश्चित है कि जब तक पुर्तगाल समुद्र पर शक्तिशाली रहेगा, तब तक भारत पर आपका अधिकार रहेगा और यदि आपकी यह शक्ति निर्बल होगी तो आप समुद्र तट के दुर्ग से अधिक सहायता प्राप्त न कर सकेगें[3]''। अत: अल्मेडा को पुर्तगाली सरकार की ओर से निर्देश था कि वह भारत में ऐसे पुर्तगाली दुर्ग बनाये जिनका लक्ष्य सुरक्षा न होकर हिन्दमहासागर के व्यापार पर पुर्तगाली नियन्त्रण स्थापित करना हो । भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव रखने वाला उसका परवर्ती अलफॉसो-डी-अलबुकर्क था ।

अलबुकर्क ने भारत के अनेक बन्दरगाह नगरों और हिन्दमहासागर पर पुर्तगाली नियन्त्रण स्थापित किया । 1510 ई0 में गोआ पर पुर्तगाली अधिकार हो गया । दक्षिण-पूर्वी एशिया की महत्वपूर्ण मण्डी मलक्का, पुर्तगालियों के नियन्त्रण

1- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 222 ।

2- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 682 ।

3- कामेश्वर प्रसाद, भारत इतिहास, पृ0 202 ।

में आ गयी । फारस की खाड़ी पर स्थित हरमुज पर पुर्तगालियों का अधिकार 1515 ई0 में हुआ । ये तीनों नगर सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थे । अलबुकर्क के पश्चात भी पुर्तगाली शक्ति का निरन्तर विकास होता रहा । उसके उत्तराधिकारी लोपोसारस के समय 1518 ई0 में पुर्तगालियों ने श्रीलंका में किलेबन्दी कर ली तथा चटगाँव[1] तक जा पहुँचे । शीघ्र ही पुर्तगाली आधिपत्य दियू, दमन, सलसिट, बेसीन, चौल, बम्बई, मद्रास, हुगली आदि जगहों पर कायम हो गया[2]। पुर्तगाली अपने आप को 'सागर के स्वामी' कहते थे । कार्ट्ज-आर्मेडा व्यवस्था को पुर्तगालियों ने चलाया। कोई भारतीय या अरबी जहाज पुर्तगाली अधिकारियों से कार्ट्ज या परमिट लिए बिना अरब सागर में नहीं जा सकता था । भारतीय या अरबी जहाजों को कालीमिर्च और गोलाबारूद ले जाने की अनुमति नहीं थी । मुगल बादशाह तक सूरत से जाने वाले अपने जहाजों के लिए परमिट प्राप्त करते थे । परमिट के लिए शुल्क देना पड़ता था । पुर्तगालियों को आमदनी उस चुंगी शुल्क से होती थी जो हर एक जहाज को किसी दुर्ग से गुजरने पर देनी पड़ती थी । पुर्तगालियों के राजस्व का बड़ा भाग चुंगी से ही आता था ।

सोलहवीं शदी में उत्तर भारत में मुगलों की शक्ति ने हिन्दमहासागर के व्यापार पर पुर्तगालियों के नियन्त्रण के लिए कोई खतरा उत्पन्न नहीं किया क्योंकि मुगल बादशाहों ने सुदृढ़ नौसेना[3] बनाने पर बल नहीं दिया और समुद्री व्यापार के मामले में भी उनकी विशेष रूचि नहीं थी । हुमायूँ से पराजित होने पर गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह[4] को पुर्तगाली सहायता की आवश्यकता पड़ी । अत: 1535 ई0 में उसे पुर्तगालियों को दीव में अपना दुर्ग बनाने की अनुमति देनी पड़ी। इससे पुर्तगालियों के लिए अरब सागर के व्यापार पर नियन्त्रण करना सरल हो गया । 1572 ई0 में गुजरात के मुगल साम्राज्य के लिए कोई खतरा नहीं हुआ । मुगल

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 682, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 380 ।

2- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 83, 223 ।

3- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 686, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 352 ।

4- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव- ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 247, मजूमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 153 ।

बादशाह अकबर ने पुर्तगालियों से प्रतिवर्ष एक निःशुल्क 'कार्ट्ज' प्राप्त करके एक प्रकार से उनका नियन्त्रण स्वीकार कर लिया था । इस व्यवस्था के अन्तर्गत अकबर प्रतिवर्ष लालसागर में अपना एक जहाज पुर्तगालियों को बिना कोई शुल्क चुकाये भेज सकता था[1]। गोआ के पुर्तगाली गर्वनर और अकबर के बीच सौहार्दपूर्ण सम्वन्ध था। अकबर के समय तीन जेसुइट मिशन मुगल दरबार में आये । अकबर की धार्मिक सहिष्णुता को देखकर वे इसी आशा में मुगल दरवार में बने रहे कि वे अकबर को ईसाई बना लेंगे। किन्तु उनकी ये आशा पूर्ण न हुई । इनकी राजनीतिक भूमिका महत्वपूर्ण रही क्यों कि मुगल दरबार के सम्बन्ध में जो जानकारी ये पुर्तगाली गर्वनरों को देते थे, वह बड़े काम की होती थी ।

1596 ई0 में दक्षिण पूर्वी एशिया में आने के बाद अगले बीस वर्षो में डचों ने पुर्तगालियों को इस क्षेत्र से बाहर खदेड़ दिया और पूर्वी एशिया में पुर्तगालियों के व्यापार को भी कम कर दिया । 1641 ई0 में डचों ने पुर्तगालियों के महत्वपूर्ण मलक्का दुर्ग को जीत लिया । 1659 ई0 में सम्पूर्ण श्रीलंका और 1663 ई0 में पुर्तगालियों के सभी मालाबारी दुर्ग डचों के अधीन हो गये । डचों ने गोआ पर भी 1638-44 और 1656-63 में घेरा डाला । पुर्तगालियों के कड़े विरोध के बावजूद वे गोलकुण्डा के शासक से फरमान लेकर मुसलीपट्टम में जम गये[2]।

डचों की भाँति अंग्रेज भी मसाला व्यापार में रूचि रखते थे । अंग्रेजो का ध्यान भारत की ओर आकृष्ट हुआ । अतः सूरत[3] के पास पुर्तगालियों के एक बेड़े को पराजित करके अंग्रेजो ने 1612 ई0 में सूरत में एक कारखाना स्थापित कर लिया। 1618ई0 में जहाँगीर ने एक फरमान द्वारा इस कारखाने को स्वीकृति प्रदान कर दी[4] । अंग्रेजों ने यह फरमान सरटॉमस रो की सहायता से प्राप्त किया था। 1628ई0 में फारसी सेना की सहायता से अंग्रेजों ने हरमुज पर कब्जा कर लिया जो फारस की खाड़ी पर स्थित पुर्तगालियों की मुख्य चौकी थी ।

मुगल बादशाह शाहजहाँ ने 1632ई0 में हुगली स्थित पुर्तगालियों के

1- हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 687 ।

2- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 85 ।

3- खॉफी खॉ, मुन्तखब-उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 247 ।

4- इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत भाग 5, पृ0 95 ।

अराजकतापूर्ण खेमे से तंग आकर उन पर आक्रमण कर दिया । मुगल सेनाओं ने उस शहर पर अधिकार करके उसे लूटा और पुर्तगालियों को वहाँ से बाहर निकाल दिया । इससे ब्रिटिश कम्पनी को इस क्षेत्र में अपने व्यापार का प्रमुख केन्द्र स्थापित करने में बड़ी सहायता मिली ।

इस प्रकार 17 शदी के पूर्वार्द्ध में डच और अंग्रेज भारतीय व्यापार में अच्छी तरह जम गये और पुर्तगालियों का एकाधिकार सदा के लिए समाप्त हो गया। यारूबियों ने पुर्तगालियों को मजाम्बीक के अतिरिक्त उनके समस्त पूर्वी अफ्रीकी अड्डों से खदेड़ दिया । पुर्तगाली गोआ, दमन और दीव में बने रहे, किन्तु अब भारत के समुद्री व्यापार में उनका दखल नहीं रह गया उनकी शक्ति समाप्त हो चुकी थी[2] ।

2-मुगल साम्राज्य में डच व्यापारी -

पुर्तगालियों की तरह डच भी भारत के साथ व्यापार करने आये । इस दिशा में पहला प्रयास 1552 ई0 में हुआ । जब एमस्टरडम के व्यापारियो ने भारत के साथ व्यापार करने के लिए एक व्यापारिक कम्पनी की स्थापना की । 1595ई0 में पहला डच जहाजी बेड़ा कोरनीलियन हाउटमैन के नेतृत्व में हालैण्ड से भारत के लिए चला । यह वेड़ा उत्तमाशा अंतरीय पार कर मलय द्वीपसमूह पहुँचा तथा वहाँ से काफी सामान लेकर 1597 ई0 में हालैण्ड वापस लौटा। इस सफल समुद्रयात्रा ने डचों को काफी प्रोत्साहित किया तथा पूर्व के साथ व्यापार करने की उनकी इच्छा तीव्र होती चली गयी। कामेश्वर प्रसाद[2] के अनुसार "डच व्यापारी वर्ग की अवरूद्ध इस तरह से फूट पड़ी जैसे कोई बाँध काट दिया गया हो" इसके पश्चात नयी-नयी व्यापारिक कम्पनियाँ स्थापित की जाने लगी । 20 मार्च 1602 ई0 को राजकीय घोषणा के आधार पर "यूनाईटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी ऑफ दी नीदरलैण्ड्स" की स्थापना की गयी । डच स्टेट्स जनरल ने इस कम्पनी को सनद के द्वारा "युद्ध चलाने, सन्धि करने, प्रदेशों पर अधिकार रखने तथा किलेबन्दी करने का अधिकार प्रदान किया और इस प्रकार उसने यूनाईटेड कम्पनी को युद्ध एवं विजय का एक प्रबल अस्त्र बना दिया" इसकी कुल प्रारम्भिक पूँजी 6,500,000 गिल्डर थी[3] ।

1-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 149 मजूमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 189-190 ।

2-कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 205 ।

3-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 696 ।

प्रारम्भ मे डचों का प्रमुख उद्देश्य भारत के साथ व्यापार करना ही था। इस उद्देश्य से इन लोगों ने कोरोमण्डल तट, गुजरात और बंगाल में कई व्यापारिक फैक्ट्रियाँ स्थापित की । बिहार और उड़ीसा में भी इनकी कोठियाँ बन गयी । इनमें प्रमुख पुलीकट, सूरत, चिनसुरा, कासिम बाजार, पटना, बालासोर बरानगर, नेगापट्टम और कोचीन थीं । इन कोठियों की स्थापना ने इनकी व्यापारिक स्थिति सुदृढ़ कर दी । जदुनाथ सरकार[1] के अनुसार "अब वे वास्तव में भारतवर्ष और पूर्व में अपने समुद्र के पार उपनिवेशों के बीच पक्के माल और पैदावार के वाहक बन गये थे" । मसालों के व्यापार पर उनका एकाधिकार स्थापित हो चुका था ।

1602ई0 में डच कम्पनी की स्थापना हुई । यह नये प्रकार की व्यापारिक संस्था थी । प्रारम्भ में डच कम्पनी मूल रूप से कालीमिर्च तथा अन्य मसालों के व्यापार में रूचि रखती थी । ये मसाले मुख्य रूप से इण्डोनेशिया में मिलते थे इसलिए कम्पनी का यह प्रमुख केन्द्र बन गया था । कालीमिर्च दक्षिण पश्चिमी भारत के मालाबार तट पर भी मिलती थी तथा श्रीलंका में इलायची प्राप्त होती थी । इस कम्पनी ने आरम्भ में एशिया के क्षेत्रीय व्यापार से खूब मुनाफा कमाया[2] बाद में भारतीय वस्तुओं को यूरोप के अन्तराष्ट्रीय व्यापार में शामिल किया गया ।

डच व्यापारियों द्वारा पुर्तगालियों की एशिया में बनी सर्वोच्चता को तोड़ने के प्रयत्न पहले उनके जहाजों पर प्रहार करके किये गये । बाद में उनके स्थलीय अड्डों पर डच कम्पनी के द्वारा गोआ मलक्का पर समुद्री नाकाबन्दी कर पुर्तगाली व्यापार को रोका गया । 1636 ई0 के बाद लगातार[3] दस वर्ष तक गोआ पर नाकाबन्दी बनाये रखने के दौरान 1641 ई0 में मलक्का पर डच विजय स्थापित हुई। 1658 ई0 में श्रीलंका से डचों ने पुर्तगाली शक्ति को निकाल दिया फिर मालाबार पर ध्यान दिया । 1658 से 1663 के बीच पाँच डच अभियान लंका से भेजे गये जिनके फलस्वरूप कोचिन पर कब्जा कर लिया गया । कोचिन में मुट्टा शासन से डच कम्पनी को विशेष व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त हुई जिनसे सबसे महत्वपूर्ण पुडाकट और क्रांगनूर के बीच के क्षेत्र में कालीमिर्च का एकाधिकार था ।

कोरोमण्डल तटीय क्षेत्र में विजयनगर साम्राज्य के विघटन के पश्चात

1-जदुनाथ सरकार, दि हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग 5, पृ0 322 ।
2-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 223 ।
3-कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 205 ।

जिन्जी के नायक तंजौर तथा मदुराई इत्यादि के राजाओं से भी डच व्यापारियों ने विशिष्ट व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कर ली[1] । दक्षिण व उत्तरी कोरोमण्डल में डचों को चुंगी कर दर में रियायत मिली तथा कपड़े के व्यापार में उन्हें स्टैम्प मुक्त कर दिया गया । 1632 ई0 के बाद बंगाल के हुगली[2] क्षेत्र में पुर्तगालियों को बाहर कर डच तथा अंग्रेजी कम्पनियों ने अपने व्यापारिक जाल को पूरे बंगाल में फैलाना शुरू कर दिया । यह क्षेंत्र व्यापारिक माल का भण्डार माना जाता था जहाँ श्रेष्ठ कोटि के सूती कपड़े तथा अर्ध निर्मित रेशम तैयार मिलता था । ओमप्रकाश के अनुसार मुगल शासक मुख्यत: अपने साम्राज्य में यूरोपीय व्यापार को प्रोत्साहित करते रहे तथा उन्हें विशेष सुविधाएं भी प्रदान की । आन्तरिक चुंगी कर से छूट भी दी गयी । अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के कमजोर पड़ने से इन कम्पनियों ने अपनी राजनीतिक शक्ति प्रबल कर ली[3] ।

भारत में डच संगठन दूर तक के प्रदेशों में डच फैक्ट्रियों द्वारा फैला हुआ था । भारतीय वस्त्रों का व्यापार इसका महत्वपूर्ण अंश था । इस व्यापार से हालैण्ड का मुनाफा 1625 ई0 में 1.5 लाख गिल्डर से बढ़कर 1680 ई0 में दस लाख गिल्डर होने लगा था । डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड ने एक तुलनात्मक सारिणी द्वारा कोरोमण्डल, गुजरात, बंगाल से प्रतिवर्ष कितनी गाँठे बटाविया के लिए निर्यात होती थीं[4] सारिणी द्वारा स्पष्ट किया है ।

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 697-98 ।
2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 150, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 149, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 189 ।
3- बंगाल के व्यापार का एशिया के आन्तरिक व्यापार एवं यूरोप-एशिया व्यापार में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था । बंगाल में खरीदी गयी वस्तुओं का एशिया में हालैण्ड के निर्यात में 36 प्रतिशत हिस्सा था जो अठारहवीं शताब्दी के दूसरे दशक में 39 प्रतिशत हो गया । सन् 1709-10 ई0 से 1717-18 के दौरान डच कम्पनी की बंगाल में औसत वार्षिक खरीद 22.7 लाख रूपये थी, जबकि इसी समय अंग्रेजों की औसत खरीद केवल 18.8 लाख रूपये थी । कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 206।
4- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 72 ।

अवधि	वार्षिक निर्यात "गाठों में"			योग
	कोरोमण्डल	गुजरात	बंगाल	
1625	1700	800	---	2500
1641-44	2500	1000	नमूना मात्र	3500
1657-61	4000	1200	500	5700

भारत में व्यापार करने के लिए डच कम्पनी ने जो अपना तरीका अपनाया वह भारतीय प्रथा के अनुकूल था । जहाज लदने के पहले बिचौलियों या दलालों को अग्रिम रकम दे दी जाती थी। जिससे बुनकरों को तय कर लिया जाता था । कभी-कभी डच व्यापारी कारीगरों को सीधा रोजगार दिया करते थे। जिससे भारतीय कारीगर उन्हीं पर निर्भर रहते थे । गोलकुण्डा के एक गाँव के निवासी लगान अदा नहीं कर सके थे जिसे डच कम्पनी द्वारा अदा किया गया और इसके बदले वहाँ के लोगों की सेवाएं प्राप्त की गयी । तेजी से बढ़ते डच व्यापार के परिणामस्वरूप भारत में बिचौलियों की सहकारिता विकसित होने लगी क्योंकि इस व्यापार को चलाने के लिए कपड़ों की अधिक से अधिक सप्लाई करना आवश्यक था । ये बिचौलिए मिलकर पूँजी एकत्र करते थे [1] और अपने हिस्से के अनुपात में लाभ प्राप्त करते थे । डच व्यापारियों को इस व्यवस्था से खूब लाभ हुआ ।

माल के स्तर को बनाये रखने तथा निम्न कोटि के माल की सप्लाई को रोकने के लिए 1650 ई0 दशक में डच कम्पनी ने कासिम बाजार में स्वयं रेशम की चर्खी का उद्योग स्थापित किया। जिसमें लगभग 3000 कारीगर को वेतन पर रखा गया । यह प्रयास आधुनिक उत्पादन व्यवस्था का प्रारम्भ था । यह मुगल कालीन शाही कारखानों के समान नहीं था क्योंकि शाही कारखानों में बनी वस्तुएं खुले बाजार में बिक्री के लिए नहीं बनायी जाती थी अपितु शाही परिवार, कुलीनों या सैनिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनायी जाती थी। अधिकांश शाही कारखाने स्वतन्त्र व इच्छुक मजदूरों से समझौता करके नहीं चलाये जाते थे बल्कि कम वेतन देकर दबाव डालकर कारीगरों के द्वारा चलाये जाते थे। ओमप्रकाश[1] इस

1- ओमप्रकाश, दी डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी एण्ड दी इकनॉमिक ऑफ वंगाल 1630-1720 आक्सफोर्ड पृ0 29-33,- इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत भाग- 5, पृ0 99 ।

प्रयास को पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हैं। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक सभी यूरोपीय कम्पनियों ने भारतीय व्यापारियों के माध्यम से ही अग्रिम राशि देकर या उसका कुछ हिस्सा देकर समझौता करके माल प्राप्त करने की परम्परा को अपनाये रखा। अंग्रेजों ने राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर बुनकरों व कारीगरों को धमका कर अपने अधीन कर लिया। परन्तु यह लाभ डच नहीं उठा सके। डच कम्पनी ने 1759 ई0[1] में बंगाल में सैनिक कार्यवाही करके अंग्रेजों की बढ़ती शक्ति को रोकने का प्रयास किया परन्तु पूरी तरह पराजित हुए। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तीन आंग्ल-डच युद्ध यूरोप मे लड़े गये थे। जिनमें अंग्रेज विजयी रहे। इससे व्यापारिक सन्तुलन अंग्रेजों के पक्ष में हो गया था। समृद्धि काल में डच व्यापार पुनः निर्यात व्यापार के रूप में था इसीलिए वह बाहरी माँग पर अधिक निर्भर करता था परन्तु ब्रिटेन तथा फ्रांस के उत्थान से और प्रति-स्पर्धा से हालैण्ड की विदेशी मांग घटने लगी तथा आन्तरिक मांग के सीमित रहने से उनका व्यापारिक नियन्त्रण टूटने लगा। फ्रांसीसीयों की व्यापार नीति से डच व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भारत में डच व्यापारिक केन्द्र सिमटने लगा और पूर्व-एशिया में बटाविया में केन्द्रित होता गया।

3-मुगल साम्राज्य मे अंग्रेज व्यापारी -

पुर्तगालियों और डचों के पश्चात भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से अंग्रेज आये प्रारम्भ में इन्हें डचों से और बाद मे फ्रांसीसियों से प्रभुता के लिए संघर्ष करना पड़ा जिसमें अंग्रेज सफल हुए और यहाँ के व्यापार और राजनीति पर इनका एकछत्र अधिकार स्थापित हो गया।

1597 ई0 में लन्दन का एक व्यापारी माइल्डेहल्ल स्थलमार्ग से भारत पहुँचा। इससे इंग्लैण्ड की सरकार और जनता, भारत के साथ व्यापार करने को प्रेरित हुयी। इस उद्देश्य से इंग्लैण्ड के कुछ व्यापारियों ने मिलकर एक व्यापारिक कम्पनी की स्थापना की। 31 दिसम्बर 1600 ई0 को महारानी एलिजाबेथ ने एक अधिकार पत्र जारी किया। "दी गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेण्ट ट्रेडिंग इन टू दी ईस्ट इण्डिया" को पन्द्रह वर्षो के लिए भारतीय व्यापार का एकाधिकार सौप दिया। इस कम्पनी ने पहले भारत की ओर आने का प्रयास नहीं किया बल्कि पूर्वी द्वीप समूह की ओर अपना ध्यान दिया किन्तु वहाँ पुर्तगालियों का आधिपत्य था। इसलिए

1- हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 700।

बाध्य होकर कम्पनी को भारत की ओर मुड़ना पड़ा[1]।

इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास कैप्टन हॉकिन्स ने किया । राजा जेम्स प्रथम का पत्र लेकर 1608 ई0 में अपने जहाज हेक्टर के साथ वह सूरत बन्दरगाह पर पहुँचा जो एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था[2]। वहाँ से वह मुगल सम्राट जहाँगीर से मिलने आगरा गया । जहाँगीर ने इस राजदूत का यथोचित स्वागत सत्कार किया। हॉकिन्स[3] से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने अंग्रेजों को सूरत में बसने की आज्ञा दे दी। हॉकिन्स को चार सौ की मनसबदारी एवं जागीर दी गयी तथा उसे आगरा में रहने की अनुमति भी मिली । पुर्तगाली सशंकित हो उठे और जहाँगीर से मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध कर दिये अतः जहाँगीर ने अंग्रेजों को सूरत से वाहर जाने की आज्ञा दी। हॉकिन्स निराश होकर दरबार से चला गया । सूरत पहुँचकर सर हेनरी मिडल्टन के साथ हॉकिन्स ने सूरत के व्यापारियों के विरूद्ध प्रतिशोध लेने का निश्चय किया ।इस घटना से घबड़ाकर सूरत के व्यापारियों ने कप्तान बेस्ट के अधीन दो अंग्रेजी जहाजों को सूरत मे रखने की अनुमति दे दी । इसी समय 1612 ई0 में बेस्ट ने ताप्ती के निकट समुद्र युद्ध में पुर्तगालियों को परास्त कर दिया । इस घटना से जहाँ पुर्तगालियों में निराशा व्याप्त हो गयी वहीं अंग्रेजों में नवजीवन का संचार हुआ । छः फरवरी 1612 ई0 को एक शाही फरमान द्वारा जहाँगीर ने अंग्रेजों को सूरत में कोठी बनाने की इजाजत दे दी । टॉमस एडवर्थ के अधीन सूरत में एक स्थायी अंग्रेजी कोठी की स्थापना की गयी । 1616 ई0 में सर टॉमस रो जेम्स प्रथम का राजदूत बनकर मुगल दरबार में पहुँचा । इसका मुख्य उद्देश्य भारत के समुद्री तटों पर अंग्रेजी कोठियाँ स्थापित करने की आज्ञा प्राप्त करना था । राजकुमार खुर्रम ने टॉमस रो का विरोध किया, परन्तु नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ को अपने पक्ष में मिलाकर अनेक सुविधाएं प्राप्त कर लीं । अंग्रेजों को स्वतन्त्र व्यापार करने एवं कोठियाँ खोलने की आज्ञा मिली । इन सुविधाओं से अंग्रेजो का व्यापार बढ़ा । सर टॉमस रो के वापस जाने के समय तक 1619 ई0 में सूरत में अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ हो चुकी थी आगरा, भड़ौच, अहमदाबाद, में अंग्रेजी कोठियाँ स्थापित हो गयी। अंग्रेजों ने क्रमशः मछलीपट्टम में 1631 ई0 में, बालासोर, और हरिहरपुर में 1633 ई0 में कारखाने खोल लिए । 1640 ई0 में मद्रास में सेंट जार्ज नामक किले का

1- कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 207 ।

2- इरफान हवीव, मध्यकालीन भारत भाग 5, पृ0 95 ।

3- डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 225, कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 208 ।

निर्माण किया जो कोरोमण्डल तट पर था । यह मछलीपट्टम से भी अधिक महत्वपूर्ण बन गया[1]।

1651 ई0 में अंग्रेज हुगली पहुँच गये । सुल्तान शुजा ने 1651 ई0 में ही एक फरमान जारी किया जिसमें 3,000 रूपये वार्षिक कर की अदायगी के बदले कम्पनी को बंगाल में व्यापार का विशेषाधिकार प्रदान किया गया[2] पुनः 1656 ई0 में एक और निशान जारी किया गया जिसमें प्रान्त के राजस्व अधिकारियों को यह निर्देश दिया गया कि ''अंग्रेजी कम्पनी की व्यापारिक कोठी को थल या जल के द्वारा बाहर से भीतर आने वाले या भीतर से बाहर जाने वाले सामान पर चुंगी की मांगों से तंग न किया जाये और न ऐसे सरकारी स्थानों पर जहाँ देश के ऊपरी या निचले भाग से होकर सामान लाये जायेंगे और ले जाये जायेंगे । उसके सामान को न खोला जाये और न उससे जबरजस्ती की जाये'' । परन्तु सुल्तान शुजा के 1651 ई0 के फरमान का और 1656ई0 के निशान का कोई विशेष प्रभाव तात्कालिक व्यापारिक परिस्थितियों पर नहीं पड़ा और अंग्रेजी कम्पनी को चुंगी एवं खरीद बिक्री की उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । कम्पनी को इस फरमान से प्राप्त व्यापारिक विशेषाधिकार कानूनी तौर पर तब और कठिन हो गयी जब सुल्तान शुजा के उत्तराधिकारियों ने 1651 ई0 के फरमान को अपने ऊपर लागू होने से इन्कार कर दिया[3] ।

1662 ई0 में अंग्रेज एक बार फिर नये सिरे से मुगल बादशाह से समझौते का प्रयास करने लगे । अतः 1662 ई0 में कम्पनी ने शाइस्ता खाँ से एक फरमान प्राप्त किया, जिसमें कम्पनी को अतिरिक्त कर अदा करने से मुक्ति मिल गयी[4] । पुनः मन् 1680 ई0 में औरंगजेब ने एक फरमान के जरिये यह आदेश दिया कि कोई चुंगी के लिए कम्पनी को परेशान न करे और कम्पनी के व्यापार में रूकावट न डाले[5] । यह ओदश भी था कि हरिशचन्द्र वर्मा के अनुसार, ''अंग्रेज जाति से

1- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 381-82, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 703 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 366 ।

3- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 382 ।

4- ब्रिटिश म्यूजियम, एडि0 240-39, फोलियो 20, इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत भाग 5, पृ0 98-99 ।

5- जदुनाथ सरकार, दी हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग 5, पृ0 322 ।

माल के लिए पहले से ली जाने वाली दो प्रतिशत चुंगी के अतिरिक्त डेढ़ प्रतिशत जजिया के रूप में भी लिया जायेगा[1]"। औरंगजेब के इस फरमान का भी कोई परिणाम नहीं निकला इससे अंग्रेजों ने शक्ति प्रयोग का निश्चय किया और 1687 ई0 में कम्पनी के डायरेक्टरों ने मद्रास के प्रधान को निर्देश दिया कि "सैनिक और असैनिक शक्ति का ऐसा शासन स्थापित कीजिए तथा दोनो की प्राप्ति के लिए इतनी विशाल आय निकालिए और बनाये रखिए जो सदैव के लिए भारत में एक विशाल, सुगठित, सुरक्षित अंग्रेजी राज्य की नींव बन सके[2]"। यह नीति वाणिज्यवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी । वाणिज्यवादी विचारधारा के समर्थक सर जौशुआ चाइल्ड थे । इसी नीति का अनुमरण करते हुये सर जोशुआ चाइल्ड के छोटे भाई मर जॉन चाइल्ड ने बम्बई और पश्चिमी समुद्र तट के मुगल बन्दरगाहों पर घेरा डाला किन्तु अन्ततः यह परिणाम हुआ कि सर जान चाइल्ड को औरंगजेब से माफी मांगनी पड़ी और हर्जाने के रूप में $1^1/2$ लाख रूपये भी देने पड़े[3] । इसके बदले में औरंगजेब ने अंग्रेजों को व्यापार के लिए एक अधिकार पत्र दिया । 1686 ई0 में अंग्रेजों ने हुगली को लूट लिया तथा हुगली और बालासोर की मुगल किले बन्दी पर भी हमला बोल दिया । परिणाम वही हुआ जो सर जॉन चाइल्ड का हुआ और अंग्रेजों को एक ज्वरग्रस्त द्वीप पर शरण लेनी पड़ी । अंग्रेजों ने पुनः समझौते के लिए जॉब चारनॉक को भेजा जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों को 1687 ई0 में सुतनाती लौटने की आज्ञा मिल गयी ।

अंग्रेजों ने पुनः टकराव की नीति को अपनाया और 1687 ई0 में ही चटगॉव पर अधिकार प्राप्त करने के आदेश के साथ लन्दन से कप्तान हीथ के नेतृत्व में एक जलसेना भेजी गयी और 1688 ई0 में अंग्रेजों और मुगलों के बीच युद्ध छिड़ गया । इस युद्ध का परिणाम भी अंग्रेजों की पराजय ही हुआ और टकराव की स्थिति का अन्त 1690 ई0 में औरंगजेब के साथ हुये समझौते से ही समाप्त हो गया। 1690 ई0 में जॉब चारनॉक ने पुनः सुतनाती में एक कोठी की स्थापना की । 1691 ई0 में शाइस्ता खॉं के उत्तराधिकारी इब्राहिम खॉं ने मुगल बादशाह के हुक्म के आधार पर एक फरमान जारी किया[4]। जिसके अनुसार तीन हजार रूपये वार्षिक

1- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 704 ।

2- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 383 ।

3-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 370 ।

4-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 704, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 369 ।

अदायगी की स्थिति में कम्पनी के व्यापार को इस फरमान से काफी लाभ पहुँचा। किन्तु यह नहीं हुआ कि इससे कम्पनी के व्यापारिक हितों और बंगाल के नवाब के हितों में जो टकराव था वह हमेशा के लिए समाप्त हो गया । 1698 ई0 में सूबेदार अजीमुश्शान ने अंग्रेजों को सूतनाती, कलिकाता, और गोविन्दपुर की जमींदारी दे दी जिसके बदले उन्हें केवल 1200/-रूपये पुराने मालिकों को देने पड़े[1] । 1700 ई0 में फोर्ट विलियम की स्थापना हुई जो बंगाल प्रेसीडेन्सी का केन्द्र बन गया । इसका पहला गवर्नर सर चार्ल्स आयर बना[2] ।

1698 ई0 में ही इंगलैण्ड के राजा विलियम तृतीय ने पार्लियामेन्ट के एक अन्य अधिनियम के अन्तर्गत एक और कम्पनी स्थापित की जो इंगलिश कम्पनी ट्रेडिंग इन द ईस्ट के नाम से जानी गयी । इस नयी कम्पनी को किसी भी तरह के विशेषाधिकार बंगाल में प्राप्त होने के कारण पुरानी कम्पनी से प्रतिस्पर्धा में काफी पिछड़ जाना पड़ा और इसी को दूर करने के लिए मुगल दरबार में सर विलियम नॉरिस[3] को इंग्लैण्ड के राजा का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया।परन्तु सर विलियम नॉरिस का यह प्रयास विफल रहा और साथ ही नयी कम्पनी के प्रेसीडेन्ट भी बंगाल में विशेषाधिकार प्राप्त करने के प्रयास में असफल रहे । नयी कम्पनी को व्यापार के अधिकार बंगाल के सूबेदार को 70,000 रूपये की अदायगी पर ही प्राप्त हो सके और वे भी एक निश्चित अवधि के लिए । 1701 ई0 के अन्त में औरंगजेब ने एक फरमान जारी किया जिसमें उसने अपने प्रान्तीय अधिकारियों को आदेश दिया कि वे सभी यूरोपीय व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर कब्जा कर लें।उनकी सारी कम्पनियों को जब्त कर लें । बंगाल में औरंगजेब के इस फरमान का पालन 1702 ई0 के अन्त में ही समाप्त हो सका जब औरंगजेब ने अपने आदेश वापस लिए ।

अब्दुल करीम के अनुसार औरंगजेब द्वारा व्यापार प्रतिबन्ध हटाने के तुरन्त बाद बंगाल में यूरोपीय कम्पनियों को बिना बाधा व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया । परन्तु यह अधिकार कम्पनियों को इस मांग के साथ लौटाया गया कि प्रत्येक व्यापारिक कम्पनी नवाब को पन्द्रह हजार रूपये का भुगतान करें । अब्दुल करीम के अनुसार, नयीं अंग्रेजी कम्पनी ने यह रकम देकर व्यापारिक विशेषाधिकार

1-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 366, बी0 एल0 ग्रोवर एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 7 ।

2-कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 209 ।

3-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 374 ।

प्राप्त किया । जिस समय बंगाल में ये अंग्रेजी कम्पनियाँ अपने अधिकारों को रखने का प्रयास कर रही थी उसी समय इंग्लैण्ड में इन कम्पनियों के मालिक दोनो कम्पनियों के विलय के प्रयास में लगे थे । 1702 ई0 को चार्टर ऑफ यूनियन के द्वारा दोनों कम्पनियों का विलय हो गया और नयी कम्पनी का नाम "दी यूनाईटेड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट्स ऑफ इंगलैण्ड ट्रेडिंग टू दी ईस्ट इण्डिया" पड़ा[1] । यह विलय 1708-1709 ई0 में गोडोलफिन के फैसले के अनुसार कार्यरूप में परिणत हुआ । 17 वीं शताब्दी के अन्त तक अंग्रेज अपनी आन्तरिक एवं बाह्य स्थिति मजबूत बना चुके थे । अब इन लोगों ने भारत में अन्य व्यापारिक कम्पनियों एवं मुगलों के विरोधियों के साथ संघर्ष एवं मैत्री की नीति अपनायी । इनका सबसे जबरदस्त मुकाबला फ्रांसीसियों के साथ हुआ जिससे फ्रांसीसी पराजित हुये और भारत के व्यापार एवं राजनीति पर अंग्रेजों ने अधिकार जमा लिया[2] ।

4- मुगल साम्राज्य में फ्रांसीसी व्यापारी -

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से जो यूरोपीय यहाँ आये उनमें सबसे बाद में फ्रांसीसी आये । फ्रांस को अपनी भौगोलिक, धार्मिक, तथा आर्थिक परिस्थितियों के वशीभूत होकर पूर्वी देशों से व्यापार करने का मौका बहुत देर से मिला । फ्रांस की आन्तरिक राजनीति अव्यवस्था और योग्य साहसी तथा कर्मठ व्यापारियों के अभाव के चलते फ्रांस भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने की होड़ में पीछे छूट गया। परन्तु अन्य व्यापारिक कम्पनियों की प्रगति देखकर फ्रांसीसियों के बीच भी भारत से व्यापार करने की लालशा जाग उठी ।

विदेशों से व्यापार करने के उद्देश्य से फ्रांस में 1611 ई0 में एक कम्पनी की स्थापना की गयी लेकिन इस कम्पनी का उद्देश्य भारत से व्यापार करना न होकर मेडागास्कर में एक उपनिवेश की स्थापना करना था । दुर्भाग्यवश इस उद्देश्य की पूर्ति में भी यह कम्पनी असफल रही । 1642 ई0 में फ्रांस के मन्त्री रिशलू ने पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से तीन अन्य कम्पनियाँ स्थापित की जो सफल[3] नहीं हो सकी । तत्पश्चात 1664 ई0 में लुई चौदहवें के शासनकाल में उसके मन्त्री कोलबर्ट के अनुरोध पर "कम्पनी द-इंद ओरियन्ताल" की स्थापना हुई। यद्यपि कम्पनी का निर्माण राज्य द्वारा हुआ और उसे राज्य से ही वित्त प्राप्त होता

1-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 706 ।

2-कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 209 ।

3-हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 717 ।

था । 1668 ई0 में फ्रांसीसियों ने सूरत में पहली कोठी[3] की स्थापना की । 1669 ई0 में ये मुसलीपट्टम पहुँचे । 1672 ई0 में एडमिरल हे ने गोलकुण्डा के सुल्तान और डचों को हटाकर सेंन्ट थोमी प्राप्त किया । 1673 ई0 में फ्रैकों मार्टिन और बेलांगर द लेस्पिने ने वालिकोंडापुरम के मुस्लिम सूबेदार से एक छोटा गाँव "पुर्दुचरी" प्राप्त किया । जिससे पाण्डिचेरी की नींव पड़ी । 1674 ई0 में फ्रैको मार्टिन इस बस्ती का प्रमुख हुआ परन्तु यूरोप में डचों और फ्रांमीमियों के बीच युद्ध छिड़ जाने से इसका असर भारत पर भी पड़ा । अंग्रेज समर्थित डचों ने 1693 ई0 में पाण्डिचेरी ले ली। 1697 ई0 में रिजविक की सन्धि द्वारा इसे वापस लौटा दिया गया । मार्टिन ने पुनः इसकी खोयी हुई प्रतिष्ठा और समृद्धि को लौटाया ।

1706 ई0 में मार्टिन की मृत्यु के समय इसकी जनसंख्या करीब 40,000 थी । इस समय कलकत्ता की जनसंख्या 22,000 थी । मार्टिन की मृत्यु के बाद अन्य जगहों पर फ्रांसीसी प्रभाव समाप्त होने लगा । आय के श्रोत कम होते गये। 1720 ई0 तक इतने बुरे दिन आ गये कि ये अपने 'अधिकार पत्र' दूसरों को बेचने लगे । 1707 ई0 से 1720 ई0 तक पाण्डिचेरी के पाँच गवर्नर हुए परन्तु किसी ने मार्टिन की शक्तिशाली और बुद्धिमतापूर्ण नीति का अनुसरण नहीं किया । जून 1720 ई0 में कम्पनी का "इण्डीज की चिरस्थायी कम्पनी" के रूप में पुनः निर्माण हुआ । 1720 ई0 से 1742 ई0 के बीच पाण्डिचेरी के गवर्नरों लिनों और ड्यूमा के बुद्धिमतापूर्ण प्रशासन से सुख और समृद्धि लौट आयी । फलतः कर्नाटक पर फ्रांसीसियों का प्रभाव और अधिक बढ़ गया तथा पाण्डिचेरी पर इनका पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया । तम्बाकू के व्यापार पर कम्पनी का एकाधिपत्य हो गया । फ्रांसीसियों ने धीरे-धीरे माही, मॉरीशस, तथा कारिकल पर भी कब्जा जमा लिया[1]।

अंग्रेजों की तरह फ्रांसीसियों ने भी उग्रगामी नीति अपनायी तथा भारत की राजनीति अव्यवस्था से लाभ उठाकर भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने की योजना बनायी । इसका श्रेय पाण्डिचेरी के तत्कालीन फ्रांसीसी गवर्नर डुप्ले को दिया जा

1-कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ0 210, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 717 ।

सकता है । इसी की नीति का परिणाम था, आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वन्दिता और कर्नाटक के तीन युद्ध, जिनसे फ्रांसीसी पराजित हो गये और अंग्रेजों की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी ।

औरंगजेब की यूरोपीय व्यापारियों के प्रति नीति -

यूरोपीय गतिविधियों के कारण भारतीय वस्तुओं के विक्रय के परिमाण में वृद्धि हुयी कुछ वस्तुओं के उत्पादको को लाभ हुआ जैसे नील, कपास, वस्त्र, रेशम, शोरा, मसाले, इत्यादि । समान ढुलाई में लगे लोगों को काम मिले| भारतीय उत्पादकों के सामान पश्चिम यूरोप के बाजारों में बड़ी मात्रा में बिकने लगे । जहाज निर्माण एवं भारतीय जहाज स्वामियों के कारोबार पर बुरा असर पड़ा[1]। औरंगजेब के समय जब कुछ जहाजें लूट ली गयी तो यह सुनकर वह बहुत क्रुद्ध हुआ किन्तु औरंगजेब विचलित होने वाला सम्राट नहीं था । औरंगजेब चाहता था कि तीर्थ-यात्रियों को लेकर मक्का जाने वाले जहाजों की सुरक्षा के लिए यूरोपीय युद्ध-पोतों को उनके साथ भेजे जाने का उचित प्रबन्ध हो जाय । यूरोपीय व्यापार पर रोक लगाने में भी उसका यही उद्देश्य था कि यूरोपियों को दबाकर वह कम खर्च में अपना काम सफलतापूर्वक कर सकें ।

डच लोगों ने औरंगजेब के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि उनसे किसी तरह की चुंगी या कर न लिया जाय और सम्पूर्ण साम्राज्य में व्यापार करने का एकाधिकार उन्हें दे दिया जाय तो वे भारतीय सागरों से सारे समुद्री डाकुओं को मार भगायेंगे साथ ही अरब जाने वाले तीर्थ-यात्रियों की सुरक्षा का भार भी उठा लेंगे[2] किन्तु औरंगजेब ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । एनस्ले ने भी औरंगजेब को एक पत्र लिखा कि यदि मुगल साम्राज्य अंग्रेजों को प्रति वर्ष चार लाख रूपये दे तो वे अरब सागर में से गुजरने वाले भारतीय जहाजों की सुरक्षा के लिए उनके साथ अपने युद्ध पोत भेज देंगे या उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी उठा लेंगे । औरंगजेब ने अंग्रेजों द्वारा मांगे गये रूपये की रकम कम करने के लिए कहा । एनस्ले तैयार हो गया और सुरक्षार्थ जहाज देने के लिए प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया[3] । 27 जून 1696 ई0 को अंग्रेज कैदी छोड़ दिये गये ।

1-डब्लू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृ0 300 ।

2-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 372 ।

3-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 372-373 ।

अंग्रेज अमीरों के एक दल ने 1696 ई0 में 'एडवेंचर' नामक एक जहाज तैयार कर लिया । फ्रांसीसियों से लड़ने के बाद हिन्दमहासागर के समस्त समुद्री डाकुओं को मार-भगाकर उनका नामोनिशान मिटाने का काम 'एडवेंचर' जहाज को सौंपा । इस जहाज का कप्तान विलियम किड था । किड 1697 ई0 में कालीकट पहुँच गया। स्वयं समुद्री डाकू[1] बन बैठा । उसकी इस सफलता से अन्य कई उपद्रवी अंग्रेज भी उसके दल में आ गये ।

1698ई0 में किड ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कई जहाजों पर अधिकार कर लिया । मुगल साम्राज्य के प्रमुख अमीर मुखलिस खाँ के जहाज "कैदा मर्चेन्ट" को भी हथिया लिया । 1698 ई0 में शिहर्स नामक एक डच समुद्री डाकू ने जिद्दा और सूरत के हसन खाँ नामक व्यापारी के एक अच्छे जहाज पर अधिकार कर लिया, जिस पर कोई 14 लाख रूपये की कीमत का माल लदा हुआ था ।

सूरत के अंग्रेज व्यापारियों का छूट पाना अब असम्भव था । 1698 ई0 को सूरत के मुगल फौजदार ने अंग्रेजों की सूरत कोठी को घेर लिया । एनस्ले को अन्तिम आदेश दिया कि औरंगजेब के आदेशानुसार यदि अंग्रेज शाही जहाजों की समुद्री डाकुओं से सुरक्षा नहीं करते है तो दस दिन के अन्दर देश को छोड़कर चले जाये । डचों और फ्रांसीसियों के साथ भी इसी तरह का बर्ताव किया गया । औरंगजेब का आदेश सूरत पहुँचा कि समुद्री डकैती से होने वाली हानि का उत्तरदायित्व अंग्रेज, डच, और फ्रांसीसी तीनों पर माना जायेगा और तीनों राष्ट्रों के व्यापारी हर्जाने के रूप में 14 लाख रूपया दें ।

अंग्रेज डच और फ्रांसीसी[2] तीनों ने साथ मिलकर समुद्री डाकुओं का दमन करना स्वीकार किया । तीनों ने मिलकर भविष्य में होने वाले हानि का हर्जाना भरने का वचन दिया तथा प्रतिज्ञा पत्र पर तीनों ने हस्ताक्षर किया । यह समझौता औरंगजेब के पास पहुँचा तो औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य में व्यापार करने पर यूरोपीयों पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटा लिया और सूरत के फौजदार को लिखा कि इस मामले को वह अपने ढंग से तय कर ले ।

1699 ई0 में सूरत में एक नयी अंग्रेजी कम्पनी की स्थापना की गयी ।

1-एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 384 ।

2- हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 2, पृ0 718 ।

सर निकोलस बेट इसका अध्यक्ष बना । इस कम्पनी के हित के लिए मामले को सही ढंग से तय करने के लिए सर विलियम नॉरिस को इंग्लैण्ड के बादशाह का राजूदत बनाकर मुगल दरबार में भेजा गया किन्तु इस राजदूत से कम्पनी के लिए लाभदायक विशेषाधिकार नहीं प्राप्त हुआ[1] । औरंगजेब ने नॉरिस से मांग की कि भारतीय सागरों से समुद्री डाकुओं का अस्तित्व मिटा दें किन्तु नॉरिस के लिए यह असम्भव कार्य था ।

1701 ई0 में बेट ने षडयन्त्र द्वारा सर जॉन गायर को अमानत खॉं द्वारा कैद करवा दिया । छः वर्ष तक गायर कैद में रहा । 1703 ई0 में समुद्री डाकुओं ने सूरत के जहाज को सूरत के पास पकड़ लिया । इस घटना के कारण सूरत के फौजदार इतबार खॉं ने यूरापीय कम्पनियों के सारे भारतीय दलालो को पकड़ लिया और अंग्रेजी कम्पनी के दलालों से तीन लाख रूपया ले लिया । डच कम्पनी के दलालों से तीन लाख रूपया लिया । यह समाचार सुनकर औरंगजेब ने इतबार खॉं की निन्दा की और 1699 ई0 के समझौते को रद्द कर दिया ।

अतः यूरोपियों के लिए यहॉं किसी प्रकार की शान्ति नहीं थी । जो शाही आदेश जुलाई 1704 ई0 में प्राप्त हुआ उसके अनुसार भी सर जॉन गायर और उसकी परिषद के सभी सदस्य कैद रहे । मक्का से लौटने वाले भारतीय तीर्थयात्रियों को वापस लाने वाले एक धनपूर्ण जहाज पर अधिकार कर डच लोगों ने मुगल साम्राज्य से प्रतिशोध लिया । अन्त में औरंगजेब ने अनुभव किया कि समुद्र पर कुछ भी कर सकना उनके लिए सर्वथा असम्भव था । अपनी प्रजा को मक्का की तीर्थ यात्रा कर सकने का अवसर देने के लिए यूरोपीयों से बिना किसी शर्त के समझौता करना अनविार्य हो गया था । उसने नेताबत खॉं को आदेश दिया कि जिस किसी भी प्रकार हो सके डचों द्वारा कैद किये गये तीर्थयात्रियों को, जिनमें नूर-उल-हक तथा फख्र-उल-इस्लाम नामक दो साधु भी थे, वह छुड़ावे । समुद्री डकैतियों से होने वाले नुकसान का हर्जाना भरने सम्बन्धी प्रतिज्ञा-पत्र भविष्य में यूरोपियों से लिखवाने की मनाही भी औरंगजेब ने कर दी । इरफान हबीब ने लिखा है कि भारत में यूरोपीय व्यापार का प्रभाव घरेलू अर्थव्यवस्था पर पूरी तरह से 18 वीं शताब्दी के प्रथम अर्धांश में महसूस किया जाने लगा था[2] ।

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 374 ।

2- तपनराय चौधरी, इरफान हबीब, दि कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-1, पृ0 406 ।

अध्याय ४

उपसंहार

औरंगजेब के शासन काल की आर्थिक नीति की विडम्बना यह थी कि वह उसकी साम्राज्यवादी नीति की भेंट चढ़ गयी । साम्राज्य के सारे आर्थिक संसाधन साम्राज्यवादिता के ऊपर खर्च हो गया । जनकल्याण के कार्य के लिए सम्राट ने अधिक समय नहीं दिया। यद्यपि वह इस ओर से सर्वथा विमुख भी नहीं था । मीरात-ए-आलम, में उसकी न्यायप्रियता का उल्लेख आया है[1]। खाफी खाँ भी औरंगजेब को न्यायी शासक मानता है । जब इस ओर औरंगजेब का ध्यान गया तब वह स्वयं अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था । अपने पुत्रों को लिखे गये पत्र में[2] अन्तिम समय में औरंगजेब ने जो पश्चाताप भरे शब्द व्यक्त किये उसमें इसकी प्रतिध्वनि साफ सुनाई पड़ती है । आजम एवं कामबख्श को लिखे गये पत्र इस प्रकार थे-

<u>आजम को लिखा गया पत्र</u>

तुम्हें शुभ शान्ति प्राप्त हो ! बुढ़ापा आ गया है और दुर्बलता बहुत बढ़ गयी है, मेरे अंग-प्रत्यंग शक्तिहीन होते जा रहे है । मैं अकेला ही आया था और एकाकी ही जा रहा हूँ । मैं नही जानता कि मैं कौन हूँ और अब तक क्या करता रहा हूँ । पूजा-प्रार्थना में बीते समय के अतिरिक्त जो भी दिन मैने यहाँ बिताए है उनसे मुझे खेद के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, न मैंने साम्राज्य पर ही कोई शासन किया और न मै अपनी प्रजा का पालन ही कर पाया[3]। ऐसा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही बीत गया । मेरा स्वामी सदैव मेरे घर में विद्यमान रहा है, किन्तु मेरी अन्धी आँखे उसके वैभव को नहीं देख सकती है जीवन स्थायी नहीं होता है। बीते दिनों का कोई चिन्ह भी नहीं रह जाता है और भविष्य से कोई भी आशा नहीं की जा सकती है ।

1- तपनराय चौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1, पृ0 175, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, पृ0 223, रूक्काते-आलमगीरी, अनुवादक जे0 एच0 विलमोरिया में उद्धृत, पृ0 29 ।

2- रूक्काते-आलमगीरी, सम्राट औरंगजेब-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 147 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 345-46, रूक्काते-आलमगीरी, अनुवादक जे0 एच0 विलमोरिया, पृ0 71, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 378 ।

"मेरा ज्वर उतर गया है, और पीछे रह गये है केवल चमड़ी और यह ऊपरी वेश-भूषा, मेरा पुत्र कामबख्श, जो बीजापुर गया है, मेरे पास ही है और तुम तो उससे भी अधिक निकट हो । मेरे पुत्रों में से प्यारा शाहआलम ही सबसे अधिक दूर है। उस परमात्मा की ही इच्छानुसार पौत्र मुहम्मद अजीम हिन्दुस्तान के पास तक आ पहुँचा है।

मेरे सारे सैनिक भी मेरे समान ही असहाय हतबुद्धि और घबराये हुए हैं। अपने प्रभु को छोड़ देने के कारण ही मै पारे के समान चंचल और उद्विग्न हूँ । वे यह नहीं सोचते कि हमारा स्वामी परमपिता साथ है । मै अपने साथ कुछ भी नहीं लाया था, और अब अपने पापों का भार मै अपने साथ ले जा रहा हूँ । मै नहीं जानता हूँ कि मुझे क्या दण्ड मिलने वाला है यद्यपि मुझे उसकी उदारता और दया की पूरी-पूरी आशा है फिर भी अपने किये हुए कर्मो के कारण ही यह चिन्ता मुझे नहीं छोड़ती है। जब मै अपने आप से ही विदा हो रहा हूँ तब दूसरा और कौन मेरे साथ रहेगा[1]।"

"हो कैसा भी वहाँ तूफान
डाल रहा हूँ जल में अपनी नौका मै अनजान[2]।"

"यद्यपि वह परम पालक अपने दासों को बचाता ही रहेगा, फिर भी बाहरी दुनिया की दृष्टि से तो मेरे पुत्रों का यह कर्तब्य है कि उसके जीव और मुसलमान व्यर्थ ही नहीं मारे जावें ।"

"मेरे पौत्र बहादुर को मेरा अन्तिम आशीर्वाद पहुँचा देना । विदाई के समय मै उसे नहीं देख सका हूँ उससे मिलने की इच्छा रह गयी । जैसा कि दिखायी देता है, बेगम दुःख के मारे संतप्त है, किन्तु ईश्वर सबके हृदयों का स्वामी है । दृष्टि संकुचित हो जाने पर निराशा के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगता ।"

"विदा ! विदा ! अलविदा[3]"

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 346,

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 223, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 378 ।

3- रूक्कात-ए-आलमगीरी, अनुवादक जे0 एच0 विलमोरिया, पृ0 71-72, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 379 ।

<u>कामबख्श के नाम पत्र-</u>

"मेरे पुत्र, मेरे कलेजे ! यद्यपि अपने प्रमुख काल में मैंने ईश्वरेच्छा के प्रति आत्मसमर्पण करने की सलाह दी, और जहाँ तक भी सम्भव हो सका अपनी शक्ति से भी परे तदर्थ प्रयत्न किया, किन्तु ईश्वर को यह मंजूर नहीं था. और किसी ने भी मेरी एक न सुनी । अब मै मर रहा हूँ एवं उस सम्बन्ध में मेरे कुछ भी कहने से कोई लाभ नहीं होगा। जो भी पाप और अपराध मैने किये है, उनका भार मै अपने साथ ही ले जाऊँगा । कैसी विचित्र बात है कि मै अकेला ही आया था और अपने साथ इतना काफिला लिये वापस लौट रहा हूँ । जिस ओर भी मै दृष्टि डालता हूँ, वहाँ उस ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस काफिले का नायक नहीं दिखार्यी पड़ता है । सेना तथा दलानुयायियों की चिन्ता के मारे ही मेरा मष्तिष्क उदास हो गया और इस अन्तिम समय भी उसी की आशंकाएँ मुझे सता रही है।यद्यपि ईश्वर अपने प्राणियों की सुरक्षा का भार उठायेगा. किन्तु साथ ही मेरे पुत्रों और मुसलमानों का भी यह कर्तब्य है जब मेरा शारीरिक बल भरपूर था, तब मै यत्किंचित भी उनकी सुरक्षा नहीं कर सका, और अब तो मै अपने आप की भी देख-रेख नहीं कर सकता हूँ । मेरे अंगों का हिलना-चलना भी बन्द हो गया है।जो साँस निकल जाती है, उसके वापस लौटने की भी कोई आशा नहीं रहती[1]. ऐसी अवस्था में सिवाय प्रार्थना के और मैं कर ही क्या सकता हूँ मेरी बीमारी के समय तुम्हारी माता उदयपुरी ने मेरी सेवा शुश्रुषा की, वह तो मेरे साथ चलने को इच्छुक है । तुम्हें और तुम्हारें बच्चों को मै ईश्वर के भरोसे छोड़ता हूँ । मै तो काँप रहा हूँ । तुमसे मै विदा लेता हूँ, साँसारिक लोग धोखा देते है । उनके ईमानदारी पर विश्वास करके ही कोई काम न करो । संकेतों और लक्षणों द्वारा ही काम किया जाना चाहिए । दाराशिकोह ने ठीक प्रबन्ध नहीं किया था । जिससे वह अपने ध्येय तक पहुँचने में असफल रहा । उसने अपने सैनिकों का वेतन पहले से भी बहुत अधिक बढ़ा दिया था, किन्तु जब आवश्यकता हुई तब उसके प्रति उनकी सेवाएँ दिनों दिन घटती ही गयी । इसी कारण वह दु:खी था। अपनी शतरंजी सीमा के भीतर ही पाँव रखो ।

"जो कुछ भी मुझे कहना था वह यहाँ बता दिया है अब मै विदा लेता हूँ । इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखो कि किसान और प्रजा व्यर्थ ही बरबाद न

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 347, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 223 ।

हो, और मुसलमान न मारे जावें, अन्यथा इस सबका दण्ड मुझे भुगतना पड़ेगा[1]"।

जागीरदारी व्यवस्था का संकट एवं साम्राज्य की दुर्दशा-

मुगल साम्राज्य आर्थिक रूप से अभी भी सुदृढ़ था यह कहना कठिन है। साम्राज्य में विभिन्न वर्ग के लोग थे। इनमें राज्य के आर्थिक नीति की खॉमियों के कारण उत्पादक वर्ग कृषक, शिल्पी, बुनकर, कुटीर उद्योग, में लगे लोग छोटे व्यापारी विपन्नता की स्थिति में थे । सैनिक वर्ग नियमित रूप से वेतन न पाने के कारण असन्तुष्ट एवं प्राय: विपन्न था । जागीरों की नितान्त कमी थी । अनेक मनसबदार जागीर विहीन थे । उनके सैनिक वेतन विहीन हो गये थे । औरंगजेब ने खुद माना था कि जागीर की समस्या "एक अनार सौ बीमार[2]" सी हो गयी ।मराठों को अपनी ओर मिलाने के लिए अधिक संख्या में लोगों को जागीरें दे देना औरंगजेब की भूल थी, न तो मराठे मुगलों के सगे हुये और न पुराने आवंटियों ने अपनी जागीर से बेदखल होना स्वीकार किया । फलतः नवीन जागीर पर कब्जा ही नहीं कर पाये। डा0 जे0 एन0 सरकार ने व्यंग्य करते हुए लिखा है कि यदि किसी को बाल्यकाल में जागीर मिलती थी तो कब्जा करने में इतना समय लग जाता था कि तब तक सफेद बालों वाला बूढ़ा हो जाता था[3]।

अनवरत युद्धों के कारण दक्षिणी भारत में अनेक युद्धों में खेत खलिहान फसल विहीन थे । व्यापारी डर के कारण तितर-बितर हो गये थे । उत्तरी भारत से जो आय दक्षिण पहुँचती थी वह भी अपेक्षाकृत कम होती जा रही थी । साम्राज्य की दृष्टि से आर्थिक परिदृष्टि सन्तोषजनक कदापि नहीं कहा जा सकता है । ऊपर जिन विभिन्न वर्गों की चर्चा की गयी है उनके अतिरिक्त कुछ वर्ग ऐसे थे जो मुगल साम्राज्य के समृद्ध वर्ग के रूप में अभी भी विद्यमान थे लेकिन उनका शासन में आर्थिक सहयोग नहीं था । बड़े व्यापारी, बड़े अमीर, कुलीन, विद्रोहग्रस्त क्षेत्रों के अमीर एवं शासक आदि वर्ग सम्पन्न थे[4] ।

1- रूक्कात-ए-आलमगीरी, अनुवादक जे0 एच0 विलमोरिया पृ0 73-74, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 347-48 ।

2- सतीश चन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत, पृ0 23, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 163, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 206 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 403, सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगलशासन प्रणाली, पृ0 163 ।

4- सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 222 ।

आशय यह है कि मुगल साम्राज्य की आर्थिक दशा खराब हुई थी । भारत गरीब नहीं हुआ था बल्कि मुगल साम्राज्य गरीब हुआ था । आगामी समय में आने वाले विदेशी आक्रान्ताओं नें भारत से खूब धन निचोड़ा फिर भी भारत गरीब नहीं हुआ। अंग्रेजों ने अपना शासन स्थापित कर इसका आर्थिक दोहन किया । यह इस बात का प्रमाण है कि अंग्रेज भारत में इसकी समृद्धि से आकर्षित होकर आये थे। औरंगजेबकालीन आर्थिक इतिहास की स्थिति उसके अविवेकपूर्ण राजनीति एवं नीतियों के कारण थी । साम्राज्य निराशापूर्ण अवस्था में पहुँच गया था । साम्राज्य का राज्य शासन, संस्कृति, आर्थिक जीवन, सैनिक शक्ति और सामाजिक संगठन, सब कुछ बड़ी तीव्र गति से पतन[1] की ओर बढ़ रहा था । पचीस वर्षो के निरन्तर युद्धों में साम्राज्य के जान-माल आदि का भयंकर अपव्यय हुआ । दक्षिण प्रान्त तो पूर्णरूप से बरबाद हो गया । समकालीन इतिहासकार मनूची ने लिखा है "औरंगजेब अहमदनगर को वापस लौट गया, और पीछे उन प्रान्तों के खेतों में वृक्षों और फसलों का नामो-निशान भी नहीं रहा, उनके बजाय सर्वत्र मनुष्यों और पशुओं की हड्डियों के ढेर पड़े थे । हरियाली के स्थान पर सर्वत्र खाली जमीन वीरान पड़ी थी । उनकी सेना में प्रतिवर्ष कुल मिलाकर एक लाख मुनष्य मरते थे, सेना में प्रतिवर्ष मरने वाले पशुओं, वारबरदारी के बैल, ऊँट, हाथियों आदि की संख्या तो तीन लाख से ऊपर पहुँच जाती थी । दक्षिणी प्रान्तों में 1702 ई0 से 1704 ई0 तक निरन्तर महामारी और अकाल बने रहे । इन दो वर्षो में 20 लाख से अधिक प्राणी मरे[2] ।" साम्राज्य की सारी परिस्थिति को आँखों देखने वाला भीमसेन ने लिखा है "पूरे राज्य में सर्वत्र मराठों का पूर्ण प्राधान्य हो गया और उन्होने सारे ही रास्ते रोक दिये । लूटमार करके वे अपना दारिद्रय दूर करते तथा बहुत सा काला धन भी एकत्र कर लेते थे[3]। मैंने सुना है कि वे हर हफ्ते मिठाई और द्रव्य दान कर सम्राट की दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि वह विश्वम्भर है । अनाज की कीमत दिनों दिन बढ़ती ही जा रही थी । शाही पड़ाव में तो विशेष रूप से बहुत अधिक आदमी भूखों ही मर जाते थें । वलपूर्वक अनुचित रूपया वसूल करने के अनेकों अवैध तरीके और कारण वहाँ प्रचलित हो गये थे । सिंहासनारूढ़ होने के समय से ही सम्राट किसी भी नगर

1- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 199 ।

2- मनूची, स्टोरिया डू मोगोर, उदधृत जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 338, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 374 ।

3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग-2, पृ0 240, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 338 ।

में नहीं रहे है, किन्तु इन युद्धों तथा तदर्थ कष्टपूर्ण यात्राएँ करते रहने का ही मार्ग उन्होंने चुना है, जिससे उनके पड़ाव के अनुचरों ने अपने कुटुम्बियों से होने वाले दीर्घकालीन विछोह से क्षुब्ध हो उन्हें भी पड़ाव में ही बुला लिया तथा वे सब तब वहाँ उनके साथ रहने लगे थे । यों एक नई पीढ़ी का जन्म हुआ, वहीं शिशु युवा हुए और युवक बूढ़े हो गये, तथा वृद्धावस्था पार कर आगे देवताओं के उस परलोक की भी उन्होंने तैयारी कर ली, किन्तु फिर भी उन्होंने कभी घर की सूरत नहीं देखी और सदैव यही जाना कि संसार में रहने के लिए डेरे के अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय स्थान नहीं है । जब कभी मराठे किसी स्थान पर आक्रमण करते है तब वहाँ के प्रत्येक परगने से जितना भी वे चाहते है, रूपया ले लेते है और वे अपने घोड़ों को खड़ी फसले खिलाते है या उनसे उन फसलों को रौंदवा देते है । उनका पीछा करती हुई जो भी शाही सेना आती है, उन खेतों के आवाद किये जाने पर ही उसका वहाँ कुछ भी गुजारा हो सकता है । सारी शासन-व्यवस्था विलुप्त हो गयी है । साम्राज्य वीरान हो गया है । रैयत ने खेती करना छोड़ दिया है, जागीरदारों को अपनी जागीरों से एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती है । अपने अधिकारियों को वेतन देने की मराठा शासन की प्रथा भी उठ गयी है । अतएव मराठा राजकर्मचारी चारों ओर लूटमार करके ही अपना पालन करने लगे है, और अपनी लूट से प्राप्त माल का थोड़ा सा ही भाग वे अपने राजा को भी देते है[1]'' ।

औरंगजेब जब दिल्ली के सिंहासन पर वैठा तब मुगल साम्राज्य का वैभव तथा उसकी शक्ति चरम सीमा पर पहुँच चुका था । महान् मुगलों के शाही दरबार की शोभा और प्रताप को देखकर ''फ्रांस की राजधानी के ऐश्वर्य से सुपरिचित आँखें भी चकाचौध हो गयी[2]'' । ऐसे समय औरंगजेब जैसा सुशिक्षित शासक तथा महान सेनानायक समृद्ध साम्राज्य का शासक बना । उसका व्यक्तिगत जीवन साधारण, निष्कलंकित एवं धार्मिकतापूर्ण था । वह स्वस्थ्य एवं पूर्णतया परिपक्व बुद्धि का था। जनसाधारण को यह आशा होने लगी कि औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य गौरव को प्राप्त करेगा[3]।

भारत उपजाऊ देश है।यहाँ पर कड़ी धूप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, द्वारा होने

1- भीमसेन, नुस्ख-ए-दिलकुशा, उद्घृत जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 338-339,

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 397 ।

3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 224,
एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 316 ।

वाली हानि की पूर्ति प्रकृति द्वारा होती रहती है[1] । अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ शान्तिपूर्ण सुव्यवस्था है । यदि यहाँ विदेशी आक्रमण न हो और यहाँ के जीवन में प्रगतिशीलता उत्पन्न हो जाये तो भारत निवासी बड़ी तेजी के साथ सुसमृद्ध और शक्तिशाली बनकर अत्यधिक सांस्कृतिक उन्नति भी कर सकते हैं । अकबर उसके पुत्र और पौत्र के एक शताब्दी तक चलने वाले सुदृढ़ बुद्धिमतापूर्ण शासनों में भारत के अधिकांशतः भाग में पूर्ण शान्ति बनी रही । मुगलों के समय में भारत की समृद्धि और उन्नति बढ़ती ही गयी । पानीपत के द्वितीय युद्ध के पश्चात लगातार मुगलों की विजय से भारतीयों को यह विश्वास हो गया कि मुगल सेना अजेय है तथा मुगल प्रदेश पर आक्रमण करना कठिन कार्य है । भारतीयों के इस विश्वास को शिवाजी ने असत्य प्रमाणित कर दिया । भारत में मुगलों द्वारा स्थापित शान्ति और सुव्यवस्था उनके साम्राज्य को आगे भी बने रहने का एकमात्र कारण हो सकती थी किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के समय शान्ति और सुव्यवस्था भारत में नाम मात्र की भी नहीं रह गयी थी[2] ।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसान ही एकमात्र राष्ट्रीय समृद्धि के कारण होते है । देश की राष्ट्रीय समृद्धि को धरती ही प्रतिवर्ष बढ़ाती है । उद्योग धन्धे वालों को भी अपना माल बेचने के लिए किसानों पर निर्भर रहना पड़ता था। किसानों के पास यदि बेचने हेतु अनाज नहीं रहता था, तो वे दूसरी वस्तुएँ नहीं खरीद सकते थे अतः भारत में किसान के साथ-साथ अन्य लोगों की भी दुर्दशा हो जाती है । फ्रांस की कहावत भारत के लिए अत्यधिक उपयुक्त है । 'किसान दरिद्री तो राज्य भी दरिद्री[3]'' । सार्वजनिक शान्ति और सम्पत्ति की सुरक्षा किसानों के लिए जितनी आवश्यक है, उससे भी कहीं अधिक वे उद्योग-धन्धें वालों तथा व्यापारियों को जरूरी होती है क्योंकि लाभदायक व्यापार क्षेत्र की खोज में उन्हें अपना माल दूर-दूर के देश में ले जाना पड़ता था । किसानों को आवश्यकतानुसार उधार खाते भी खोलने पड़ते थे । किसानों द्वारा पैदा किये गये माल के अतिरिक्त भाग की बचत से ही कुछ सम्पत्ति एकत्र की जा सकती थी । जब कभी किसान की पैदावार घटने लगती थी या अपनी आमदनी में से कुछ बचाकर रखने के लिए किसान को

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 282 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 287 ।

3- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 398, एल0 पी0 शर्मा, मुगल कालीन भारत, पृ0 368 ।

कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था तब राष्ट्रीय मूलधन में वृद्धि होना भी बन्द हो जाता था और इससे देश की आर्थिक स्थिति को गहरा धक्का लगता था । सार्वजनिक अशान्ति अव्यवस्था तथा असुरक्षा की परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने से भारत में जो देशव्यापी तथा दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता था[1] यह औरंगजेब के शासन काल में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है । उत्पादन के तौर तरीको में कोई सुधार या विकास नहीं हुआ । इरफान हबीब ने ठीक ही लिखा है कि औद्योगिक क्रान्ति का कोई लक्षण मुगल अर्थव्यवस्था में दिखायी नहीं पड़ता[2] । दक्षिण में 25 वर्ष तक औरंगजेब के युद्ध चलते रहे जिससे साम्राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी । इसका बहुत समय तक देश पर भयंकर प्रभाव बना रहा । शाही सेना के चढ़ाई से प्रदेशों के पेड़ और घास बिल्कुल ही बरबाद हो गये । शाही सेना में 1,70,000 सैनिक थे। उनके साथ पड़ाव के नौकरों की संख्या दस गुनी हो जाती थी। इससे जहाँ शाही सेना आक्रमण करती, वहाँ का फसल, खेत आदि खराब हो जाता था । मराठे आक्रमणकारी खड़ी फसलें अपने घोड़ों को खिला देते थे तथा लूटमार के बाद मकान और पीछे छोड़ी जानेवाली सारी सम्पत्ति को वे जला देते थे । अपनी अन्तिम चढ़ाई के बाद 1705 ई0 में जब औरंगजेब वापस लौटा तब तक सारा देश बरबाद होकर पूर्णतया वीरान हो चुका था । एस0 आर0 शर्मा द्वारा उद्‌धृत है कि "उन प्रान्तों के खेतों मे न तो फसलें रही थी और न कोई वृक्ष ही, उनके स्थान पर वहाँ सभी तरफ मनुष्यों और घोड़ों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं[3]" । इस प्रदेश में दूर-दूर तक के जंगलों के बिल्कुल ही कट जाने से वहाँ की खेती पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा । निरन्तर युद्ध होने के कारण साम्राज्य का कोष बिल्कुल ही खाली हो गया तथा वहाँ के नागरिक दरिद्र हो गये । अत: धन का इतना अभाव हो गया था कि बहुत समय के बाद भी मकान एवं सड़कों की मरम्मत नहीं हो सकी ।

साधारण मजदूरों को अचानक बेगार और भूख की व्यथा का सामना करना पड़ता था । महामारी[4] आदि भयंकर बीमारियाँ भी इन्हें पीड़ित करती थी । दक्षिण

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 398-399, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 287 ।

2- तपनराय चौधरी, इरफान हबीब, द कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-1, पृ0 306 ।

3- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 374 ।

4- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 400, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 368 ।

की इन लड़ाइयों के कारण प्रतिवर्ष एक लाख मनुष्य तथा हाथी घोड़, ऊँट, बैल, आदि मिलाकर तीन लाख जानवर मरते थे । गोलकुण्डा घेरे के समय 1687 ई0 में अकाल पड़ा । "हैदराबाद नगर के घर, नदियाँ और मैदान, सब जगह मुर्दे भर गये । शाही पड़ाव में भी यही हालत थी । 77 कोसों तक मुर्दों के ढेर ही दिखायी पड़ते थे । निरन्तर बरसात से उन शवों का माँस और चमड़ी गल गयी । कुछ महीनों के बाद जब बरसात का अन्त हुआ तब हड्डियों के वे ढेर दूर से हिमाच्छादित पहाड़ियों के समान दिखायी पड़ते थे[1]" । जिन प्रदेशों में शान्ति और समृद्धि बनी हुई थी वहाँ भी ऐसी बरबादी होने लगी । भीमसेन पूर्वी कर्नाटक के विषय में लिखता है- "बीजापुर, गोलकुण्डा, तैलंग के शासन के समय इस प्रदेश के बहुत से भागों में खेती होती थी, किन्तु शाही सेनाओं के आते-जाते रहने के कारण वहाँ के लोगों को अब जो कठिनाईयाँ तथा अत्याचार सहन करने पड़ उनके फलस्वरूप वहाँ के अनेकों स्थान बिल्कुल ही उजड़ गये हैं[2] ।" यही हालत बरार की भी थी ।

1688 ई0 में बीजापुर में भयंकर महामारी फैली इसमें एक महीने में एक लाख स्त्री-पुरूष मर गये । सूरत के अंग्रेज व्यापारियों के विवरणों में 1694 ई0 तथा 1696 ई0 में सारे पश्चिमी भारत में ऐसी घातक महामारियों के फैलने का वर्णन मिलता है । 1696 ई0 में 15,000 स्त्री-पुरूष मरे । एक पीढ़ी तक युद्ध की परिस्थितियाँ विद्यमान रही, जिससे जन-साधारण के पास कोई सम्पत्ति नहीं बची और किसी संकट का सामना करने की शक्ति भी नहीं रही, जो कुछ पैदा किया था वो सब लूट लिया गया । जब कभी अकाल अथवा अनावृष्टि हुई [3] तब किसान और भूमिहीन मजदूर सभी मक्खियों की तरह मरने लगते थे । शाही पड़ाव में धान्य आदि वस्तुओं का प्रतिदिन अभाव रहता था । वह अकाल तक की स्थिति में पहुँच जाते थे ।

भारत के कई भागों में खेती कर सकने के लिए आवश्यक शान्ति और सुरक्षा के न रहने के कारण किसान भूखों मरने लगे । अन्ततः क्षुब्ध होकर अपना

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 283 ।
2- भीमसेन, नुस्ख-ए-दिलकुशाँ, उद्घृत जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 400 ।
3- मजुमदार, रायचौभरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 282,
एस0 आर0 शर्मा0 भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 390 ।

पेट भरने के लिए रास्ते में लूटने व डाका डालने लगे । दक्षिण के किसान घोड़े और अस्त्र के साथ आक्रमणकारी मराठा का साथ देने लगे । आक्रमणकारियों के स्थान-स्थान पर दल बनने लगे । जिससे अनेक गाँव निवासी इस धन्धे में लग गये और उनमें से वीर साहसी लोगों को यश और धन कमाने का अवसर मिलने लगा। इन 25 वर्षों में व्यापार बिल्कुल ही बन्द हो गया था । नर्मदा के दक्षिण में आगे जाने के लिए शक्तिशाली सैनिकों का दल होना आवश्यक हो गया । नर्मदा से दक्षिण के शाही मार्गो पर होने वाले मराठों के उपद्रवों के कारण शाही डाक तथा सम्राट के भोजन के लिए भेजे जाने वाले फलों के टोकरे भी कई बार एक सप्ताह तक नर्मदा के उत्तरी किनारे पर ही रूके रहते थे ।

जिन प्रान्तों में बंगाल के समान कोई युद्ध नहीं हो रहा था, केन्द्रीय शासन में कमजोरी आ जाने के कारण, प्रान्तीय सूबेदार व्यापारियों से उनका समान बहुत कम दामों में जबरदस्ती खरीद कर उसे अधिक से अधिक दामों में बेचकर पैसा कमाते थे । उद्योग-धन्धे वाले कारीगरों तथा व्यापारियों से भी वे शाही निषेध करों को भी वसूल करते थे । इस प्रकार भारत में भयंकर संकट का प्रारम्भ आर्थिक अभाव से हुआ। इससे दिनों-दिन 'राष्ट्रीय सम्पत्ति[1]' घटने लगी और कारीगरों की दक्षता में भी कमी होने लगी, जिससे सांस्कृतिक स्तर नीचे गिरने लगा । देश के कई बड़े भागों में कला संस्कृति विलुप्त हो गयी ।

मुगल सैनिक फसलों को रौंदते हुए निकलते थे । किसानों के इस नुकसान की उचित पूर्ति हेतु सम्राट ने विशेष अधिकारियों का एक दल नियुक्त किया था। किन्तु धन अभाव के कारण इस शाही आदेश का पालन न हो सका । गरीब किसान शाही सेना के पीछे-पीछे चलते थ, जिन पर शाही सेना सबसे अधिक अत्याचार करता था । शाही सेना को अपने ऊँट किराये पर देने वाले बलूची और काम धन्धे की खोज में रहने वाले बेकार अफगान ग्रामीणों को बहुत पीटते थे और उनको लूटते थे । धान का व्यापार करने वाले घुमक्कड़ बंजारे अनाज से लदे हुये बैल अपने साथ लेकर चलते थे । बंजारों के ये दल बहुत शक्तिशाली थे । ये रास्ते में लोगों को लूट लेते थे, खेतों में खड़ी फसलों पर अपने घोड़ों को चरा देते थे किन्तु इन्हे दण्ड नहीं दिया जाता था । मराठा सैनिकों के साथ पिण्डारियों के भी दल चलने

1- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 367, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 287, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 401-402,

लगे । गाँव वालों को जागीरदारों एवं गुमाश्तों[1] के आपसी झगड़ों का भार भी उठाना पड़ता था । लगान के बाकी रकम को वसूल करने के बहाने जागीरदार का गुमाश्ता जो कुछ भी हो सकता था, जबरदस्ती लेने का प्रयत्न करता था । तहसीलदार भी अधमरे किसानों से रूपये वसूल करने में जुट जाता था।

1679 ई0 में मारवाड़ राज्य पर अधिकार करने के लिए उसने जो युद्ध प्रारम्भ किया, वह उसके शासनकाल के अन्त तक लगातार चलता ही गया । अपने शासनकाल की एकत्रित बचत 1679 ई0 में हिन्दुओं पर लगाये गये नये जजिया[2] कर से होने वाली नयी आमदनी तथा आगरा और दिल्ली में पीढ़ियों संचित सारी सम्पत्ति को भी कुछ वर्षो में औरंगजेब ने खर्च कर डाला ।

इस प्रकार साम्राज्य का अन्तिम संचित कोष भी समाप्त हो गया । यही कारण है कि शासकीय सत्ता का दिवाला निकल गया । सैनिकों तथा शासकीय अधिकारियों को तीन वर्ष से वेतन नहीं मिला, जिसके कारण भूखों मरने की नौबत आ गयी । ये लोग कभी दरबार में उपद्रव करते, तो कभी सेनानायक व दीवान को गालियाँ देकर मार-पीट करते । जागीर सम्बन्धी हुक्म जारी करने के बाद भी कई बार बरसों तक पालन नहीं होता था । जागीर दिये जाने के लिए हुक्म होने के बाद भी इतनी देरी हो जाती थी कि कहा जाता था, तब तक एक बालक सफेद बालों वाला बूढ़ा हो जाता था[3] । किलेदार को घूस देकर मराठा के छोटे से किले पर अधिकार करने में 45,000 नकद खर्चा हो जाता था किन्तु औरंगजेब हठपूर्वक इस प्रकार का व्यय करके मराठा किलों पर अधिकार करने में लगा रहा । अन्त में दक्षिण में लड़ने वाली मुगल सेना का उत्साह और हिम्मत बिल्कुल ही टूट गया। इस निरर्थक युद्ध से सैनिक हैरान हो गये किन्तु फिर भी औरंगजेब न तो किसी के विरोध की ओर ध्यान देता था और न किसी की सलाह सुनता था ।

1- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 287,
राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज, एवं संस्कृति, पृ0 153 ।

2- एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य पृ0 328-29,
एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 247 ।

3- सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 23, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 163 ।

दक्षिण में निरन्तर चलने वाले युद्ध[1] का उत्तरी भारत की स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा। उत्तर के सुव्यवस्थित शान्तिपूर्ण समृद्ध प्रान्त से पुरूष, यहाँ की संचित सम्पत्ति तथा सुयोग्य व्यक्ति दक्षिण चले गये । उत्तर के श्रेष्ठ सैनिक, सर्वोच्च अधिकारी और यहाँ एकत्रित सारी आमदनी दक्षिण भेज दी गयी । इन सूबों का शासन निम्नकोटि के अधिकारी चलाने लगे । इनके साथ बहुत थोड़ी सेना रहती थी। प्रान्तीय आमदनी इतनी कम रहती थी कि केवल इतने में ही सूबेदार के लिए गौरव बनाये रखना असम्भव था । दक्षिण की भाँति उत्तर में भी उपद्रवी सिर उठाने लगे। इन उत्तरी सूबेदारों की आमदनी पहले ही सही नहीं थी अब वह भी घटने लगी। किसानों को पूर्णतः बरबाद कर देने वाली मुगल जागीरों की वास्तविक शासन व्यवस्था की अपेक्षा साम्राज्य के लिए अधिक हानिकारक वस्तु दूसरी नहीं थी। जागीरदारों[2] एवं गुमाश्तों में जागीर के किसानों का सब कुछ लेने की होड़ सी लग जाती थी । शाही खालसा प्रदेश में भी ऐसा व्यवहार किया जाता था । प्रत्येक तहसीलदार किसानों से सब कुछ चूसने का प्रयत्न करता था ।

मुगल शासन के समक्ष विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी । राजनैतिक उपद्रवों तथा शासन के गलत तरीकों के कारण जागीरों[3] से वसूल होने वाला रूपया दिनो-दिन कम ही होता जा रहा था । आमदनी के लगातार घटने के कारण सूबेदार को विवश होकर अपने पास रखे जाने वाले सैनिकों में बार-बार कमी करनी पड़ती थी । सशस्त्र सैनिकों की संख्या घटने से प्रान्त के उपद्रवी लोग सिर उठाते थे जिससे किसानों की दुर्दशा बढ़ती थी और आमदनी में और अधिक कमी हो जाती थी ।

राजपूत एवं क्षत्रिय जाति का एक मात्र उद्योग युद्ध करना था । जब मुगलों ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अपना शासन स्थापित किया तब पश्चिम में भारतीय सीमा पर होने वाले युद्धों तथा तब के दक्षिण में स्वाधीन रहे प्रदेशों को जीतने में राजपूतों को लगाया गया । औरंगजेब के शासन काल में मुगलों की सैनिक कार्यवाही भारतीय सीमाओं तक ही सीमित हो गयी ।

1-एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 367 ।

2-जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 405, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 325, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 161-163,

3- सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 24, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ0 162-163 ।

औरंगजेब के शासन काल में मध्यकालीन भारतीय सभ्यता के पतन के लक्षण दिखायी पड़े[1] । अकबर और शाहजहाँ के समय बड़े हुए लोगों में स्वतन्त्र विचार की वृद्धि अधिक थी । इनमें अधिक जिम्मेदारी सँभालने और पूरी सूझ-बूझ से काम करने की योग्यता पायी जाती थी । 17 वीं शताब्दी जैस-जैसे बीतते गये वैसे-वैसे पुराने उच्चाधिकारी मरते गये । अब इनकें स्थान पर जो अधिकारी आये उनमें पहले के अधिकारियों जैसी उदारता, क्षमता, एवं हिम्मत नहीं थी । औरंगजेब का अपने लम्बे जीवनकाल में जानकारी तथा अनुभव दिनों-दिन बढ़ता ही गया, जिससे उसके समय की नवयुवा पीढ़ी औरंगजेब की तुलना में बौद्धिक दृष्टि से स्वयं को बहुत हीन व छोटा अनुभव करती थी । औरंगजेब उम्र बढ़ने के साथ हठी हो गया और किसी की सलाह न मानकर अपनी ही मनमानी करता था । सुदूर दक्षिण में चलने वाले निरन्तर युद्धों से उसे अवकाश ही नहीं मिलता था[2] । उच्च वर्गीय समाज की राजसी सभ्यता निरन्तर गिरती ही गयी । सारे भारतीय समाज के बौद्धिक वर्ग भी नीचा होता गया । साहित्यकार फैजी के स्थान पर जफर जतली जैसे अनपढ़ कवि की कृतियों से ही इनका मनोरंजन होता था ।

भारत की निरन्तर बिगड़ती हुई हालत को देखकर भीमसेन और खॉफी खॉं को बहुत ही खेद हैाता था तथा वे अकबर और शाहजहाँ के समय के व्यक्तियों को गुणों और उनके गौरव की ओर बड़ी लालसा भरी दृष्टि से देखते थे । औरंगजेब स्वयं भी भविष्य की आशंकाओं से त्रस्त होकर निराशा के साथ दुःखपूर्वक सिर हिलाता था और अपने मृत्यु के पश्चात पूर्ण सर्वनाश होने की भविष्यवाणी करता था ।

औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम वर्षो एवं उसके उत्तराधिकारियों के समय सुयोग्य व्यक्तियों को कभी पूर्ण प्रोत्साहन नहीं दिया गया और न ही किसी की निजी योग्यता के आधार पर उन्नति की गयी । चापलूसों, बड़े अमीरों, के सम्बन्धियों तथा पुराने अधिकारी वर्ग के घरानों के भाई-बेटों को सन्तुष्ट करने के लिए ही साम्राज्य के विभिन्न पद इन्हें दिये जाते थे । औरंगजेब के शासनकाल में

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 406, सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 25, एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 367 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 406-407 ।

मुसलमानी धर्मान्धता तथा संकीर्ण दृष्टिकोण उत्तराधिकारियों की विलासिता[1] एवं आलस्य के कारण ही साम्राज्य का शासन बरबाद हो गया । यह पतोन्मुख साम्राज्य अपने साथ ही भारतीय जन-समाज को पतन के गहरे खाई में खींच ले गया ।

अमीरों के घरानों में नैतिक पतन के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ने लगे थे[2] । इससे मुगल साम्राज्य को सर्वाधिक हानि पहुँची । 17 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो में पुराने अमीर घरानों के आचार-विचार बहुत ही निन्दनीय हो गये थे। इन घरानों के वंशज बहुत ही निकम्मे एवं अयोग्य थें। निम्न श्रेणी के किसी व्यक्ति को उच्च पद दिया जाता तो ये लोग उनके प्रति ईर्ष्या करने लगते थे और उसकी उन्नति में बाधा डालने का प्रयास किया करते थे ।

मुगल अमीर सर्वाधिक उपजाऊ प्रान्तों में जमीन की पैदावार के सम्पूर्ण अतिरिक्त भाग को अपने निजी भण्डारों में ले जाते थे । इससे इन मुगल अमीरों का रहन-सहन ऐसा ऐश्वर्य एवं सुखपूर्ण हो गया था जिसका ईरान के शाह एवं मध्य एशिया के सुल्तान भी सपना नहीं देख सकते थे । मुगल अमीरों के पुत्रों का नैतिक पतन तेजी हो रहा था । उनमें से अधिकांश शाहआलम एवं कामबख्श जैसे औरंगजेब के पुत्र भी इस हद तक पहुँच गये थे कि इनका कुछ भी सुधार करना सम्भव नहीं रहा । औरंगजेब बराबर इन्हें आदेश देता था परन्तु कोई नहीं सुनता था, जिससे अन्त में निराश होकर उसने कहा- ''लगातार कहते-कहते मै तो पागल हो गया, किन्तु तुममें से किसी ने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया[3]''। औरंगजेब के सारे आदेश और जनता में सदाचार बढ़ाने के लिए नियुक्त अधिकारियों के अनवरत प्रयत्न भी मुगल अमीरों को मदिरा पीने से रोकने में सफल नहीं हुए। समकालीन इतिहासकार मनूची कई अमीरों के आमोद-प्रमोद के विचित्र तरीकों तथा उनकी सर्वथा अनोखी रूचि का उल्लेख करता है । सभी वर्ग और जाति के लोग घोर अन्धविश्वासों में पूरी तरह फँसे हुए थे । दरिद्र और धनवान सभी के जीवन

1- एल० पी० शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 204, मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 241 ।

2- चोपड़ा, पुरी दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक इतिहास, भाग 2, पृ0 133 ।

3- मनूची, स्टोरिया डू मोगोर, पृ0 254-56, 262, जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 409 ।

का प्रत्येक कार्य ज्योतिष के सलाह के बिना नहीं हो सकता था । हिन्दू एवं मुसलमान सभी लोग संतों, पीरों, और फकीरों को पूजते थे और चमत्कार दिखाने, ताबीज देने, जादू-टोना करने तथा अचूक दवा देने के लिए उनसे प्रार्थना करते थे।

भारतीय अमीर जो धनवान होते थ. वे तापें ढालने वाले यूरोपीय मिस्त्रियों, यूरोपीय तोपचियों, तथा कुछ यूरोपीय चिकित्सकों को भी आश्रय देते थे क्योंकि उनकी सफलताप्रद विशेष निपुणता का अपनी आँखों से देखकर उन्हें उनकी योग्यता पर विश्वास हो गया था । यूरोप में बनी हुयी विलास-साधन की वस्तुएँ भी वे बड़ी ही उत्सुकता के साथ खरीदते थे । तथापि किसी भी भारतीय अमीर या विद्वान ने यूरोपीय भाषाओं कला-कौशल अथवा युद्ध विद्या को सीखने का कोई प्रयत्न नहीं किया[2] । 16 वीं एवं 17 वीं शती के मुगल अमीर[3] प्रतिवर्ष लाखों रूपये खर्च कर यूरोप में बनी हुयी सुख-भोग और कला की अनेक वस्तुएँ खरीदते थे । वहाँ जनसाधारण की शिक्षा या सार्वजनिक धन्धे के लिए इन्होने एक भी छापाखाने मंगवाने की कभी नहीं सोची । सम्राट औरंगजेब साम्राज्यवादी युद्धों में व्यस्त था ।

दासों की अधिकता होने के कारण भारतीय समाज का नैतिक और बौद्धिक पतन हो गया । युद्ध के कैदियों तथा हारे हुए घराने के लोग दास बनाये जाते थे । इसके अतिरिक्त अकाल के समय में अपने कर्जे चुकाने के लिए भी बाल-बच्चों को उनके माता-पिता बेच दिया करते थे ।

हकीम वैद्य[1] तथा प्रतिष्ठित पुरोहितों या धर्माधिकारी घरानों को छोड़कर सारे पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग के सभी लोग नौकरी पेशा के थे । व्यापारियों और छोटे-छोटे जमींदारों में ऐसे बहुत से थ जो अपनी धन समृद्धि के हिसाब से मध्यम वर्ग में गिने जाते थे परन्तु विद्या में इनसे वे बहुत पीछे थे और इन्हें साहित्य से भी कोई रूचि नहीं होती थी ।

सरकारी कार्यालयों से काम करवाने के लिए खुले आम विशेष शुल्क या पुरस्कार लेकर कार्य करने की प्रथा थी । इनके अतिरिक्त बड़े से लेकर छोटे तक

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 410-11,

3- सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 5-7,

1- एल0 पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 376 ।

कई अधिकारी घूस लेते थे । औरंगजेब के शासनकाल में ऐसे कई अधिकारी थे जो कभी घूस नहीं लेते थे परन्तु अधिकार प्राप्त व्यक्तियों का भेंट लेने या भेंटे माँगना भी सर्व-साधारण द्वारा मान्य प्रथा थी[1] । जदुनाथ सरकार के अनुसार-"सम्राट की निजी सेवा मे रहने वाले मन्त्रियों और प्रभावशाली दरबारियों को धन एकत्र करने का बहुत स्वर्ण अवसर मिलता था । बादशाह की व्यक्तिगत सेवा के लिए एकान्त में उपस्थित होने के समय प्रार्थियों का निवेदन सम्राट तक पहुँचाने के लिए रूपया लेते थे । अपने से ऊँपर श्रेणी वालों को भेंट के रूप में जो कुछ भी देना पड़ता था, उसे नीचे श्रेणी से वसूल कर लेते थे[2]" । यह दबाव सम्राट से चलकर किसानों तक पहुँच जाता था अन्त में इसका भार भूमि जोतने वाले किसानों तथा व्यापारियों को ही उठाना पड़ता था ।

औरंगजेब की निराशा एवं मृत्युः-

27 अप्रैल 1705 ई0 में वागिनखेड़ा पर अधिकार[3] हो जाने के बाद औरंगजेब ने अपना पड़ाव उठा लिया । औरंगजेब ने अब दक्षिण में कृष्णा नदी के किनारे देवापुर नामक एक शान्त हरे-भरे गाँव में पड़ाव डाला । औरंगजेब की उम्र हिजरी सन् के हिसाब से 90 वर्ष की हो गयी थी। अतः इस तरह कठिन परिश्रम के कारण वह यहाँ बीमार पड़ गया । इससे सारे पड़ाव में निराशा हो गयी । अत्यधिक दर्द के कारण वह[4] बेहोश हो जाता । इस प्रकार उसने 10-12 दिन निकाले, तत्पश्चात उसकी हालत सुधरने लगी, किन्तु कमजोरी बनी रही ।

1- नूरजहाँ का पिता, जहाँगीर का प्रधानमन्त्री बनकर भी बड़ी ही निर्लज्जतापूर्वक भेंटे माँगता था । उसे दक्षिण की सूबेदारी पर बना रहने देने के लिए सम्राट से प्रार्थना करने के हेतु जयसिंह वजीर को 30,000 की थैली भेंट की थी । निम्न श्रेणी के साधारण पद को भी पाने या उस पर बने रहने के लिए उसे शाही दरबार में प्रत्येक को कुछ न कुछ देना पड़ा, जिस पर भीमसेन ने बहुत ही दुःख और अरूचि प्रकट की है । घूस लेकर कई काजी भी बहुत धनी हो गये थे। जिसमें सबसे अधिक बदनाम अब्दुल बहाव था । यही हाल कई सरदारों का भी था ।
जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 411-412 ।

2- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 412,

3- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाव-ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास सप्तम खण्ड, पृ0 272 ।

4- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 339, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 374 ।

23 अक्टूबर 1705 ई0 को देवापुर से पड़ाव उठा लिया और पालकी में बैठकर उत्तर की ओर लौटा । 20 जनवरी 1706 ई0 को अहमदनगर पहुँचा दक्षिण विजय के लिए जिस दिन वह वहाँ से चला था उसक 23 वर्ष बाद वहाँ लौटा । इसी स्थान को उसने अपनी जीवनयात्रा का अन्तिम पड़ाव घोषित किया[1] । औरंगजेब के जीवन का अन्तिम वर्ष दुःखों से पूर्ण रहा । उसने अनुभव किया कि भारत पर न्यायपूर्वक शासन करने के उसके जीवन भर के प्रयत्नों का परिणाम राजनैतिक क्षेत्र में भी पूर्णतया विपरीत हुआ । सम्पूर्ण साम्राज्य में अराजकता व्याप्त हो गयी । अपने वृद्धावस्था में वह अकेला रह गया[2] । सारे अमीर मर गये उसके समय का एक मात्र वजीर असद खाँ ही उसका एक मात्र व्यक्तिगत साथी रह गया था । यह भी औरंगजेब से 5 वर्ष छोटा था। जब वृद्ध सम्राट अपने शाही दरबारियों को देखता तो सभी उसे कम से कम उम्र के व्यक्ति दिखायी पड़ते थे । सबकी दृष्टि में औरंगजेब सांसारिक हर्ष और विषाद तथा मानवीय दुर्बलताओं और करूणा से बहुत ही ऊपर था । साम्राज्य के निरन्तर काम-काज से जब उसे कुछ अवकाश मिलता था तब दो ही व्यक्ति उसके साथ होते थे एक उसकी बेटी जीनत-उल-निसाँ तथा उसकी छोटी पत्नी उदयपुरी बेगम । औरंगजेब के अन्तिम दिनों में उसका गृहस्थ जीवन दुःख और निराशा के अंधकार से पूर्णतया भर गया था ।

औरंगजेब असाधारण वीर साहसी था। इसके अयोग्य उत्तराधिकारियों के पहले के तैमूर घराने के सारे ही वंशजों में व्यक्तिगत वीरता पायी जाती थी। परन्तु औरंगजेब में इस गुण के साथ कई और विशेषताएँ थीं[3] । औरंगजेब में व्यक्तिगत वीरता के साथ ही ठण्डे दिमाग से नाप-तौलकर ही काम करने का स्वाभाविक गुण पाया जाता था । पन्द्रह वर्ष की उम्र में उसने अकेले ही क्रुद्ध हाथी का सामना किया था[4] । 87 वर्ष की अवस्था में वागिनखेड़ा का घेरा लगाने वाले मोर्चों की खाईयों में खड़े होकर इसने निरन्तर अपनी व्यक्तिगत निडरता तथा साहस का परिचय दिया। इसका शान्त आत्मसंयम, संकट में भी उत्साहवर्धक बाते कहना तथा धरमत एवं

1- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 341, एस0 आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 374 ।

2- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 223 ।

3- मजुमदार, रायचौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास भाग 2, पृ0 223-224 ।

4- एस0 आर शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 318 ।

खजुआँ युद्धों में मृत्यु तक की पूर्ण उपेक्षा करना भारतीय इतिहास की सुप्रसिद्ध अमर घटनाएँ है ।

शोध प्रबन्ध की तथ्यात्मक समीक्षा-

औरंगजेव की मृत्यु के अवसर पर साम्राज्य विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त था। जिसका हल उत्तरकालीन मुगल सम्राट न निकाल सके । वे समस्याएँ राजनीतिक, प्रशासकीय, आर्थिक, और सामाजिक, सभी प्रकार की थी । मध्य युग में बादशाह के अतिरिक्त शक्ति के साझीदार दो वर्ग थे, इनमें एक वर्ग जमींदारों का था, जिनका भूमि पर पैतृक अधिकार था और उससे सम्बन्धित कुछ अन्य भी अधिकार थे । उन्हें राजा, राम, ठाकुर, खुत देशमुख, आदि नाम से पुकारा जाता था । वे लगान वसूल करने और शासन में सहायता प्रदान करते थे और उस कार्य के लिए वे अपने साथ सैनिक रखते थे । उनका राज्य में बहुत महत्व था । मुगल बादशाहों ने किसानों से सीधा सम्पर्क स्थापित करके उनकी शक्ति को तोड़ने का प्रयत्न किया था परन्तु असफल रहे थे । इसके विपरीत औरंगजेब और उत्तरकालीन मुगल सम्राटों के समय में उनके प्रभाव और शक्ति में वृद्धि हुई थी । उनसे सबसे बड़ी हानि यह थी कि उन्होने क्षेत्रीय स्वतन्त्रता की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया, जिसका लाभ राज्य के अन्तर्गत दूसरे शक्तिशाली वर्ग ने उठाया । यह दूसरा सामन्त वर्ग था । जिन क्षेत्रीय प्रवृत्तियों को जमींदार वर्ग ने प्रोत्साहन दिया, उसका लाभ सामन्त वर्ग ने अपने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना के लिए किया । सामन्त वर्ग में वे जागीरदार, सूबेदार, राजा आदि आते थे, जिन्हें बादशाह की ओर से बड़ी-बड़ी जागीरें दी गयी थीं, महत्वपूर्ण मनसब और पद दिये गये थे । जो विभिन्न प्रशासकीय कार्य करते थे, राजपूत-शासक, प्रान्तीय-सूबेदार बड़े और छोटे मनसबदार आदि इस वर्ग में आते थे। राज्य में उनका बहुत प्रभाव था। यहाँ तक कि मुगल शासन को सामन्तों का शासन भी पुकारा गया। सामन्त वर्ग धर्म, जाति, जन्म स्थान, आदि के आधार पर विभिन्न गुटों में बँटा हुआ था और उनमें से प्रत्येक गुट अधिकतम राजनीतिक सत्ता को अपने अधिकार में रखने के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करता था । सामन्तों के गुटों की पारस्परिक ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा ने दुर्वल उत्तरकालीन मुगल बादशाहों के समय में बादशाह की शक्ति और सम्मान को कम किया और साम्राज्य के विघटन में भाग लिया । इस प्रकार जमींदारों की क्षेत्रीय स्वतन्त्रता की भावना और सामन्तों के गुटों की राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा ने साम्राज्य के विघटन में भाग लिया।

औरंगजेब के समय में जाटों सिखों और मराठों ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, और राजनीतिक, आदि विभिन्न कारणों से मुगल साम्राज्य का विरोध किया। उनमें से किसी का भी विरोध बहुत सफल नहीं हुआ । परन्तु उनमें से प्रत्येक ने अपने क्षेंत्र की भविष्य की राजनीति को गम्भीरता से प्रभावित किया । प्रत्येक शक्ति अपने-अपने क्षेंत्र में मुगल साम्राज्य को चुनौती देती रही जिससे औरंगजेब को गम्भीर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा । औरंगजेब ने राजपूतों को असन्तुष्ट कर दिया था और उनके शासक मुगल साम्राज्य से संघर्ष कर रहे थे । औरंगजेब उन्हें दवा नहीं सका । औरंगजेब के समय में मराठों ने भी मुगल साम्राज्य का विरोध किया । आरम्भ में उनका उद्देश्य केवल महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता मात्र था, परन्तु अपनी शक्ति में वृद्धि हो जाने और मुगल साम्राज्य के दुर्वल हो जाने पर उन्होंने सम्पूर्ण साम्राज्य से 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' एकत्रित करने की माँग की । मराठों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करना आरम्भ किया । इस प्रकार राजपूतों के संघर्ष और मराठों की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं ने औरंगजेब को कठिनाइयों में डाल दिया ।

इसके अतिरिक्त औरंगजेब के समय साम्राज्य में गम्भीर प्रशासकीय और आर्थिक संकट उपस्थित हो गये थे । अमीरों की संख्या और उनके मनसबों में वृद्धि होती चली गयी थी। उसके अनुकूल उन्हें जागीरें भी दी गयी थी परन्तु धीरे-धीरे स्थिति यह बन गयी कि जागीर के रूप में देने के लिए भूमि बाकी नहीं रह गयी। इस समस्या को 'वेजागीरी की समस्या' पुकारा गया । औरंगजेब ने इस समस्या का यह हल निकाला कि जागीरों की आय बढ़ा-चढ़ा कर दिखायी गयी परन्तु इससे समस्या घटने के स्थान पर बढ़ी । अमीरों ने अपनी जागीरों से अधिकतम आय के लिए किसानों पर दबाव डाला, परन्तु तब भी वे आशा के अनुकूल धन न पा सके। इस कारण एक तो वे स्वयं असन्तुष्ट रहे और दूसरे किसानों पर भार बढ़ गया। इसके अतिरिक्त युद्ध, बादशाहों और अमीरों के विलासप्रिय जीवन, बाादशाह की भूमि में कमी आदि ने साम्राज्य के आर्थिक और प्रशासकीय ढाँचे को हिला दिया। साम्राज्य की आय साम्राज्य के व्यय की पूर्ति करने में असमर्थ हो गयी । इससे वादशाह, अमीर, व्यापारी, मजदूर, किसान, आदि सभी वर्गों की हानि हुई । इन आर्थिक कठिनाइयों का प्रभाव राजनीति पर भी पड़ा । इससे दरबार के अमीरों के गुटों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तीव्र हुई, अमीरों में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की भावना प्रबल हुई, केन्द्रीय शासन दुर्बल हुआ और साम्राज्य की सैनिक शक्ति नष्ट हुई । औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात ये सभी समस्याएँ गम्भीर होती चली गयी और इन सभी ने साम्राज्य के विघटन और पतन में भाग लिया ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

समकालीन फारसी ग्रन्थ

1- अवुलफजल - I अकवरनामा
II आईन-ए-अकवरी

2-अली, मुहम्मद खाँ - मीरात-ए-अहमदी

3-खाँ रजी आकिल - वाकयाते आलमगीरी

4-काजिम सिराजी मिर्जा मुहम्मद - आलमगीरनामा

5-कजवीनी अमीन - बादशाहनामा

6-खाँ, इनायत उल्ला (संग्रहक) - कलिमात-ए-तैयबत

7-खाँ, मुहम्मद सादिक - शाहजहाँनामा

8-खाँ, कामवर - तजकिरात-उत-सलातीन-ए-चगता

9-खाँ, साकी मुस्तैद - मासीर-ए-आलमगीरी

10-खाफी खाँ, मुहम्मद हाशिम - मुन्तखब-उल-लुबाब

11-खाँ, बख्तावर - मीरात-उल-आलम

12-चन्द्रभान - चहार चमन

13-जहाँगीर - तुजुके जहाँगीरी

14-तबातबाई - बादशाहनामा

15-नागर, ईसरदास - फतूहात-ए-आलमगीरी

16-नादवी, सैय्यद नाजीब अशरफ - रूक्कात-ए-आलमगीरी

17-बका, शेख मुहम्मद - मीरात-अल-आलम

18-बदायूँनी अब्दुल कादिर - मुन्तखब-उत-तवारीख

19-भीमसेन - नुस्खा-ए-दिलकुशाँ

20-भण्डारी, सुजानराय - खुलासत-उत-तवारीख

21-मामूरी, अबुल फजल - तारीख-ए-औरंगजेब

22-लाहौरी, अब्दुल हमीद - बादशाहनामा

23-वारिस, मुहम्मद - बादशाहनामा

24-सक्सेना, चतुरमन - चहार गुलशन

25-हुसैन युसूफ - वाकया-ए-दक्कन

उर्दू ग्रन्थ

1- अहमद, एस0 - उमरा-ए-हुनूद
2- कम्बो, मुहम्मद सालह - अमल-ए-सालह (उर्दू अनुवाद)

विदेशी/यात्री-

1- ट्रैवर्नियर, जिन बैपटिस्ट - ट्रैवेल्स इन इण्डिया, अनुवादक बी0 वाल, विलियम क्रूक द्वारा सम्पादित आक्सफोर्ड 1925 ।
2- निकोलो, मनूची, - स्टोरिया डू मोगोर, अनुवादक विलियम - इरविन लन्दन 1907 ।
3- पेलसार्ट - जहाँगीर्स इण्डिया अनुवादक मोरलैण्ड तथा गेइल, कैम्ब्रिज, 1925 ।
4- बर्नियर, फ्रांकोईस - ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर सम्पादक, ए0 कान्स्टिवल, लन्दन 1914 ।
5- रो, सर टामस - एम्बैसी टू द कोर्ट ऑफ दी गेट ।

ऐतिहासिक पत्रिकाएँ-

1- यू0 पी0 हिस्टॉरिकल रिव्यू सम्पादक डा0 राधेश्याम ।
2- मेडिवल इण्डिया- इरफान हबीब ।

अंग्रेजी ग्रन्थ

1- अजीज अब्दुल - दि मनसबदारी सिस्टम एण्ड मुगल आर्मी, दिल्ली, 1972
- अतहर अली, मुहम्मद - मुगल नोबिलीटी अण्डर औरंगजेब, नई दिल्ली 1966

3- अकबर, मुहम्मद - दि पंजाब अण्डर द मुगल्स
4- केवलराम - तजकिरात-उल-उमरा
5- कुरैशी, आई० एच० दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी मुगल एम्पायर, करॉंची 1966
6- कानूनगो, के० आर० - हिस्ट्री आफ दि जाट्स, कलकत्ता 1925
7- कॉमिसारियत एम० एस० - ए हिस्ट्री ऑफ गुजरात वाल्यूम-2, बम्बई 1957
8- खॉं, युसूफ हुसैन - सेलेक्टेड डाक्यूमेन्ट्स ऑफ औरंगजेब्स रन
9 खोसला, रामप्रसाद I दि मुगल किंगशिप एण्ड नोबिलिटी, इलाहाबाद 1934
II मम आस्पेक्ट आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन
10- खॉं शाहनवाज - तजकिरात-उल-उमरा
11- गुप्ता, एच० आर० - ए हिस्ट्री आफ दी सिखस 1739-68 वाल्यूम-1, कलकत्ता 1939
12- चटर्जी, अंजली - बगाल इन द रेन ऑफ औरंगजेव, कलकत्ता 1967
13- चौधरी तपनराय, हबीब इरफान - दि कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया-1
14- त्रिपाठी, आर० पी० - I सम एस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद 1956
II राइज एण्ड फॉल ऑफ मुगल एम्पायर, इलाहाबाद 1955
15- नूमानी, मौलाना शिबली - औरंगजेब आलमगीर
16- फारूकी जहीरूद्दीन - औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, बम्बई 1935

17- प्रसाद, वेनी - हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, इलाहाबाद 1940

18- मुनीलाल - औरंगजेब

19- मोरलैण्ड, डब्लू0 एच0 - I दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, कैम्ब्रिज 1929
II फ्राम अकबर टू औरंगजेब, लन्दन 1923
III इण्डिया ऐट दि डेथ ऑफ अकबर, लन्दन 1920

20- मुसवी, शीरीन - दि इकनॉमिक आफ दि मुगल एम्पायर 1595, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, कलकता, मद्रास 1987

21- मजुमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - दि मुगल एम्पायर, भारतीय विद्याभवन, बम्बई 1974

22- ओमप्रकाश - दि डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी एण्ड दि इकनॉमिक ऑफ बंगाल 1630-1720, मुद्रण 1985

23- कर्नल टॉड - एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान

24- रे अनिरुद्ध - सम आसपेक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन

25- रानाडे, एम0 जी0 - राइज ऑफ दि मराठा पावर, बाम्बे 1900

26- लेनपूल, एस0 - औरंगजेब सुनीता पब्लिकेशन्स दिल्ली 1987

27- वर्मा डी0 सी0 - हिस्ट्री ऑफ बीजापुर

28- सरकार, जे0 एन0 - I हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, 5-वाल्यूम, बम्बई 1957
II मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, बम्बई 1992,
III शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, कलकत्ता 1961,
IV स्टडीज इन मुगल इण्डिया, कलकत्ता 1919

29- सरकार, जे0 एन0 (अनुवादक) - अहकाम-ए-आलमगीरी

30- सिंह, एम0 पी0 - टाउन, मार्केट, मिन्ट एण्ड पोर्ट इन दि मुगल एम्पायर, 1658-1707, नई दिल्ली 1975

31- सिह गोपाल - गुरूगोविन्द सिह, नई दिल्ली 1966

32-सक्सेना, बनारसी प्रसाद - हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ देहली, इलाहाबाद 1962

33- सरदेसाई, जी0 एस0 - द मेन करेन्ट्स ऑफ मराठा हिस्ट्री, कलकत्ता 1926

34- बाबर - बाबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, श्रीमती ए0 एस0 बेवरिज, लन्दन 1921

35- सिंह खुशवन्त - ए हिस्ट्री ऑफ दि सिख 2 वाल्यूम्स (लन्दन 1963)

36- श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल - I अकबर दि ग्रेट 3-वाल्यूम, आगरा 1972
II दि मुगल एम्पायर, 1526-1803, आगरा 1977

37- शर्मा एस0 आर0 - I मुगल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा 1972
II मुगल एम्पायर इन इण्डिया

38- शर्मा जी0 एन0 - मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, आगरा 1954

39- शरण, परमात्मा - I स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, दिल्ली 1952
II दि प्रॉविन्शियल गवर्नमेन्ट ऑफ दी मुगल्स, इलाहाबाद 1941

40- हबीब, इरफान - दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया 1556-1707, बम्बई 1963

41- हसन, सैयद नुरूल - थाट्स ऑन एग्रेरियन रिलेशन्स इन मुगल इण्डिया, नई दिल्ली 1973

42- हुसेन युसूफ - गिल्मसेज ऑफ मेडिवल इण्डियन कल्चर

हिन्दी ग्रन्थ

1- अतहर अली, एम0 - औरंगजेबकालीन मुगल अमीर वर्ग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रथम हिन्दी संस्करण 1977

2- अहमद, लईक - मुगल साम्राज्य

3- ईलियट एवं डाउसन - भारत का इतिहास सप्तम खण्ड शिव आर्ट प्रिन्टर्स, आगरा 1972

4- ओझा, श्रीवास्तव, प्रताप सिंह - मुगलकालीन भारत

5- कामेश्वर प्रसाद - भारत का इतिहास, 1526-1757 भारती भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स ठाकुरवाड़ी रोड कदमकुऑं, पटना 800003

6- गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा - राजपूताने का इतिहास खण्ड-3

7- चोपड़ा पुरी और दास - भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास भाग-2, इण्डिया प्रेस मद्रास 600041

8- पाण्डय, अवधबिहारी — उत्तरमध्यकालीन भारत

9- महाजन विद्याधर - मुगलकालीन भारत, रामनगर नयी दिल्ली 1986

10- मोरलैण्ड, डब्लू0 एच0 - मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, प्रथम संस्करण 1927

11- मजुमदार, रायचौधरी, दत्त - भारत का वृहत इतिहास भाग-2, इण्डिया प्रेस मद्रास 60004

12- मुन्शी देवी प्रसाद - शाहजहाँनामा

13- राधेश्याम - I मध्यकालीन भारत का इतिहास, वोहरा पब्लिशर्स इलाहाबाद
II मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, भार्गव बुक हाउस कटरा, इलाहाबाद 1995

14- वर्मा, हरिश्चन्द्र - मध्यकालीन भारत भाग-2, दिल्ली विश्वविद्यालय ई0 ए0 16 मॉडल टाउन, पैरागन इण्टर प्राइजेज $422\frac{1}{1}$ दरियागंज

15- सरकार, जे0 एन0 - I मुगलशासन पद्धति
II औरंगजेब
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी लिमिटट पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता जयपुर, आगरा, इन्दौर

16- सरदेसाई, जी0 एस0 - मराठों का नवीन इतिहास

17- श्रीवास्तव, आर्शार्वादीलाल - मुगलकालीन भारत
शिवलाल अग्रवाल एण्ट कम्पनी कृष्णानगर दिल्ली-51

18- शर्मा, एल0 पी0 - मुगलकालीन भारत
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा-3

19- शर्मा, एस0 आर0 - भारत में मुगल साम्राज्य
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा-3

20- श्रीवास्तव. हरिशंकर - मुगलशासन प्रणाली.
महात्मागाँधी मार्ग सिविल लाइन्स,
इलाहाबाद 1989